दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

श्री पूज्य ब्रह्मचारी निहालजी
की सेवामें
सादर सप्रेम समर्पित.

अर्जुन देव विद्यालंकार

04578
वेद ज्योति
चारों वेदों के चुने हुए १००-१००
ईश्वर भक्ति के मंत्रों का संग्रह
अर्थ और भावार्थ सहित
जन ज्ञान प्रकाशन
नई दिल्ली

जन-ज्ञान प्रकाशन का ८वां पुष्प

प्रकाशक—
पंडिता राकेश रानी
मंत्री दयानन्द संस्थान
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५
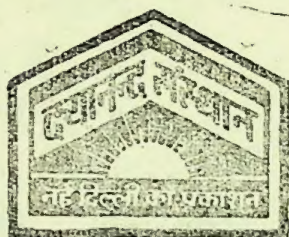
द्वितीय संस्करण : जून १९७५। दूरभाष—५६६६३९
मूल्य ४ रुपये मात्र : सजिल्द ६ रुपये

× × ×

मुद्रक : भाटिया प्रैस, गांधी नगर, दिल्ली-३१

सम्पादकीय

वेद-ज्ञान सागर के

४०० मोती स्वीकार कीजिए

अन्धेरा भागना चाहिए
प्रकाश आना चाहिए और मनुष्य को मनुष्य बनकर
धरती को स्वर्ग बनाना चाहिये
यह आवश्यक है और अनिवार्य भी······
फिर भी अन्धेरा बढ़ रहा है ।
उजाला कहीं खोजने पर भी तो नहीं दीखता ।
लगता है धरती से मनुष्य मर रहा है
और जन्म ले रही है पशुता······
यह पशुता का दानव अज्ञान की उत्पत्ति है
इसलिए "ज्ञान" का प्रसार ही पशुता की समाप्ति का साधन है ।

पूर्व प्रकाशित इस ग्रन्थ की निरन्तर मांग के कारण इस ग्रन्थ रत्न को हम इस विश्वास से भेंट कर रहे हैं कि इसके प्रकाश से मनुज क अन्तर की कालिमा मिट सकेगी ।

और

जन्म लेगी मानवता, धरती पर साकार स्वर्ग लाने के लिए । यज्ञ वेदी पर ज्ञान प्रसार का संकल्प हम लें, प्रभु की अमर वाणी वेद की ऋचाओं की झंकृतियों से नया जीवन पाएं ।

यह हमारी इच्छा है और इसी भावना से साधन अर्पित हैं वेद-ज्ञान सागर के यह ४०० मोती······ स्वीकार कीजिए

—राकेश रानी

आशीर्वाद

शांति चाहिए तो "वेद" की बात मानो

जब से वेद-वाद छूटा है। तबसे अनेक वाद-विवाद चल पड़े हैं और इन विवादों के बवंडर में मानव की सुख चैन शांति ऐसे उड़ गयी हैं, जैसे आंधी में रुई उड़ जाती है।

वेदों के विद्वान् स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती ने मेरी प्रार्थना पर चारों वेदों में से १००-१०० मंत्र चुनकर सर्व-साधारण के लिए उन्हें व्याख्या सहित संग्रह किया था।

आज "जन-ज्ञान-प्रकाशन" चारों वेदों के इन शतकों का जो संग्रह एक साथ प्रकाशित कर रहा है, यह सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा।

इन ४०० वेद मंत्रों का पाठ आपके हृदय में उत्साह उल्लास तथा शांति का स्रोत बहाएगा और बुद्धि में सात्विकता और गंभीरता लाएगा तथा कर्मशील बनकर जीवन सफल बनाने का मार्ग दिखाएगा।

प्रत्येक मनुष्य को शांति और सुख प्राप्ति के लिए वेद के मार्ग पर चलना होगा…वेद मार्ग से ही मानव का कल्याण-उत्थान और समस्याओं का समाधान होगा, ऐसा मेरा निश्चित विश्वास है। प्रभु पुत्रो ! शांति चाहिए तो 'वेद' की बात मानो, और 'वेद' प्रचार के लिए जो कुछ भी कर सकते हो, अवश्य करो। प्रभु सभी का कल्याण करें।

आनन्द स्वामी सरस्वती

वेद का संसार को सन्देश

संसार के सभी विद्वान् एक स्वर से यह स्वीकार करते हैं कि संसार के पुस्तकालयों में सबसे पुराना ग्रन्थ 'वेद' है।

जैसे घर में वृद्ध का सर्वाधिक आदर होता है और उसका आदेश सभी कल्याणकारी समझ शिरोधार्य करते हैं उसी भाँति सृष्टि के ज्ञान में वयोवृद्ध होने के कारण 'वेद' के निर्देश सभी के लिए कल्याण का कारण हैं। 'वेद' के अतिरिक्त अन्य जितने भी तथाकथित धर्मग्रन्थ कहे जाते हैं, वे सभी—

१. व्यक्तियों की गाथाओं से भरे हैं।
२. पक्षपात और देश काल के प्रभाव से युक्त हैं।
३. विज्ञान और सृष्टिक्रम की प्रत्यक्ष बातों का विरोध करते हैं।
४. मानव मात्र के लिए समान रूप से कल्याणकारी मार्ग का निर्देशन नहीं करते।
५. विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा वर्ग विशेष के लिए बनाए गए हैं।

किन्तु 'वेद' इन सभी बातों से ऊपर उठकर—

१. मनुष्य मात्र को समान समझकर मार्ग का निर्देश करता है।
२. वह 'सत्य' को सर्वोपरि मानता है।
३. विज्ञान, युक्ति, तर्क और न्याय के विपरीत उसमें कुछ भी नहीं है।

४. उसमें किसी देश, व्यक्ति, काल का वर्णन न होकर ऐसे शाश्वत मार्ग का निर्देशन है जिससे मस्तिष्क की सारी उलझी गुत्थियाँ सुलझ सकतीं हैं।

५. वेद, लौकिक, पारलौकिक उन्नति के लिए समान रूप से प्रेरक हैं। उनकी शिक्षाएँ सर्वांगीण हैं। इसीलिए आधुनिक युग के महान् द्रष्टा और ऋषि महर्षि दयानन्द ने कहा था कि—

'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' और यह भी बताया कि प्रत्येक श्रेष्ठ बनने के इच्छुक व्यक्ति को 'वेद' का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना परम धर्म समझकर शान्ति और आनन्द के मार्ग पर चलने का यत्न करना चाहिए।

आज के युग के मनीषी अणु और उद्रजन विस्फोटकों की अनन्त शक्ति के विकास के लिए यत्नशील हैं। अन्तरिक्ष की खोज उनके प्रयत्नों की सीमा है किन्तु 'मनुष्य' जो इस भूमि का 'भोक्ता' है निरन्तर अशान्ति, चिन्ता और पीड़ा के गह्वर में गिरता जा रहा है। धर्म के नाम पर अधर्म के प्रसार ने विचारको के मस्तिष्क में धर्म के प्रति तीव्र घृणा भर दी है। वस्तुतः कुरान, पुराण, बाईबिल आदि पुस्तकों ने 'धर्म' को इतने अधिक घृणित रूप में उपस्थित किया है कि कोई भी बुद्धिजीवी इन्हें देखकर धर्म नाम को ही छोड़ देता है।

ऐसी विषम स्थिति में संसार को विनाश और मृत्यु से बचाने के लिए लुप्त होती हुई महान् ज्ञान-राशि 'वेद' का पुनरुद्धार कर महर्षि दयानन्द ने मानवता को अमर संजीवनी प्रदान की। धर्म के जर्जर रूप को त्याज्य बताकर 'धर्म' को जीवन का अनिवार्य अंग बताया और स्पष्टतया यह घोषणा की कि जीवन का उत्थान, निर्माण और शान्ति-आनन्द का उदात्त मार्ग, केवल 'वेद' की ऋचाओं में वर्णित है।

महर्षि महान् क्रांतिकारी थे। वे धरती के अज्ञान को जला देना

चाहते थे। मत-वादों के विष-वृक्ष को मिटा देना उनका इष्ट था। यह इसलिए नहीं कि उनका किसी से द्वेष-विरोध था, अपितु इसलिए कि वे किसी को भी असत्य मार्ग पर चलते नहीं देख सकते थे।

इसलिए सब के सब विधि कल्याण का मार्ग उन्होंने 'वेद' का आदेश मानकर "जीवन-निर्माण" बताया। अपने पश्चात् अपनी इच्छा को मूर्त रूप देने के लिए "आर्य समाज" संगठन बनाया।

आर्य समाज का लक्ष्य-उद्देश्य भी केवल 'वेद' की भावनाओं का प्रचार है। यह मानव मात्र तक 'वेद' के पावन सन्देश को पहुँचाने के लिए कृतसंकल्प और कटिबद्ध है।

आज युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि संसार के मस्तिष्क, बुद्धिजीवी, राजनीतिज्ञ यह अनुभव करें कि विज्ञान और भौतिकता का यह प्रवाह संसार से सत्य और शान्ति, आनन्द को सर्वथा ही समाप्त कर देगा। अतः सभी गम्भीरता से स्थिति को समझें और विचारें कि—

१. यह शरीर ही सब कुछ नहीं। इसमें जो जीवन तत्व, "आत्मा" है, उसकी भूख, प्यास की चिन्ता किये बिना मनुष्य कभी मनुष्य नहीं बन सकता।

२. संसार में एक धर्म है—'सत्य'। वह सत्य-सृष्टि क्रम, विज्ञान-सम्मत और मानव मन को आनन्द देने वाला है।

३. मनुष्य की केवल एक जाति है—'मनुष्य। मनुष्य' और मनुष्य के बीच कोई भी जाति-वर्ण-वर्ग-देश की दीवार खड़ी करना जघन्यतम अपराध है। जो भी इन तथ्यों पर विचार करेंगे वे निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि—

केवल 'वेद' ही ऐसा ज्ञान है जो उक्त मान्यताओं को पुष्ट करता है।

अतः धरती को स्वर्ग बनाने के लिए 'वेद' का प्रचार-प्रसार और उन पर आचरण परमावश्यक है।

'वेद' मनुष्य मात्र के लिए ऐसा मार्ग बताता है जिस पर चलकर जन्म से मृत्युपर्यन्त उसे कोई भी कष्ट न आए। आनन्द और शान्ति जो मनुष्य की स्वाभाविक इच्छाएँ हैं, उनको प्राप्त कर दुखों से छुटकारा पाने का सच्चा और सीधा मार्ग, 'वेद' के पवित्र मन्त्रों में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

अतः आइए, गम्भीरता से हम जीवन के सच्चे मार्ग को समझें और आनन्द प्राप्त कर कष्टों से मुक्ति पायें।

१०० वर्ष तक जिएं

वेद का प्रथम आदेश है कि प्रत्येक मनुष्य १०० वर्ष सुखी होकर जिएं। वेद कहता है —

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

—यजु० ४० : २

'मनुष्य' को चाहिए कि कर्म करता हुआ १०० वर्ष तक जीने की इच्छा करे। उसके लिए इससे भिन्न जीवन का मार्ग नहीं है। ऐसा करने से कर्म-बन्धन मनुष्य को जकड़ता नहीं।

जीवन की अवधि के अतिरिक्त मन्त्र में कहा गया है कि जीवन का समय काम में गुजरना चाहिए, १०० वर्ष साँस लेते रहना ही पर्याप्त नहीं। काम जीवन की अवधि को बढ़ाने का साधन भी है, परन्तु मन्त्र में जीवन के मूल्य की ओर संकेत किया गया है। कर्मशीलता का महत्त्व इतना है कि वेद के शब्दों में कर्म करते हुए बिताया हुआ जीवन ही वास्तव में मनुष्य-जीवन कहलाने के योग्य है।

२. जीवन का लक्ष्य

व्यक्ति को कर्म करते हुए १०० वर्ष तक जीते रहने की इच्छा करनी चाहिए। कर्म की अपने-आप में भी कीमत है, परन्तु मनुष्य रूप में यह जीवन का साधन है।

किन्तु जीवन में जिएँ तो कैसे? वेद कहता है—

ईशावास्यमिदꣳसर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्॥
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

—यजु: ४० : १

इस चलायमान संसार में जो कुछ चलता हुआ है, वह सब ईश्वर से आच्छादित है। जो कुछ भोगो, ईश्वर की देन समझकर भोगो। किसी दूसरे के धन का लालच न करो।

वैदिक दृष्टिकोण के अनुसार संसार का प्रत्येक भाग ईश्वर से आच्छादित है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, और संसार की व्यवस्था उसी की व्यवस्था है।

यदि सृष्टि में जो कुछ है, ईश्वर की व्यवस्था के अधीन है, तो यह बात स्पष्ट है कि मनुष्यों के भोग के सभी सामान ईश्वर की देन हैं। मैं जीने के लिए कुछ खाता-पीता हूँ, यह सामग्री मैं बनाता नहीं। इसे जगत् में विद्यमान पाता हूँ और इसे प्राप्त करके उसी रूप में या थोड़े परिवर्तन के साथ प्रयोग में लाता हूँ। यही नहीं, इस प्रयोग की योग्यता भी तो ईश्वर की देन ही है। अत: सबका उपयोग करते हुए इश्वर का स्मरण करना चाहिए।

धन के अच्छे और बुरे उपयोग के लिए निम्नलिखित मंत्रों में बहुमूल्य शिक्षा दी गई है।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद् दधिषे रदावसो न पापत्वायरꣳसिषम्॥

—साम० ३ : ८ : ८

परमात्मा ! जगत् में जो कुछ है, सब तुम्हारा है । इसमें मैं इतनी सम्पत्ति का स्वामी बनूँ कि ईश्वरभक्तों की सहायता कर सकूँ, मेरा धन पाप के लिए प्रयुक्त न हो !'

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ।।

—साम० ३:४:५

'जो कुछ उत्पन्न हो चुका है, जो कुछ उत्पन्न होगा अपने बल सहित, सब परमात्मा का ही है, जैसे सूर्य की किरणें सभी सूर्य से निकलती हैं। अपने-अपने भाग्य को भोगो, जैसे एक पिता के पुत्र करते हैं। इतना ही धारण करने के योग्य है।"

वस्तुतः प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह आप अच्छी तरह रहे, बच्चों को अच्छी शिक्षा से सम्पन्न करके अपने पाँव पर खड़ा करके, शेष सब कुछ को समाज की सम्पत्ति समझे।

३. सफलता के लिए

सफल जीवन के लिए कौन-से कर्म उपयोगी हैं, यह वेद में अनेक स्थलों पर बताया गया है। यजुर्वेद के दो निम्नलिखित मन्त्र इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे :—

स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वय जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ।। (२३ : १५)

'बलवान् आत्मा ! तू आप अपने शरीर को समर्थ बना; आप यज्ञ कर, आप सेवा कर, तेरी महिमा किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं होगी।

प्रेता जयता नर इन्द्रोवः शर्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ।। (१७ : ४६)

"मनुष्य! आगे बढ़ो। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। भगवान् तुम्हें अपनी शरण प्रदान करें। तुम्हारी भुजाएँ उग्र हों, जिससे कोई तुम्हें हानि न पहुँचा सके।"

पहला मंत्र व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कहता है, दूसरे मंत्र में उस कठोर वातावरण को ध्यान में रखा गया है जिसमें हम सब को रहना होता है। इन्हें इसी क्रम में लें।

पहले मन्त्र के दूसरे भाग में कहा है कि वास्तव में व्यक्ति की महिमा या बड़ाई किसी दूसरे की देन नहीं हो सकती। उसके अपने श्रम का फल होती है।

व्यक्ति का प्रथम काम तो अपने शरीर को बनाना है। पहले माता अपने शरीर बच्चे का पालन करती है, पीछे उसे अन्न आदि खिलाती है। आगे चलकर वह आप खाने लगता है और अन्त में जो कुछ खाता है, उसे कमाता है।

दूसरे वेद मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में आदेश है—

आगे बढ़ो। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। तुम्हारी भुजाएँ उग्र हों, जिससे कोई तुम्हें हानि न पहुँचा सके। आजकल जिन राष्ट्रों के हाथ में कुछ करने की शक्ति है वे उस आदेश पर अमल करते हैं। जो अशक्त हैं, अहिंसा के गुण गाने में लगे हैं। स्वामी दयानन्द ने अहिंसा का अर्थ "वैर त्याग" किया है, यही इसका तत्व है। मैं तो किसी का शत्रु नहीं परन्तु यदि कोई मुझसे शत्रुता करता है, तो तुझे बताना चाहिए कि इस विशाल दुनियाँ में जीने का मुझे भी अधिकार है।

इसी आशय की प्रार्थना निम्न मंत्र में की गई है—

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा-सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ यजु० ३६ : १८॥

दृढ़ बनाने वाले परमात्मा ! मुझे ऐसा दृढ़ बना कि सारे प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखता हूँ। हम सब एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें।

मन्त्र के अर्थ पर अन्त की ओर से विचार करें। आवश्यकता व्यापक मित्रता और सद्भावना की है। इसके लिए परमात्मा से याचना करते हैं। इस व्यापक मित्रता के लिए मैं अपने व्यवहार में इसे लक्ष्य के रूप में स्वीकार करता हूँ और परमात्मा को साक्षी बनाकर कहता हूँ कि मैं सबको मित्र भाव से देखता हूँ। परन्तु यह तो पर्याप्त नहीं। दूसरों का भी मेरी ओर मित्र भाव होना चाहिए। जीवन में सफलता का यही मार्ग है। जो अगले ४०० मन्त्रों में आप स्वयं स्वाध्याय कर प्राप्त कर सकेंगे।

—भारतेन्द्रनाथ

अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली-५

१०-१-७५

ऋग्वेद शतक

ऋग्वेद के चुने हुए ईश्वर भक्ति के
१०० मंत्रों का संग्रह

—अर्थ और भावार्थ सहित—

—स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

❊

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

❊
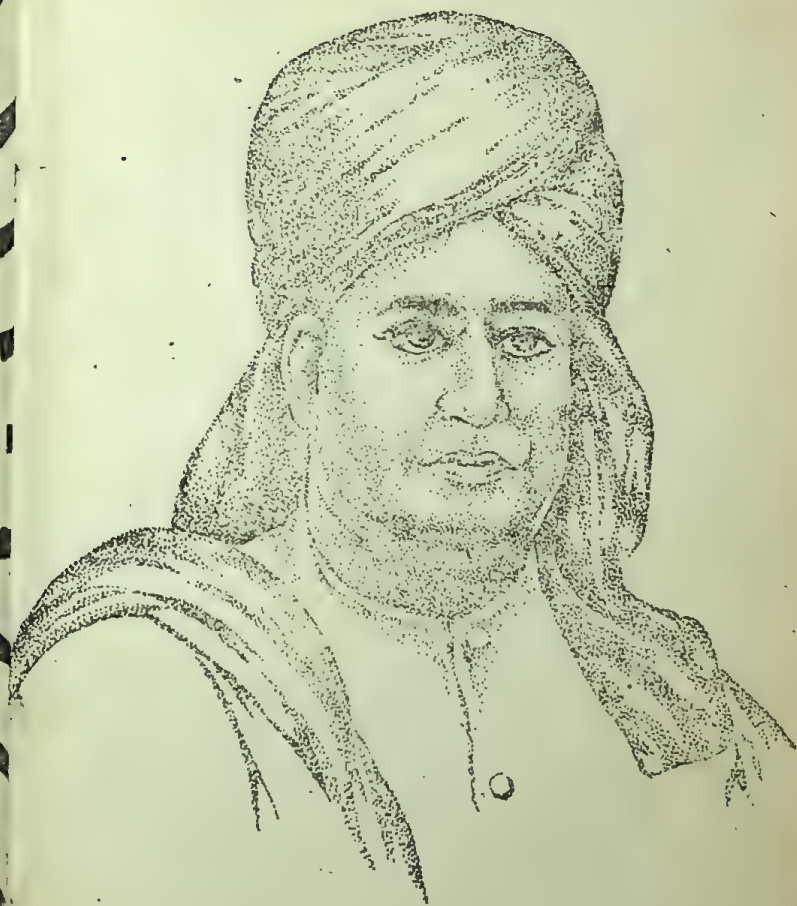
वेदोद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र-
चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्र-
विणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व०१९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति,-पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

: १ :

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ मं० १ । सू० १ ।

पदार्थ—(अग्निम्) ज्ञानस्वरूप, व्यापक, सब के अग्रणीय नेता और पूज्य परमात्मा की मैं (ईडे) स्तुति करता हूँ। कैसा है वह परमेश्वर ? (पुरोहितम्) जो सब के सामने स्थित, उत्पत्ति से पूर्व परमाणु आदि जगत् का धारण करने वाला (यज्ञस्य देवम्) यज्ञादि उत्तम कर्मों का प्रकाशक, (ऋत्विजम्) वसन्त आदि सब ऋतुओं का उत्पादक और सब ऋतुओं में पूजनीय, (होतारम्) सब सुखों का दाता तथा प्रलयकाल में सब पदार्थों का ग्रहण करने वाला (रत्नधातमम्) सूर्य्य, चन्द्रमा आदि रमणीय पदार्थों का धारक और सुन्दर मोती, हीरा, सुवर्ण-रजत आदि पदार्थों का अपने भक्तों को देने वाला है।

भावार्थ—ज्ञानस्वरूप परमात्मा सर्वत्र व्यापक, सब प्रकार के यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों का प्रकाशक और उपदेशक, सब ऋतुओं में पूजनीय और सब ऋतुओं का बनाने वाला, सब सुखों का दाता, और सब ब्रह्माण्डों का कर्त्ता धर्त्ता और हर्त्ता है, हम सब को ऐसे प्रभु की ही उपासना, प्रार्थना और स्तुति करनी चाहिये।

: २ :

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ १।१।२॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (पूर्वेभिः ऋषिभिः) प्राचीन ऋषियों से (उत) और (नूतनैः) नवीनों से (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है। (सः) वह (देवान्) देवताओं को (इह) इस संसार में (आ वक्षति) प्राप्त करता है।

भावार्थ—पूर्व कल्पों में जो वेदार्थ को जानने वाले महर्षि

हो गये हैं और जो ब्रह्मचर्यादि साधनों से युक्त नवीन महापुरुष हैं, इन सब से वह पूज्य परमात्मा ही स्तुति करने योग्य है। उस दयालु प्रभु ने ही इस संसार में दिव्य-शक्ति वाले, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और बिजली आदि देव और हमारे शरीरों में भी विद्या आदि सद्गुण, मन, नेत्र, श्रोत्र, घ्राणादि देव प्राप्त किये हैं। जिन देवों की सहायता से हम अपना लोक और परलोक सुधारते हुए, अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकते हैं।

: ३ :

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ १।१।३॥

पदार्थ—(अग्निना एव) परमात्मा की कृपा से ही पुरुष (रयिम्) धन को (अश्नवत्) प्राप्त होता है। जो धन (दिवे दिवे पोषम्) दिन दिन में बढ़ने वाला है (यशसम्) कीर्ति दाता और (वीरवत्तमम्) जिस धन में अत्यन्त विद्वान् और शूरवीर पुरुष विद्यमान हैं।

भावार्थ—परमेश्वर की उपासना करने से और उसकी वैदिक आज्ञा में रहने से ही मनुष्य, ऐसे उत्तम धन को प्राप्त होता है कि, जो धन प्रतिदिन बढ़ने वाला, मनुष्य की पुष्टि करने वाला और यश देने वाला हो। जिस धन से पुरुष, महाविद्वान् शूरवीरों से युक्त होकर, सदा अनेक प्रकार के सुखों से युक्त होता है, ऐसे धन की प्राप्ति के लिये ही उस भगवान् की भक्ति करनी चाहिये।

: ४ :

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।
स इद्देवेषु गच्छति ॥ १।१।४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर! (यम् अध्वरम् यज्ञम्) आप जिस हिंसारहित यज्ञ के (विश्वतः) सर्वत्र व्याप्त होकर

(परिभूः) सब प्रकार से पालन करने वाले (असि) हैं, (स इत्) वही यज्ञ (देवेषु) विद्वानों के बीच में (गच्छति) फैल जाता है।

भावार्थ—धर्म रक्षक परमात्मा, जिस हिंसादि दोषरहित स्वाध्याय और अन्न, वस्त्र, पुस्तक विद्यादानादि यज्ञ की रक्षा करते हैं। वही यज्ञ संसार में फैल कर सबको सुखी करता है। इस वैदिक उपदेश से निश्चय हुआ कि जो हिंसक लोग, गौ, घोड़ा, बकरी आदि उपकारक और अहिंसक पशुओं को मारकर, उनकी चर्बी और मांस से यज्ञ का नाम लेकर होम करते व खाते हैं, यह सब उन हत्यारे याज्ञिक लोगों की स्व कपोल कल्पित लीला है, वेदों से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

: ५ :

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्। ५।१।१।५॥

पदार्थ—(अग्नि) परमेश्वर (होता) दाता (कविः) सर्वज्ञ (क्रतुः) सब जगत् का कर्त्ता (सत्यः) अविनाशी और सदाचारी विद्वान् जनों का हितकारी (चित्रश्रवस्तमः) जिसका अति आश्चर्य रूपी श्रवण है, वही प्रभुः (देव) उत्तम गुणों का प्रकाश करने वाला (देवेभिः) महात्मा विद्वानों का सत्संग करने से (आगमत) जाना जाता तथा प्राप्त होता है।

भावार्थ—सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सब जगत् का कर्त्ता, भक्तों को सुख का दाता और हितकर्त्ता है। जिस का श्रवण बिना पूर्व पुण्यों के नहीं मिल सकता, उस प्रभु का ज्ञान और प्राप्ति महात्मा विद्वान् सन्त जनों के सत्संग से ही होती है। संसार में जितने महापुरुष हुए हैं वे सब, अपने महात्मा गुरुओं की सेवा और उनके सत्सग से भक्त और ज्ञानी व पूजनीय बन गए। सत्संग की महिमा अपार है, लिखी और कही नहीं जा सकती।

: ६ :

यदङ्गदाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत् सत्यमंङ्गिर । १।१।६॥

पदार्थ—(अङ्ग अग्ने) हे सबके प्रिय मित्र अग्ने! (यत् दादुषे) जिस हेतु से उत्तम-उत्तम पदार्थों के दाता पुरुष के लिये (भद्रं करिष्यसि) आप कल्याण करते हैं। (अंगिरः) हे अन्तर्यामी रूप से अंगों की रक्षा करने वाले परमात्मन्! (तव इत्) यह आपका ही (तत् सत्यम्) सत्य व्रत शील स्वभाव है।

भावार्थ—हे सब की रक्षा करने वाले, सब के सच्चे प्यारे मित्र परमात्मन्! जो धार्मिक उदार पुरुष, अन्न, वस्त्र, भूमि, स्वर्ण, रजतादि उत्तम पदार्थों के सच्चे पात्र विद्वान् महापुरुषों को प्रेम से दान करते हैं, उन धर्मात्माओं की आप सदा रक्षा करते हैं। ऐसा आपका अटल नियम और स्वभाव ही है।

: ७ :

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषा वस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि । १।१।७॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर! (दिवे दिवे) सब दिनों में (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मों से (वयम्) हम उपासक जन (नमः) नम्रतापूर्वक आपको नमस्कार आदि (भरन्तः) धारण करते हुए (त्वा) आपके (उप) समीप (आ-इमसि) प्राप्त होते हैं (दोषा) रात्रि में और (वस्तः) दिन के समय में।

भावार्थ—हे सब के उपासनीय प्रभो! हम सब 'ओ३म्' नाम जो आपका मुख्य नाम है इससे और गायत्री आदि वेदों के पवित्र मन्त्रों से आपकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना सदा करें। यदि सदा न हो सके तो, सायंकाल और प्रातःकाल में आप जगत् पिता के गुण संकीर्तन रूपी स्तुति, वांछित मोक्षादि वर की याचना रूप

प्रार्थना, और आपके घ्यान रूप उपासना में अवश्य मन को लगायें जिससे हम सब का कल्याण हो।

: ८ :

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिवम् ।
वर्धमानं स्वे दमे ॥ १।१।८॥

पदार्थ— (राजन्तम्) प्रकाशमान (अध्वराणाम्) यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों का वा धार्मिक पुरुषों का और पृथ्वी आदि लोकों का (गोपाम्) रक्षक (ऋतस्य) सत्य का (दीदिवम्) प्रकाशक (वर्धमानस) सबसे बड़ा (स्वे दमे) अपने उस परमानन्द पद में जिसमें कि सब दुःखों से छूटकर मोक्ष सुख को प्राप्त हुए पुरुष रमण करते हैं, उसमें सदा विराजमान हैं ऐसे प्रभु को हम प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—परमात्मा प्रकाशस्वरूप, यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने वाले, धर्मात्मा ज्ञानी पुरुषों की, तथा पृथ्वी आदि लोक लोकान्तरों की रक्षा करने वाले हैं, और अपने दिव्य धाम जो सब दुःखों से रहित है उसी में वर्त्तमान हैं। ऐसे सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमात्मा की ही बड़े प्रेम से हम सबको भक्ति प्रार्थना व उपासना करनी चाहिये।

: ९ :

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ १।१।९॥

पदार्थ— (अग्ने) ज्ञानस्वरूप, ज्ञानप्रद पिता (सः) लोक और वेदों में प्रसिद्ध आप (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिये पिता जैसा हितकारक होता है वैसे ही (नः) हमारे लिये (सु-उपायनः) सुखदायक पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले ज्ञान के दाता (भव) होओ और (नः) हम लोगों के (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सचस्व) प्राप्त होओ।

भावार्थ—जैसे पुत्र के लिये पिता हितकारी होता है और सदा यही चाहता है कि, मेरा पुत्र धर्मात्मा चिरंजीवी, धनी, प्रतापी, यशस्वी, सुखी, और बड़ा ज्ञानी हो। वैसे ही आप परम पिता परमात्मा चाहते हैं कि, हम भी जो आपके पुत्र हैं धर्मात्मा चिरंजीव, धनी, प्रतापी और महाविद्वान् होकर लोक परलोक में सदा सुखी होवें।

सारांश—ऋग्वेद के इस प्रथम अग्निसूक्त में परमेश्वर के गुणों का वर्णन किया गया है, और परमेश्वर ने मनुष्यों को उपदेश दिया है कि, उनको अपने कल्याणार्थ किस प्रकार उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये। जो व्यक्ति या व्यक्ति-समूह, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करेगा उसका अवश्यमेव कल्याण होगा, ऐसा स्पष्ट सिद्ध है।

: १० :

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १।२।१॥

पदार्थ—(वायो) हे अनन्त बल युक्त सबके प्राणरूप अन्तर्यामी जगदीश्वर ! (आयाहि) आप हमारे हृदय में प्रकाशित होवें (दर्शत) हे ज्ञान से देखने योग्य ! (इमे सोमाः) यह संसार के सब पदार्थ जो आपने (अरंकृताः) सुशोभित किये हैं (तेषाम् पाहि) इनकी रक्षा करें (हवम्) हमारी स्तुति को (श्रुधी) सुनिये।

भावार्थ—हे अनन्त बल-युक्त सबके जीवन दाता दर्शनीय परमात्मन् ! आप अपनी कृपा से हमारे हृदय में प्रकाशित होवें और जो उत्तम-उत्तम पदार्थ आपने रचे और हमको दिये हैं, उनकी रक्षा भी आप करें। हमारी इस नम्रतायुक्त प्रार्थना को कृपा करके सुनें और स्वीकार करें।

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ १।५।८॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) सृष्टि-निर्माण, पालन पोषणादि असंख्यात कर्म-कर्ता और अनन्त ज्ञानस्वरूप प्रभो ! जैसे (स्तोमाः) सामवेद के स्तोत्र तथा (उक्था) पठन करने योग्य ऋग् वेदस्थ प्रशंसनीय सब मन्त्र (त्वाम्) आपको (अवीवृधन्) अत्यन्त प्रसिद्ध करते हैं, वैसे ही (नः) हमारी (गिरः) विद्या और सत्य-भाषण युक्त वाणियें भी (त्वाम्) आपको (वर्धन्तु) प्रकाशित करें ।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् जगदीश्वर पिता जी ! सर्व वेद साक्षात् और परम्परा से आपकी महिमा को कथन कर रहे हैं । हम पर कृपा करो कि हम सब आपके पुत्रों की वाणियां भी, आपके निर्मल यश को गाया करें, जिससे हम सबका कल्याण हो ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ ५।८२।५॥

पदार्थ—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पादक (देव, ज्ञान स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख और पापों को (परासुव) दूर करें (यद्) (भद्रम्) कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (ततः) वह सब हमको (आसुव) प्राप्त करावें ।

भावार्थ—हे सकल जगत् के कर्त्ता परमात्मन् ! कृपा करके आप हमारे सब दुःख और दुःखों के कारण सब पापों को दूर कर दें । भगवन् ! कल्याण कारक जो अच्छे गुण कर्म ज्ञान उपासनादि उत्तम-उत्तम पदार्थ हैं, उन सबको प्राप्त करा दें, जिससे हम सच्चे धार्मिक तेरे ज्ञानी और उपासक बनकर अपने मनुष्य जन्म को सफल करें ।

: १३ :

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ १।२२।७॥

पदार्थ—(वसोः) सुखों के निवास हेतु (चित्रस्य) आश्चर्य-स्वरूप (राधसः) धन को (विभक्तारम्) बांटने हारे (सवितारम्) सबके उत्पादक (नृचक्षसम्) मनुष्यों के सब कर्मों को देखने हारे परमेश्वर की हम सब लोग (हवामहे) प्रशंसा करें।

भावार्थ—सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमेश्वर सब मनुष्यों को उनके कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार का धन देता है जिस धन से मनुष्य अपने लोक और परलोक को सुधार सकते हैं, ऐसे धन को मद्य मांस सेवन और व्यभिचारादि पाप कर्मों में कभी नहीं लगाना चाहिये, किन्तु धार्मिक कामों में ही खर्च करना चाहिये, जिससे मनुष्य का यह लोक और परलोक सुधर सके ।

: १४ :

सखाय आनिषीदत सविताम्स्तोम्यो नु नः ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ १।२२।८॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (आ निषीदत) चारों ओर से आकर इकट्ठे बैठो (सविताः) सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत्कर्त्ता जगदीश्वर (स्तोम्यः) स्तुति करने योग्य है (नु) शीघ्र (नः) हमारे लिए (दाता) दानशील है (राधांसि) धनों का (शुम्भति) शोभा देने वाला और शोभायुक्त है ।

भावार्थ—मनुष्यों को परस्पर मित्रता के विना कभी कोई सुख नहीं प्राप्त हो सकता, इसलिए सब मनुष्यों को योग्य है कि, एक दूसरे के मित्र होकर इकट्ठे बैठें और उस जगत्पिता के गुण गावें क्योंकि वही जगदीश्वर, सबको अनेक प्रकार के उत्तम से उत्तम धनों का दाता और शोभा का भी देने वाला है । इससे हमें

उस दयामय पिता की सदा प्रेम से भक्ति करनी चाहिये, जिससे हमारा लोक परलोक सुधरे ।

: १५ :

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे ।
सत्यसवं सवितारम् ॥ ५।८२।७॥

पदार्थ—(अद्य) आज (विश्वदेवम्) सबके उपास्यदेव (सत्यसवम्) सत्य के पक्षपाती (सवितारम्) जगत् के उत्पादक प्रभु को (सूक्तैः) सुन्दर स्तुति वचनों से (आ वृणीमहे) भजते हैं ।

भावार्थ—जगत् का उपास्य देव जो श्रेष्ठ संत जनों का रक्षक वा पालक, सच्चाई का पक्षपाती, जिसकी आज्ञा सच्ची है, और जो सारे जगतों का उत्पन्न करने वाला है, आज हम अनेक वेद के पवित्र मन्त्रों से उस जगत्पिता की स्तुति करते हैं, वह जगत्पिता परमात्मा, हम पर प्रसन्न होकर हमें सच्चा भक्त बनाये ।

: १६ :

सविता पश्चात्तात् सविता पुरस्तात् ।
सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात् ।
सविता नःसुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां
दीर्घमायुः ॥ १०।३६।१४॥

पदार्थ—(सविता) सब जगत् का उत्पादक देव (पश्चात्तात्) पीछे (सविता पुरस्तात्) सविता सम्मुख (सविताउत्तरात्तात्) सविता उत्तर दिशा (सविता अधरात्तात्) नीचे व दक्षिण दिशा में भी हमारी रक्षा करे । (सविता) सविता (नः) हमें (सर्वतातिम्) सब इष्ट पदार्थ (सुवतु) देवे (सविता) वही (सविता) जगत्पिता (नः) हमें (दीर्घम् आयुः) लम्बी आयु (रासताम्) प्रदान करे ।

भावार्थ—जगत् पिता परमात्मा, पूर्वादि सब दिशाओं में

में हमारी रक्षा करे और हमें मनोवांछित पदार्थ देता हुआ दीर्घ आयु वाला बनावे। जिससे हम धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त होकर सदा सुखी हों।

: १७ :

सुवीरं रयिमाभर जातवेदो विचर्षणे।
जहि रक्षांसि सुक्रतो॥ ६।१६।२९॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) वेद प्रकट करने वाले प्रभो अथवा अनेक प्रकार का धन उत्पन्न कर्त्ता ईश्वर! (सुवीरम्) उत्तम वीरों से युक्त (रयिम्) धन को (आभर) दो (विचर्षणे) हे सर्वज्ञ सर्व द्रष्टा परमात्मन्! (सुक्रतो) हे जगत् उत्पादन पालनादि उत्तम और दिव्य कर्म करने वाले प्रभो! (रक्षांसि) दुष्ट राक्षसों का (जहि) नाश कर।

भावार्थ—हे परमात्मन्! दानवीर कर्मवीरादि पुरुषों से युक्त धन हमें प्रदान करो। हम दीन मलीन पराधीन दरिद्री कभी न हों। हे महासमर्थ प्रभो! दुष्ट राक्षसों का दुष्ट स्वभाव छुड़ा कर, उनको धर्मात्मा श्रेष्ठ बनाओ, जिससे वे लोग भी किसी की कभी हानि न कर सकें।

: १८ :

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥ ८।६।२८

पदार्थ—(गिरिणाम्) पर्वतों की (उपह्वरे) गुफ़ाओं में (नदीनां) (संगमे च) और नदियों के संगम पर (धिया) ध्यान करने से (विप्रः अजायत) मेधावी व ब्राह्मण हो जाता है।

भावार्थ—मोक्षार्थी पुरुष को चाहिये कि वह एकान्त देश में जैसे पर्वतों की गुफा में व नदियों के संगम पर बैठ कर परमात्मा का ध्यान करे और एकान्त देश में ही वेदों के पवित्र मन्त्रों का

विचार करे। तब ही वह विप्र और ब्राह्मण कहलाने के योग्य है। ब्राह्मण शब्द का भी यही अर्थ है कि ब्रह्म जो शब्द ब्रह्म वेद है, इसके पठन और विचार आदि से ब्राह्मण होता है, और ब्रह्म अविनाशी सर्वज्ञ व्यापक परमात्मा का जो ज्ञानी भक्त है वही ब्राह्मण कहलाने योग्य है। इसी ज्ञानी को विप्र भी कहते हैं, ऐसे वेदवेत्ता प्रभु के अनन्य भक्त ही ब्राह्मण होने चाहियें, न कि रसोई बनाने वाले बनियों की व्यापार वृत्ति व नौकरी करने वाले।

: १९ :

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्याभर।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि॥ ४।३२।२०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त प्रभो! आप (भूरिदा) बहुत देने वाले हो (नः) हमें (भूरि देहि) बहुत दो (मा दभ्रम्) थोड़ा नहीं, (भूरि आभर) बहुत लाओ। (इत्) निश्चित (भूरिधा) सदा बहुत (दित्ससि) देने की इच्छा करते हो।

भावार्थ—हे सर्व ऐश्वर्य के स्वामी परमात्मन्! आप अपने सेवकों को बहुत ही धनादि पदार्थ देते हो, हमें भी बहुत दो, थोड़ा नहीं, क्योंकि आपका स्वभाव ही बहुत देने का है, सदा बहुत देने की इच्छा करते हो। भगवन्! धनादि पदार्थों का प्राप्त होकर, उनको अच्छे कामों में हम लगावें, बुरे कामों में नहीं ऐसी ही आपकी प्रेरणा हो। हम धर्मात्मा और धनी ज्ञानी बन कर आपके ज्ञान और धर्म के फैलाने वाले बनें, जिससे कि हम सब का कल्याण हो।

: २० :

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्
आ नो भजस्व राधसि॥ ४।३२।२१॥

पदार्थ—हे (शूर) महाबलवान् प्रभो! हे (वृत्रहन्) अज्ञान

नाशक परमेश्वर ! (हि) निश्चय आप (पुरुत्रा भूरिदाः सर्वत्र बहुत देने वाले (श्रुतः असि) सुने गये हैं । (नः) हमें (रावसि) धन का (आ भजस्व) सब ओर से भागी बनाओ ।

भावार्थ—हे अज्ञान नाशक महा पराक्रमी प्रभो ! वेदादि सच्छास्त्र और इनके ज्ञाता महानुभाव महात्मा लोग, आपको सदा बहुत देने वाला बता रहे हैं । यह निश्चित है कि जो २ पदार्थ आपने हमें दिये हैं और दे रहे हैं वे अनन्त हैं । हम याचक हैं आप महादानी हैं अतएव हम आपसे वारम्वार माँगते हैं । भगवन् ! आप हमें धन दो, बल दो, ज्ञान दो, आयु दो, सुबुद्धि दो, शान्ति दो, सुख दो, मुक्ति दो ।

: २१ :

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्व मार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ।। ९।६३।५।।

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर की (वर्धन्तः) बड़ाई करते हुए (अप्तुरः) श्रेष्ठ कर्म करते हुए (विश्वम्) सबको (आर्यम्) वेदानुकूल कर्म करने वाला आर्य (कृण्वन्तः) बनाते हुए (अराव्णः) कृपण पापियों को (अपघ्नन्तः) परे हटाते हुए चले चलो ।

भावार्थ—परम प्यारे पिता परमात्मा, हम सब पुत्रों को उपदेश देते हैं, कि मेरे प्यारे पुत्रो ! तुम आलसी न बनो, वैदिक कर्मों के करने कराने वाले बनो, कंजूस मक्खीचूस स्वार्थी पापियों को परे हटाते हुए, सारे संसार को वेदानुकूल चलने वाला आर्य, परमेश्वर का भक्त और परमेश्वर का अनन्य प्रेमी बनाओ ।

: २२ :

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ।। ८।३४।३।।

पदार्थ—हे (इन्द्र) सकल ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर ! (त्वम्)

आप (सुतानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों के (ईशिषे) शासक हैं। (त्वम् असुतानाम्) उत्पन्न न होने वाले जीव प्रकृति आकाशादि पदार्थों के भी आप शासक हैं, (त्वं राजा जनानाम्) आप ही सब लोक लोकान्तरों के व प्राणीमात्र के राजा स्वामी हैं।

भावार्थ--हे सर्वशक्तिमान् परमात्मन्! आप उत्पन्न होने वाले पदार्थों के और अनादि जीव प्रकृति और सब ब्रह्माण्डों के राजा हैं। जड़ चेतन सब पदार्थों पर शासन कर रहे हैं। आपकी आज्ञा बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, ऐसे समर्थ आप प्रभु की शरण में हम आये हैं, कृपया आप ही हमारी रक्षा करें।

: २३ :

इन्द्रोदिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम्। इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः॥ १०।८९।१०॥

पदार्थ—(इन्द्रः दिवः ईशे) परमेश्वर द्युलोक पर शासन कर रहा है (इन्द्रः पृथिव्याः) वही इन्द्र पृथ्वी का शासक है (इन्द्रः अपाम्) परमेश्वर जलों का (इन्द्रः इत् पर्वतानाम्) इन्द्र ही मेघों का (इन्द्रः वृधाम्) इन्द्र वृद्धि वालों का (इन्द्रः इत् मेधिराणाम्) और इन्द्र ही मेधावियों का स्वामी है (क्षेमे) प्राप्त पदार्थों की रक्षा के लिये (योगे) अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति के लिये (हव्यः इन्द्रः) वह परमेश्वर ही प्रार्थना करने योग्य है।

भावार्थ—वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा द्युलोक पृथिवी लोक समुद्रादि जल और सम्पूर्ण मेघों पर शासन कर रहा है। सब उन्नति और उन्नति चाहने वाले मेधावियों पर भी उसी इन्द्र का शासन है। अपनी सब प्रकार की उन्नति और योग क्षेम के लिये हम सब को उसी दयालु पिता की प्रार्थना उपासना करनी चाहिये।

: २४ :

यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु विभजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥ १।८१।६ ॥

पदार्थ—(यः) जो (अर्यः) सब का स्वामी ईश्वर (मर्तभोजनम्) मनुष्यों के लिये भोजन (परा ददाति) ला कर देता है (दाशुषे) दान शील को विशेष कर देता है (इन्द्र) वह परमेश्वर (अस्मभ्यम्) हमें दे (शिक्षतु) शिक्षा भी करे। (विभजा) हे इन्द्र ! बांट कर दे। (भूरि ते वसु) तेरे पास बहुत धन है (भक्षीय तव राधसः) आपके धन को हम भोगें।

भावार्थ—यदि परमेश्वर इस जगत् को रच और धारण कर अपने जीवों को अनेक पदार्थ न देता, तो किसी को कुछ भी भोग सामग्री प्राप्त न हो सकती। जो यह परमात्मा वेद द्वारा मनुष्यों को शिक्षा भी न करता, तो किसी को विद्या का लेश भी न प्राप्त होता। इसलिये सब संसार के पदार्थ और विद्या, बुद्धि आदि सब गुण प्रभु के ही दिए हुए हैं।

: २५ :

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ १।१६४।४६॥

पदार्थ—(विप्राः) मेधावी विद्वान् (एकम् सत्) एक सद्रूप परमात्मा को (बहुधा) अनेक प्रकार से (वदन्ति) वर्णन करते हैं, उसी एक को, इन्द्र मित्र, वरुण, अग्निः (अथ उ) और (सः) वह (दिव्यः) अलौकिक (सुपर्णः) उत्तम ज्ञान और उत्तम कर्म वाला (गरुत्मान्) गौरवयुक्त है, उसी को ही (यमम् मातरिश्वानम्) यम और मातरिश्वा वायु (आहुः) कहते हैं।

भावार्थ—एक परमात्मा के अनेक सार्थक नाम हैं जैसे इन्द्र, मित्र, वरूण अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम्, मातरिश्वा, इस मन्त्र में कहे गए हैं, और अन्य अनेक मन्त्रों में भी प्रभु के अनेक नाम वर्णित हैं। इन नामों से एक परमात्मा का ही उपदेश है। अनेक देवी देवताओं की उपासना का उपदेश वेदों में नहीं है। स्वार्थी लोगों ने ही अनेक देवताओं की उपासना को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कहा है। वेदों में तो इसका नाम निशान नहीं, वेदों में एक परमात्मा की उपासना का ही विधान है ॥

: २६ :

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्रवाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥
७।३२।२३॥

पदार्थ—हे (मघवन् इन्द्र) परम ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर! (त्वावान) आप जैसा (अन्य) आप से भिन्न (न दिव्यः) न द्युलोक में और (न पार्थिवः) न ही पृथिवी पर (न जातः) न हुआ, और (न जनिष्यते न होगा। (अश्वायन्तः) घोड़े आदि सवारियों की इच्छा करते हुए (गव्यन्तः) दुग्धादिकों के लिये गौवों की इच्छा करते हुए (वाजिनः) ज्ञान और अन्न बलादि से युक्त हो कर (त्वा हवामहे) आपकी प्रार्थना उपासना करते हैं।

भावार्थ—परमेश्वर के तुल्य न कोई हुआ है और न होगा। सारे ब्रह्माण्ड उसी के बनाए हुए हैं और वही सबका पालनपोषण कर रहा है। अतएव हम सब नर नारी, उसी से गौ आदि अश्वादि उपकारक पशु और अन्न, जल, बल, धन ज्ञानादि मांगते हैं। क्योंकि बड़े राजा महाराजादि भी उसी से भिक्षा मांगने वाले हैं, हम भी उसी सब के दाता परमात्मा से इष्ट पदार्थ मांगते हैं।

: २७ :

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि।

७।३२।२६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सर्वज्ञ प्रभो! (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छे ज्ञान और शुभ कर्मों को सिखलाता है, ऐसे ही आप (नः) हमें (क्रतुम्) ज्ञान और शुभ कर्मों की ओर (आभर) ले चलो। (पुरुहूत) बहु पूज्य (नः शिक्षा) हमें शिक्षा दो (अस्मिन् यामनि) इस जीवन यात्रा में (जीवाः) हम जीते हुए (ज्योतिः अशीमहि) आपकी दिव्य ज्योति को प्राप्त होवें।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् इन्द्र! हमें ज्ञानी और उद्यमी बनाओ, जैसे पिता पुत्रों को ज्ञानी और उद्योगी बनाता है। ऐसे हम भी आपके पुत्र ब्रह्मज्ञानी और सत्कर्मी बनें ऐसी प्रेरणा करो। हे भगवन्! हम अपने जीवन काल में ही, आपके कल्याण कारक ज्योतिस्वरूप को प्राप्त होकर, अपने दुर्लभ मनुष्य-जन्म को सफल करें। दयामय परमात्मन्! आपकी कृपा के बिना न हम ज्ञानी बन सकते हैं, न ही सुकर्मी, अतएव हम पर आप कृपा करें कि हम आपके पुत्र ज्ञानी और सत्कर्मी बनें।

: २८ :

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम्।
अग्निमीळे स उ श्रवत्। **८।४३।२४॥**

पदार्थ—(विशाम्) सब राजाओं के (अद्भुतम् राजानम्) आश्चर्यकारक राजा (धर्मणाम्) धर्म कार्यों के (अध्यक्षम्) अधिष्ठाता अर्थात् फलप्रदाता (इमम् अग्निम्) इस अग्निदेव की (ईडे) मैं स्तुति करता हूँ, (सः) वह देव (उ श्रवत्) अवश्य सुने।

भावार्थ—परमात्मदेव राजा और धार्मिक कामों के फल-प्रदाता हैं, अपने पुत्रों की प्रेमपूर्वक की हुई स्तुति प्रार्थना को बड़े प्रेम से सुनते हैं। हे जगत्‌पिता परमात्मन्! मेरी टूटे-फूटे शब्दों से की हुई प्रार्थना को आप अवश्य सुनें। जैसे तोतली वाणी से की हुई बालक पुत्र की प्रार्थना को सुनकर पिता प्रसन्न होता है, वैसे आप भी हम पर प्रसन्न होवें।

: २९ :

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्य।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्त्तः सचसे पुरन्ध्या।
२।१।३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सर्वव्यापक ज्ञान स्वरूप ज्ञानप्रदाता परमात्मन्! (त्वम् इन्द्रः) आप सारे ऐश्वर्य के स्वामी और (सताम् वृषभः) श्रेष्ठ पुरुषों पर सुख की वर्षा करने वाले (उरुगायः) बहुत स्तुति के योग्य (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य (विषणु) सर्वत्र व्यापक हो। हे (ब्रह्मणः पते) सारे ब्रह्माण्ड के और वेदों के रक्षक (त्वं विधर्तः) आप ही जगत् के धारण करने वाले हैं। (पुरन्ध्या सचसे) अपनी बड़ी बुद्धि से मिलते और प्यार करते हैं, (त्वं रयिविद् ब्रह्मा) आप ही धन वाले ब्रह्मा हैं।

भावार्थ—परमात्मन्! आपके अनेक शुभ नाम हैं। जैसे अग्नि, इन्द्र, वृषभ, विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पति आदि, यह सब नाम सार्थक हैं, निरर्थक एक भी नहीं। प्रभु अपने प्रेमी भक्तों पर सुख की वृष्टि कर्त्ता और सब के वन्दनीय और स्तुत्य आप ही हो। जितने महानुभाव ऋषि मुनि हुए हैं, वे सब आप के भक्त गुण गाते गाते कल्याण को प्राप्त हुए। आप अपनी उदार बुद्धि से अपने भक्तों को सदा मिलते और प्यार करते हैं।

: ३० :

त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि। त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे, त्वं पायुर्दमे तेस्यऽविधत् ।
२।१।७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पूजनीय नेता (अरंकृते) श्रेष्ठ आचरणों से अलंकृत उद्यमी पुरुष के लिये (त्वं द्रविणोदा) आप धन के दाता देव सब जगत् के जनक और (रत्नधा) रमणीय पदार्थों के धारण करने वाले (असि) हैं, हे (नृपते) मनुष्यमात्र के स्वामी (त्वं भगः) आप ही भजनीय सेवनीय हैं (वस्वः) धन के (ईशिषे) नियन्ता हैं (दमे) सब इन्द्रियों का दमन कर (यः ते अविधत्) जो आपकी भक्तिः प्रार्थना उपासना करता है (त्वं पायु) आप ही उसके रक्षक हो।

भावार्थ—हे पूजनीय सबके नेता परमात्मन् ! जो भद्र पुरुष श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले हैं, उनको आप धन देते हो, उन प्रेमी भक्तों के लिये ही आपने रमणीय सकल ब्रह्माण्ड धारण किए हुए हैं, जो श्रेष्ठ पुरुष अपनी इन्द्रियों का दमन करके आपकी उपासना करते हैं, उनकी रक्षा करते हुए, उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चार पुरुषार्थ प्रदान करते हो।

: ३१ :

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् । सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ।
१।३१।१०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सबके नेता प्रभो (त्वं प्रमतिः) आप श्रेष्ठ ज्ञान वाले और (नः पिता असि) हमारे पालन पोषण करने वाले पिता (वयः कृत्) जीवनदाता हैं। (वयं तव जामयः) हम सब आपके बान्धव हैं। हे (अदाभ्य) किसी से न दबने वाले परमात्मन्

(सुवीरम्) उत्तम वीरों से युक्त और (व्रतपाम) नियमों के रक्षक (त्वा शतिनः) आपको सैकड़ों (सहस्रिणः) हज़ारों (रायः) धन ऐश्वर्य (संयन्ति) प्राप्त हैं।

भावार्थ—हे परमपिता जगदीश! आप ही सबको सुबुद्धि प्रदान करते हैं, जीवन दाता और सबके पिता भी आप ही हैं। हम सब आपके बन्धु हैं, आप किसी से दबते नहीं, महासमर्थ होकर भी अपने अटल नियमों के पालन करने वाले हैं। सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों के आप ही स्वामी हैं। हम आपकी शरण में आए हैं, हमें सुबुद्धि और अनेक प्रकार का ऐश्वर्य देकर सदा सुखी बनावें, हम सुखी होकर भी आपकी सदा भक्ति करते रहें।

: ३२ :

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्त्ताः। शतं नो रास्व शरदो विचक्षे अश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥ २।२७।१०॥

पदार्थ—हे (वरुण) सर्वोत्तम! हे (असुर) प्राणदातः (त्वं विश्वेषाम् राजा) आप उन सबके राजा (असि) हो (ये च देवाः) जो देवता हैं (ये च) और जो (मर्ताः) मनुष्य हैं (नः) हमें (शतं शरदः) सौ बरस आयु (विचक्षे) देखने के लिए (रास्व) दो, (सुधितानि) अच्छी स्थापन की हुई (पूर्वा) मुख्य (आयूंषि) आयुओं को (अश्याम) प्राप्त होवें।

भावार्थ—हे जीवनदाता सर्वोत्तम परमात्मन्! संसार में जितने दिव्य शक्ति वाले अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्रादि जड़ देव हैं, और चेतन विद्वान् मनुष्य भी जो देव कहलाने के योग्य हैं, इन सबके आप ही राजा, स्वामी हो, इसलिए आपसे ही मांगते हैं कि हमें आपके ज्ञान और भक्ति के लिए सौ बरस पर्यन्त जीता रक्खो, जिससे हम मुख्य पवित्र आयु को प्राप्त होकर अपना और जगत् का कुछ कल्याण कर सकें।

: ३३ :

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः । त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥ २।१।४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सबके पूज्य देव (त्वं राजा वरुणः) तू ही सबका राजा वरुण (धृतव्रतः) नियमों को धारण करने वाला (दस्मः) दर्शनीय (मित्रः) सबका मित्र और (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (भवसि) है। (त्वम् अर्यमा) तू ही न्यायकारी (त्वम् सत्पतिः) तू ही सज्जनों का पालक (यस्य) जिसका (संभुजम्) दान सर्वत्र फैला हुआ है (त्वं अंशः) तू यथा योग्य विभाजक (विदथे) यज्ञादिकों में (भाजयुः) सेवनीय होता है।

भावार्थ—परमात्मा के अग्नि, देव, वरुण, मित्र, अर्यमा, अंशादि अनेक नाम हैं। इसी की यज्ञादि उत्तम कर्मों में स्तुति करनी चाहिये। वही सबको उनके कर्म अनुसार फल देने वाला है, और वही सेवनीय है।

: ३४ :

यो मृडयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः । अनुव्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७।८७।७॥

पदार्थ—(यः) जो प्रभु (आगः चक्रुषे) अपराध करने वाले पर (चित्) भी (मृडयाति) दया रखता है (वरुणे) उस श्रेष्ठ जगदीश्वर के समीप (वयम् अनागाः स्याम) हम अपराध हीन होवें (अदितेः) उस अखण्ड अविनाशी परमेश्वर के (व्रतानि अनु) नियमों के अनुसार (ऋधन्तः) आचरण करें। हे महात्मा पुरुषो! (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (पात) रक्षित करो।

भावार्थ—हम जीव अनेक अपराध करते हैं, तो भी वह दयालु पिता, हमें अनेक प्रकार के भोग्य पदार्थ देता ही रहता है। वही प्रभु हमें उत्तम वेदानुयायी विद्वान् भक्त महापुरुषों का सहवास भी देता है। उन महात्माओं के उपदेशों से हम भी प्रभु के अनन्य भक्त बनकर कल्याण के भागी बन जाते हैं ॥३४॥

: ३५ :

तमध्वरेष्वीडते देवं मर्ता अमर्त्यम् ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥ ५।१४।२॥

पदार्थ—(मर्ताः) मनुष्य (मानुषे जने) मनुष्य मात्र के अन्दर वर्तमान (तं यजिष्ठम्) उस पूजनीय (अमर्त्यम्) अमर देव की (अध्वरेषु) यज्ञादि उत्तम कर्मों में (ईलते) स्तुति करते हैं।

भावार्थ—जगत्पिता परमात्मा अन्तर्यामी रूप से मनुष्यमात्र के अन्दर विराजमान है, वही अमर और सबका पूजनीय है, उसी की यज्ञादि उत्तम कर्मों में बड़े प्रेम से उपासना करनी चाहिए। जिन यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में, उस अमर और पूजनीय प्रभु की उपासना, प्रार्थना प्रेम से की गई हो, वह यज्ञादि कर्म निर्विघ्न समाप्त होते और अत्यन्त कल्याणके साधक बनते हैं।

: ३६ :

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि संजयामि शश्वतः। मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम् ॥ १०।४८।१॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (वसुनः) धन का (पूर्व्यः पतिः) मुख्य स्वामी (भुवम्) होता हूं, (अहम् शश्वतः धनानि) मैं सनातन धनों को (संजयामि) उत्तम रीति से प्राप्त करता हूं। (जन्तवः) सब मनुष्य (पितर न) पिता की नांई (मां हवन्ते) मुझे धन प्राप्ति

के लिये पुकारते हैं (ग्रहं दाषे) मैं दानशील के लिये (भोजनम् विभजामि) अनेक प्रकार के धन और भोजनादि सुन्दर २ पदार्थ देता हूँ।

भावार्थ—परमदयालु परमात्मा, मनुष्यों को वेद द्वारा उपदेश देते हैं—हे मेरे पुत्रो! मैं सब धनों का स्वामी हूं, मेरे अधीन ही सब पदार्थ हैं। जैसे बालक अपने पिता से मांगते हैं, वैसे ही सब मनुष्य मुझसे मांगते हैं, सब का दाता मैं ही हूं। परन्तु दानशील मनुष्य को मैं विशेष रूप से धनादि पदार्थ देता हूँ, क्योंकि वह दाता सदा उत्तम कर्मों में ही धन को खर्च करता है।

: ३७ :

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः। यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥ १०।१२५।५॥

पदार्थ—(अहम् एव स्वयम्) मैं आप ही (इदम् वदामि) यह कहता हूँ, (जुष्टम् देवेभिः) जो मेरा वचन विद्वानों ने प्रेम से सुना (उत मानुषेभिः) और सब मनुष्यों ने भी प्रीतिपूर्वक सेवन किया। (यं कामये तं तं उग्रं कृणोमि) जिस-जिसको मैं चाहता हूँ उस उसको तेजस्वी क्षत्रिय बनाता हूँ,(तं ब्रह्माणम्) उसको ब्रह्मा, चारों वेदों का वक्ता (तं ऋषिम्) उसको ऋषि (तं सुमेधाम्) उसको धारण करने वाली श्रेष्ठ बुद्धिवाला बनाता हूँ।

भावार्थ—परमदयालु पिता वेद द्वारा हम सब को कहते हैं कि हे मेरे प्यारे पुत्रो! मेरे वचनों को सब विद्वानों ने और साधारण बुद्धिवाले मनुष्यों ने बड़े प्रेम से सुना और सेवन किया। मैं ही तेजस्वी क्षत्रिय को, चार वेद का वक्ता ब्रह्मा, ऋषि को और उज्ज्वल बुद्धि वाले सज्जन को बनाता हूँ। आप लोग वेदानुकूल कर्म करने वाले मेरे प्रेमी भक्त बनो, ताकि मैं आप लोगों को भी उत्तम बनाऊँ।

: ३८ :

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय । अहमपो अनयं वावशाना मम देवासोअ नुकेतमायन् ॥४।२६।२॥

पदार्थ—(आर्याय अहं भूमिम् अददाम्) मैं अपने पुत्र आर्य पुरुष को पृथ्वी देता हूँ, (अहम्) मैं (दादुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य के लिये धन की (वृष्टिम्) वर्षा करता हूं (अहम्) मैं ही (वावशानाः अपः) बड़े शब्द करने वाले जलों को (अनयम्) पृथिवी पर लाया हूँ (देवासः) विद्वान् लोग (मम केतम्) मेरे ज्ञान के (अनुआयन्) अनुसार चलते हैं ।

भावार्थ—दयामय परमात्मा का उपदेश है कि बुद्धिमान् आर्य पुरुषो ! मैं अपने पुत्र आर्य पुरुषों आप लोगों को पृथिवी देता हूँ, धनादि उत्तम पदार्थों की आपके लिये वर्षा करता हूं, नदियों का उत्तम जल भी मैं आप लोगों के लिये लाता और बरसाता हूँ, तुम अपनी अयोग्यता से खो देते हो । धार्मिक विद्वान् बनो, क्योंकि सब विद्वान् मेरे ज्ञान और मेरी आज्ञा के अनुसार चल कर ही सुखी होते हैं ।

: ३९ :

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति । ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ७।२७।३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (जगतः) सारे जगत् का और (चर्पणीनाम्) मनुष्यों का (क्षमि अधि) पृथिवी में (यत्) जो (वि-सुरूपम्) अनेक प्रकार का सुन्दर पदार्थ समुदाय (अस्ति) है उसका (राजा), प्रकाशक और स्वामी है (ततः) उस पदार्थ समूह से (दाशुषे) दाता मनुष्य को (वसूनि) अनेक प्रकार के धनों को (ददाति) देता है, (चित्) यदि (अर्वाक्) प्रथम वह (राधः) धन का

(चोदत्) प्रेरक (उपस्तुतः) स्तुति किया गया हो ।

भावार्थ—जो यह सब स्थावर जंगम संसार है, इस सब का प्रकाशक और स्वामी परमेश्वर है, वह सब को उनके कर्मानुसार अनेक प्रकार के धनादि सुन्दर पदार्थ प्रदान करता है। सब मनुष्यों को चाहिये कि उस प्रभु की वेदानुकूल स्तुति प्रार्थना उपासनादि करें, इस लिये अनेक सुन्दर पदार्थों की प्राप्ति के लिये भी, हमें उस जगत्पति की प्रार्थनादि करनी चाहिये ।

: ४० :

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आगहि ॥ १।४।३॥

पदार्थ—हे इन्द्र (ते अन्तमानाम्) आप के समीपवर्ती-आपकी आज्ञा में स्थित (सुमतीनाम्) श्रेष्ठबुद्धि वाले महात्माओं के समागम से (विद्याम) आपके यथार्थ स्वरूप को हम जान लेवें और आप के (नः) हम को (मा अतिख्यः) हमारे हृदय में स्थित हुये महात्माओं के उपदेश का उलंघन करने वाला मत बनाओ किन्तु (आगहि) प्राप्त होओ ।

भावार्थ—हे परमात्मन्! आप हमें सदाचारी, परोपकारी, विद्वान् अपने भक्त, महात्मा सन्तजनों का सत्सङ्ग दो क्योंकि सत्सङ्ग के प्रभाव से अनेक नीच उत्तम बन गये, मूर्ख विद्वान् बन गये, जिनको प्रथम कोई नहीं जानता था, वे माननीय कीर्ति वाले बन गये दुराचारी दुर्व्यसनी पतित भी आप के अनन्य भक्त, सदाचारी और पतितपावन बन गए, सत्सङ्ग की महिमा अपार है। सत्सङ्ग से जो २ लाभ होते हैं, वे लिखे वा कहे नहीं जा सकते । इस लिये पिता जी! आप ने हम को वेद द्वारा कहा है कि तुम मेरे से सत्संग की प्रार्थना करो, जिससे तुम्हारा यह मनुष्य जन्म सफल हो। बिना सत्संग के श्रद्धाहीन महामलीन पराधीन निश-

दिन विषयों में लवलीन, व्यर्थ बकवक करने वालों को कुछ भी लाभ नहीं होता।

: ४१ :

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।
१०।१२१।१॥

पदार्थ—(हिरण्यगर्भः) सूर्यचन्द्रादि तेजस्वी पदार्थों को उत्पन्न करके धारण करने वाला (अग्रे) सब जगत् की उत्पत्ति से प्रथम समवर्त्तत ठीक वर्त्तमान था, (भूतस्य) वही उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (आसीत्) है, (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है। हम सब लोग (कस्मै) उस सुखस्वरूप प्रजापति (देवाय) सब सुख प्रदाता परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य प्रेम भक्ति से (विधेम) सेवा किया करें।

भावार्थ—जो परमात्मा इस संसार की रचना से प्रथम एक ही जाग रहा था, जीव गाढ़ निद्रा में लीन थे और जगत् का कारण भी सूक्ष्मावस्था में था, उसी परमात्मा ने पृथिवी सूर्य चन्द्रादि लोकों को उत्पन्न करके धारण किया हुआ है, वही सुख, स्वरूप सब का स्वामी है, उसी सुखदाता जगत्पति की श्रद्धा और प्रेम से सदा भक्ति करनी चाहिये अन्य की नहीं।

: ४२ :

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ **१०।१२।१।२।**

पदार्थ—(यः) जो (आत्मदा) आत्म ज्ञान का दाता (बलदा) और जो शरीर, आत्मा और समाज के बल का दाता है (यस्य)

जिसकी (विश्वे) सब (देवा:) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसकी (प्रशिषम्) उत्तम शासन पद्धति को मानते हैं (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है और (यस्य) जिसका न मानना, भक्ति न करना ही (मृत्यु:) मरण है (कस्मै देवाय) उस सुखस्वरूप सकल ज्ञानप्रद परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) श्रद्धा भक्ति से हम (विधेम) वैदिक आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

भावार्थ—वह पूर्ण परमात्मा अपने भक्तों को अपना ज्ञान और सब प्रकार का बल प्रदान करता है। सब विद्वान् लोग जिसकी सदा उपासना करते हैं और जिस की ही वैदिक आज्ञा को शिरोधार्य मानते हैं, जिसकी उपासना करना मुक्तिदायक है, जिसकी भक्ति न करना बारंबार संसार में, अनेक जन्ममरणादि कष्टों का देने वाला है। इसलिये ऐसे प्रभु से हमें कभी विमुख न होना चाहिये।

: ४३ :

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद: कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १०।१२१।३॥

पदार्थ—(य:) जो (प्राणत:) श्वास लेने वाले (निमिषत:) और अप्राणिरूप (जगत:) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) हुआ है (य:) जो (अस्य द्विपद:) इस दो पांव वाले शरीर और (चतुष्पद:) गौ आदि चार पांव वाले शरीर की (ईशे) रचना करके उन पर शासन करता है (कस्मै) सुख स्वरूप, सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य परमब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप तो सब जगत् के महाराजाधिराज, समस्त जगत के उत्पन्न करने हारे, सकल ऐश्वर्य युक्त महात्मा न्यायाधीश हैं। आप जगत्पति की उपासना से ही धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह चारों पुरुषार्थ प्राप्त हो सकते हैं, अन्य की उपासना से कभी नहीं।

: ४४ :

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०।२१।५॥

पदार्थ—(येन) जिस परमेश्वर से (उग्रा) तेजस्वी (द्यौः) प्रकाशमान सूर्यादि लोक और (दृढा) बड़ी दृढ़ (पृथिवी) पृथिवी (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सामान्य सुख (स्तभितम्) धारण किया और (येन) जिस प्रभु ने (नाकः) दुःखरहित मुक्ति को भी धारण किया है। (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) लोक लोकान्तरों को (विमानः) निर्माण करता और भ्रमण कराता है। जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं ऐसे ही सब लोक जिसकी प्रेरणा से घूम रहे हैं (कस्मै) उस सुखदायक (देवाय) दिव्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा विधेम) प्रेम से भक्ति करें।

भावार्थ – हे जगत्पते ! आपने ही बड़े तेजस्वी सूर्यचन्द्रादि लोक और बिस्तीर्ण पृथिवी आदि लोक और सामान्य सुख और सब दुःखों से रहित मुक्ति सुख को भी धारण किया हुआ है, अर्थात् सब प्रकार का सुख आपके अधीन है, ऐसे समर्थ, आकाश की न्याईं व्यापक, आप की भक्ति से ही लोक परलोक का सुख प्राप्त हो सकता है अन्यथा नहीं।

: ४५ :

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १०।१२१।१०।

पदार्थ—हे (प्रजापते) प्रजापालक, प्रजा के स्वामी परमात्मन् ! (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए, जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वांछा करें (तत्) वह पदार्थ (नः) हमारे लिये (अस्तुः) वर्त्तमान हो (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) सब प्रकार के धनों के (पतयः स्याम) स्वामी होवें।

भावार्थ—हे जगत्पते अन्तर्यामिन् ! आप सारे जगतों पर अखण्ड राज्य कर रहे हो। आपके बिना दूसरे किसकी शक्ति है जो प्रत्यक्ष और परोक्ष लोक लोकान्तरों पर शासन करे ? आप की कृपा से ही आपके उपासकों को इस लोक और परलोक का ऐश्वर्य प्राप्त हो सकता है।

: ४६ :

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते। यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥ २।१२।९।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (यस्मात् ऋते) जिस आपकी कृपा के बिना (जनासः) मनुष्य (न विजयन्ते) विजय को नहीं प्राप्त होते (युध्यमानाः) युद्ध करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (यम् हवन्ते) जिस आपकी प्रार्थना करते हैं (यः) जो भगवान्

(विश्वस्य) सब जगत् का (प्रतिमानम् बभूव) प्रत्यक्ष मापने वाला है (यो अच्युत च्युत्) जो प्रभु आप न गिरता हुआ दूसरों को गिराने वाला है (जनासः) हे मनुष्यो ! (स इन्द्रः) वह इन्द्र है।

भावार्थ--जिस प्रभु की कृपा के बिना मनुष्य कभी विजय को नहीं प्राप्त हो सकते। काम क्रोधादि आभ्यन्तर शत्रुओं के साथ और बाहिर के शत्रुओं के साथ भी युद्ध करते हुए, अपनी रक्षा के लिये जिसकी प्रार्थना सब मनुष्य करते हैं। जो प्रभु आप अटल हुआ भी दूसरे सबों को गिरा देता है। हे मनुष्यो ! वह सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ही इन्द्र है, ऐसा आप सब लोग जानो।

: ४७ :

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः। विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १।५२।१३॥

पदार्थ—(त्वम्) भगवन् ! आप (भुवः) अन्तरिक्ष और (पृथिव्याः) विस्तृत भूमि के (प्रतिमानम्) प्रत्यक्ष मापने वाले (बृहतः) बड़े द्युलोक के (पतिः भूः) स्वामी हैं (विश्वम्) सब (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को आपने (महित्वा) अपने महत्त्व से (आप्राः) परिपूर्ण किया है (सत्यम्) यह सत्य (अद्धा) और निश्चित है कि (त्वावान्) आप जैसा (अन्यः न किः) दूसरा कोई नहीं।

भावार्थ—परमेश्वर आकाश और सारी पृथिवी को प्रत्यक्ष मापने और जानने वाला है, बड़े-बड़े दर्शनीय वीर और नक्षत्रों वाले महान् द्युलोक का भी स्वामी है। सारे मध्यलोक को जिस प्रभु ने व्याप्त कर रक्खा है। यह निश्चित सत्य है, कि उस जैसा दूसरा कोई तीनों लोकों में न हुआ, न है और न ही होगा।

: ४८ :

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः। तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ ७।३२।१७॥

पदार्थ—हे दयामय जगदीश (त्वम् विश्वस्य धनदा असि) आप सबको धन देने वाले हैं (ये आजयः) जो युद्ध (ईं भवन्ति) यहां होते हैं उनमें भी (श्रुतः) आपका यश होता है (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे गये ! (तव अयम्) आपका यह (पार्थिवः) पृथिवी पर रहने वाला (अवस्युः) अपनी रक्षा चाहने वाला मनुष्य (नाम) प्रसिद्ध (भिक्षते) आपसे ही सब कुछ मांगता है।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! सारे जगत् में जितने मनुष्य हैं ये सब, आपसे ही अपनी रक्षा चाहते हैं और आपसे ही अनेक प्रकार का धन ऐश्वर्य मांगते हैं। आप उनके कर्मानुसार उनकी रक्षा करते और धन भी देते हैं। जिस धन के लिए संसार में अनेक युद्ध हुए और होते रहते हैं, उस धन के प्रदाता भी आप ही हैं, बड़े-बड़े राजा महाराजा भी आपके आगे सब भिखारी हैं। आप अपने प्यारे भक्तों से प्रसन्न होकर सब धनादि पदार्थ देकर इस लोक में सुखी करते, और परलोक में भी मुक्ति सुख देकर सदा सुखी बनाते हैं।

: ४९ :

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः। बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि। ३।५३।१८॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (नः तनूषु) हमारे शरीर में (बलं धेहि) बल दो (नः अनड्सु) हमारे बैलादि पशुओं को बल दो, (बलं तोकाय तनयाय) हमारे पुत्र-पौत्रों को बल दो। (जीवसे) सुखपूर्वक जीने के लिये (त्वम् हि बलदा असि) आप ही बलदाता हो।

भावार्थ—हे महा समर्थ परमेश्वर ! कृपा करके हमारे शरीरों में बल प्रदान करें, जिससे हम आपकी भक्ति और वेद विचार, प्रचारादि कर सकें, ऐसे ही हमारे पुत्र, पौत्रादि सन्तानों में भी बल और जीवन प्रदान करें जिससे उनमें भी, आपकी भक्ति, और वेद विचारादि उत्तम साधनों का सद्भाव बना रहे, और जिससे सब लोग आस्तिक और आपके प्रेमी भक्त बनकर सदा सुख के भागी बनें। भगवन् ! आप ही सबके बलप्रदाता हो, इसलिए आपसे ही बल की हम लोग प्रार्थना करते हैं।

: ५० :

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममापृण। अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे॥ १।५७।५॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (भूरि ते वीर्यम्) आपका बल बड़ा है (तव स्मसि) हम आपके हैं, (मघवन्) हे धनवान् प्रभो ! (अस्य स्तोतुः) अपने इस स्तोता की (कामम् आपृण) कामना को पूर्ण करो (बृहती द्यौः) यह बड़ा द्युलोक (ते वीर्यम्) आपके बल का (अनुममे) अनुमान कर रहा है (इयम् च पृथिवी) और यह पृथिवी (ते ओजसे नेमे) आपके बल के सामने नम्र हो रही है।

भावार्थ—हे समर्थ प्रभो ! आप महाबली हो, यह समग्र पृथिवी और यह बड़ा द्युलोक आपने ही बनाया है। यह पृथिवी आदि लोक लोकान्तर, हमें अनुमान द्वारा बता रहे हैं, कि हमारा कर्ताधर्ता सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर है, क्योंकि हम देखते हैं कि जड़ से अपने आप ही कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं होता, चेतन जीव की इतनी शक्ति नहीं, कि इस सारी पृथिवी और द्युलोक, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि लोक लोकान्तरों को उत्पन्न कर सके। इसलिए हम स्तोता, आपकी ही स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं, आप हमारी कामनाओं को पूर्ण करें।

: ५१ :

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्य्यमुषसं सुदंसाः ॥ ३।३२।८॥

पदार्थ—(यः) जो (पृथिवीम् दाधार) पृथिवी को उत्पन्न करके धारण कर रहा है। (उत इमाम् द्याम्) और इस द्यौलोक को उत्पन्न करके धारण कर रहा है और जिस (सुदंसाः श्रेष्ठ कर्मों वाले ने (सूर्य्यम्) सूर्य और (उषसम्) प्रभात को (जजान) उत्पन्न किया है उस (इन्द्रस्य कर्म) इन्द्र के कर्मों को जो (सुकृता) अच्छी तरह से किये हुए (पुरूणि) बहुत अनन्त और (व्रतानि) नियम बद्ध हैं, (विश्वे देवाः) सब विद्वान् (न मिनन्ति) नहीं जानते।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् इन्द्र के नियम बद्ध, अनन्त, श्रेष्ट कर्म हैं, जिनको बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं जान सकते। जिस प्रभु ने, इस सारी पृथिवी को और ऊपर के द्युलोक को उत्पन्न करके धारण किया है, और उसी उत्तम कर्मों वाले जगत्पति परमात्मा ने, इस तेजोराशी सूर्य को तथा प्रभात को उत्पन्न किया है। मनुष्यों के कैसे भी नियम बद्ध कर्म क्यों न हों, इनका उलट-पुलट होना हम देख रहे हैं, परन्तु उस जगदीश के अटल नियमों को कोई तोड़ नहीं सकता है।

: ५२ :

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ १०।१८।२॥

पदार्थ—(मृत्योः पदम्) मृत्यु के पांव को (योपयन्तः) परे हटाते हुए (द्राघीयः आयुः) लम्बी आयु को (प्रतरम्) अधिक दीर्घ बनाकर (दधानाः) धारण करते हुए (यदा एत) जब तुम चलो तब

(प्रजया धनेन) प्रजा से और धन से (आप्यायमानाः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (शुद्धाः) बाहर से शुद्ध (पूताः) मन से पवित्र (यज्ञियासः) पूजनीय (भवत) होवो।

भावार्थ—परम दयालु जगदीश का उपदेश है, कि मेरे प्यारे पुत्रो ! आप लोग मृत्यु के पांव, दुराचार और मन की अपवित्रता को परे हटाते हुए, सत्सग सदाचार ब्रह्मचर्य और वेदों के स्वाध्यायादि साधनों से, अपनी आयु को बढ़ाते हुए मेरे मार्ग पर आओ। मेरी अनन्य भक्ति, आप लोगों को अन्दर बाहर से शुद्ध करती हुई, प्रजा धनादिकों से सन्तुष्ट करके पूजनीय बनावेगी।

: ५३ :

सहस्र साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः। शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥ १।८०।६॥

पदार्थ—(सहस्रम्) हजार (साकम्) साथ मिलकर (अर्चत) स्तुति करो (परि स्तोभत) स्तोत्र उच्चारण करो (विंशतिः) बीस (शता) सैंकड़ों ने (एनम्) इसकी (अनु अनोनवुः) बारम्बार स्तुति की है। (इन्द्राय) इन्द्र के लिए (ब्रह्म) मन्त्र रूप स्तुति (उत) ऊपर (अयतम) उठाई गई, वह (अनुस्वराज्यम्) अपने राज्य को (अर्चत) प्रकाशित करता हुआ विराजमान है।

भावार्थ—हे मुमुक्षु पुरुषो ! आप हजार इकट्ठे होकर इन्द्र भगवान् की स्तुति करो, बीस इकट्ठे होकर स्तोत्र उच्चारण करो, इसकी सैंकड़ों ने बारम्बार स्तुति की है। ऋषि महात्माओं ने मन्त्र रूप स्तुति की ध्वनि को ऊपर उठाया है। वह इन्द्र भगवान् अपने राज्य को प्रकाशित करता हुआ विराजमान है। जो विदेशी लोग कहा करते हैं कि, भारतवासी, मिलकर बैठना और मिलकर प्रभु की प्रार्थना करना जानते ही नहीं उनको चाहिये कि, इस मन्त्र को देखें, हमारे महर्षि लोग, जो वेदों का अभ्यास करते थे,

वे सब इस बात को जानते थे। एकान्त वनों में बैठकर उपासना करते, सभा समाजों में भी आते, इकठ्ठे बैठकर प्रभु प्रार्थना करते कराते थे।

: ५४ :

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ११०।६॥

पदार्थ—हम सब लोग (तम् इत्) उस इन्द्र को ही (सखित्ये) मित्रता के लिए (तम् राये) उसको धन के लिए (ईमहे) मांगते हैं (स शक्रः) वह शक्तिमान् है, (इन्द्रः) उस इन्द्र ने (नः) हमको (वसु दयमानः) धन देते हुए (शकत्) शक्तिमान् किया है।

भावार्थ—हम सब लोग, उस इन्द्र परमेश्वर की, मित्रता के लिए, धन के लिए और उत्तम सामर्थ्य के लिए प्रार्थना करते हैं। उस शक्तिमान् इन्द्र प्रभु ने ही, हमें धन देते हुए, शक्तिमान् बनाया है। यदि वह परमात्मा, हमें शरीरबल, बुद्धिबल और सामाजिक बल न देता तो हम लोग कैसे जीवित रह सकते? सृष्टि रचना के आदि में ही उस प्रभु ने मनुष्य जाति को उत्पन्न किया, बुद्धिबल आदि इस जाति को दिए तब ही तो यह मनुष्य जाति जीवित है, नहीं तो यह जाति कब की नष्ट भ्रष्ट हो जाती। इस जाति का नाश उस परमात्मा को अभीष्ट नहीं है।

: ५५ :

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ।८।६१।१६।

पदार्थ—हे इन्द्र प्रभो ! (नः पश्चात्) हमारी पीछे से (अध-रात्) नीचे से (उत्तरात्) ऊपर से (पुरः) आगे से और (विश्वतः) सब ओर से (निपाहि) सदा रक्षा करें। (दैव्यम् भयम्) आधिदैविक भयको और (अदेवीः) मनुष्य और राक्षसों से होने वाले (हेतीः)

भय को भी (अस्मत्) हम से (आरे कृणुहि) दूर करें ।

भावार्थ—हे कृपासिन्धो परमात्मन् ! पीछे से, नीचे से, ऊपर से, आगे से और सब दिशाओं से हमारी सब प्रकार सदा रक्षा करें । अग्नि, बिजली आदि से होने वाला आधिदैविक भय, और चिन्ता ज्वरादि से होने वाला आध्यात्मिक भय, सिंह, सर्प, चोर, डाकू, राक्षस, पिशाचादिकों से होने वाला, अनेक प्रकार का आधिभौतिक भय, हम से दूर हटावें, जिससे हम निर्भय होकर आप जगत्पिता की भक्ति में और आपकी वैदिक ज्ञान के प्रचार की आज्ञा पालन में सदा तत्पर रहें ।।

: ५६ :

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ।। १।३०।७।।

पदार्थ— (सखायः) हे मित्रो ! (योगे योगे) प्रत्येक कार्य के आरम्भ में और (वाजे वाजे) प्रत्येक युद्ध में (तवस्तरम्) अति बल वाले (इन्द्रम्) इन्द्र को (ऊतये) रक्षा के लिये (हवामहे) हम बुलाते हैं ।

भावार्थ—हे मित्रो ! सब कार्यों के और सब युद्धों के आरम्भ में, अति बलवान् इन्द्र की, अपनी रक्षा के लिये हम सब लोग प्रेम से प्रार्थना करते हैं, जिससे हमारे सब कार्य निर्विघ्नतया पूर्ण हों । हमारे मन में ही जो सदा देवासुर संग्राम बना रहता है, सात्विक दैवी गुण, अपनी विजय चाहते हैं और तामसी राक्षसी गुण, अपनी विजय चाहते हैं । उनमें तामसी गुणों की पराजय हो कर, हमारे दैवी गुणों की विजय हो, जिससे हम इस आभ्यन्तर युद्ध में विजयी होकर इस लोक और परलोक में सदा सुखी रहें ।

: ५७ :

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ ॥८।६।४१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! आप (हि) निश्चित (ऋषिः) सर्वज्ञ (पूर्वजा) सब से पूर्व विद्यमान (ओजसा) अपने बल से (एकः ईशानः असि) अकेले सब पर शासन करने वाले हैं और (वसु) सब धन को (चोष्कूयसे) अपने अधीन रखते हैं ।

भावार्थ—हे सब ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्र ! इस संसार में सब से पूर्व विद्यमान आप ऋषि हैं । सब का द्रष्टा होने से आप को वेद ने ऋषि कहा है । संसार-भर का सारा धन आपके अधीन है । जिस पर आप प्रसन्न होते हैं, उसको अनेक प्रकार का धन आप ही देते हैं । और आप अकेले ही अपने अनन्त बल से सब पर शासन कर रहे हैं ।

: ५८ :

उतो घा ते पुरुष्याइदासन्येषां पूर्वेषामश्रृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वां मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥
॥७।२९।४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमात्मन् ! (येषाम् पूर्वेषाम् ऋषीणाम्) जिन पूर्व कल्पों के ऋषियों की प्रार्थनाओं को (अश्रृणोः) आप ने सुना (ते घा उत) वे भी तो (पुरुषाः इत् आसन्) मनुष्य ही थे । हे (मघवन्) धनवान् ! (अध:अहम्) अब मैं (त्वा जोहवीमि) आप को बारम्बार पुकारता हूं (त्वम् नः) आप हमारे (पिता इव) पिता की नाईं (प्रमतिः असि) श्रेष्ठ मति देने वाले हैं ।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप पूर्व कल्पों के ऋषि महात्माओं की प्रार्थनाओं को बड़े प्रेम से सुनते आये हैं । भगवन् ! वे भी तो मनुष्य ही थे । आप की कृपा से ही तो वे ऋषि महात्मा बन गए।

अब भी जिस पर आप की कृपा हो, वह ऋषि महात्मा बन सकता है। इसलिये हम आपकी बड़े प्रेम से बारम्बार प्रार्थना उपासना और स्तुति करते हैं, आप ही पिता की नाईं दयालु हो कर हमें श्रेष्ठ मति प्रदान करें, जिससे हम लोक और परलोक में सदा सुखी हों।

: ५९ :

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ २।२१।६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन्! (अस्मे) हमको (श्रेष्ठानि) श्रेष्ठ (द्रविणानि) धन, (दक्षस्य) बल सम्बन्धी (चित्तिम) ज्ञान (सुभगत्वम्) सब प्रकार का उत्तम ऐश्वर्य, (रयीणाम्) धनों की (पोषम्) बढ़ती (तनूनाम्) शरीरों की (अरिष्टिम्) अरोग्यता (वाचः) वाणी की (स्वाद्मानम्) मधुरता और (अह्नाम्) दिनों का (सुदिनत्वम्) सुख पूर्वक बीतना (धेहि) दो।

भावार्थ—हे दयामय जगत्पिता परमात्मन्! हमको कृपा करके श्रेष्ठ धन दो। जिस ज्ञान से हमें सब प्रकार का बल प्राप्त हो सके, वैसा ज्ञान हमको दो। सब प्रकार का उत्तम से उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करो। भगवन्! आपके पुत्र हम लोगों को धनों की वृद्धि, शरीर की आरोग्यता, वाणी की मधुरता, दिनों का सुख से बीतना दो। यह सब पदार्थ प्रसन्न होकर, आप अपने प्रेमी भक्तों को प्रदान करते हैं। इसलिए अपने प्रेम और भक्ति का भी हमें दान दो।

: ६० :

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन। सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन। १०।४८।५॥

पदार्थ—(अहम् इन्द्रः) मैं सब धन का स्वामी हूँ मेरे (धनम्) धन का (इत्) निश्चय से (न परा जिग्ये) पराजय नहीं होता। (कदाचन) मैं कभी (मृत्यवे) मृत्यु के लिये (न अवतस्थे) नहीं ठहरता अर्थात् मैं अमर हूँ। हे (पूरवः) मनुष्यो ! (मा) मेरे लिये (सोमम्) यज्ञ को (इत्) निश्चय से (सुन्वन्तः) करते हुए (वसु याचत) धन की याचना करो (मे सख्ये) मेरी मित्रता में (न रिषाथन) तुम नष्ट-भ्रष्ट नहीं होवोगे।

भावार्थ—परम दयालु जगदीश पिता हम को उपदेश करते हैं। हे मेरे प्यारे पुत्र मनुष्यो ! मैं सब धन का स्वामी हूँ, मेरे धन को कोई छीन नहीं सकता, और मैं अमर हूँ, मृत्यु मुझे नहीं मार सकता। आप लोग मेरी प्रसन्नता के लिये, यज्ञादि वेदविहित उत्तम कर्मों को करते हुए, धन की प्रार्थना करो, मैं आपकी कामना को पूर्ण करूंगा। आप यह बात निश्चित जान लो, कि जो मेरा भक्त मेरी प्रसन्नता के लिए, यज्ञ, तप, दान वेदादि सच्छास्त्रों का स्वाध्यायादि करता हुआ, मेरे साथ मित्रता करता है, उसका कभी नाश नहीं होता, किन्तु वह उत्तम गति को ही प्राप्त होता है।

: ६१ :

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परिता बभूव ॥
१।३२।१५॥

पदार्थ—(वज्रबाहुः इन्द्रः) प्रबल भुजाओं वाला इन्द्र (यातः) जङ्गम (अवसितस्य) स्थावर (शमस्य) शान्त (च) और (शृङ्गिणः) सींग वाले लड़ाके प्राणियों का भी (राजा) राजा है। (स इत् उ) निश्चित् वही (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों पर (क्षयति) शासन करता है (न) जैसे (नेमिः) पहिये की धार (अरान्) पहिये के आरों को (परि बभूव) घेरे हुए है ऐसे ही (ता) उन सब चर

अचर को वही राजा (परि बभूव) घेरे हुए है।

भावार्थ—वह प्रबल राजा इन्द्र, स्थावर, जंगम, शान्त और लड़ाके प्राणियों पर भी शासन कर रहा है। जैसे रथचक्र की धार, सब अरों को घेरे हुए है ऐसे ही वह इन्द्र जगत् के जड़ चेतन प्राणी अप्राणी सब को घेरे हुए हैं। उस इन्द्र के शासन में ही सब मनुष्य पशु पक्षी आदि वर्त्तमान हैं उसके शासन का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता।

: ६२ :

न किरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्।
न किर्वक्ता न दादिति ॥ ८।३२।१५॥

पदार्थ—(अस्य) इस इन्द्र की (शचीनाम्) शक्तियों का (सूनृतानाम्) सच्ची और मीठी वाणियों का (नियन्ता) नियन्ता (न किः) नहीं है (न दात् इति) इन्द्र ने मुझे नहीं दिया ऐसा (वक्ता) कहने वाला (न किः) कोई नहीं है।

भावार्थ—उस भगवान् इन्द्र की शक्तियों का और उसकी सत्य और मीठीं वाणियों का नियम बांधने वाला कोई नहीं है। और कोई नहीं कह सकता कि इन्द्र ने मुझे कुछ नहीं दिया, क्योंकि सब को सब कुछ देने वाला वह इन्द्र ही है।

: ६३ :

इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत्।
भद्रं भवाति नः पुरः। २।४१।११॥

पदार्थ—(इन्द्रः च) परमात्मा ही (नः) हम पर (मृडयाति) दया करे (नः पश्चात्) हमारे पीछे से (अघम्) पाप (न नशत्) प्राप्त न हो किन्तु (नः पुरः) हमारे सन्मुख (भद्रम् भवाति) अच्छा कर्म और उसका फल भद्र हो।

भावार्थ—पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर, अपनी अपार दया से

हमें सुखी करे। हमारे आगे, पीछे कहीं दुःख का नाम न हो, जिधर भी देखें सुख-ही-सुख हो, कल्याण की वर्षा होती हुई दिखाई देवे .

: ६४ :

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ।। २।४१।१२।।

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (शत्रून् जेता) जो प्रजा पीड़कों का जीतने वाला और (विचर्षणिः) सब को पृथक्-पृथक् देखने वाला है (सर्वाभ्यः आशाभ्यः) हमें सब दिशाओं से और (परि) सब ओर से (अभयम् करत्) निर्भय करे।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ! जिस २ दिशा से और जिस २ कारण से हमें भय प्राप्त होने लगे, उस २ दिशा से और उस २ कारण से हमें निर्भय करें। भगवन् ! आपके प्रेमी भक्तों के जो शत्रु हैं उन सब को आप भली प्रकार जानते हैं, आप से कोई भी छिपा नहीं। उन हमारी जाति और धर्म के विरोधी बाहिर के शत्रुओं से, और विशेष कर अन्दर के काम, क्रोध, लोभादि हमारे घातक शत्रुओं से हमारी रक्षा कीजिए।

: ६५ :

इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ।।
४।२५।८

पदार्थ—(परे) उच्च श्रेणी के मनुष्य (अवरे) नीच श्रेणी के मनुष्य (मध्यमासः) मध्यम श्रेणी के मनुष्य (इन्द्रम्) इन्द्र को (हवन्ते) बुलाते हैं (यान्तः) मार्ग में चलने वाले और (अवसितासः) कर्म करने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र को बुलाते हैं (क्षियन्तः) घरों में

निवास करने वाले (उत) और (युध्यमानाः) युद्ध करने वाले मनुष्य (वाजयन्तः) धन, अन्न, बल की इच्छा वाले (नरः) सब नर नारी उसी इन्द्र को बुलाते हैं।

भावार्थ—संसार में उच्च कोटि के, नीच कोटि के और मध्यम कोटि के सब मनुष्य, उस सर्वशक्तिमान् जगदीश की प्रार्थना करते हैं। तथा मार्ग में चलने वाले और अपने अपने कर्तव्य कर्मों में लगे हुए, अपने घरों में निवास करते हुए उस जगत्पति को बुलाते हैं। युद्ध करने वाले वीर पुरुष भी, अपनी विजय चाहते हुए, उस प्रभु को स्मरण करते और बुलाते हैं। किंबहुना संसार में धान्य बलादि की इच्छा करने वाले सब नर नारी, उस परम पिता के आगे प्रार्थना करते हैं। परमात्मा सब की पुकार सुनते और उनकी यथायोग्य कामनाओं को पूरा भी करते हैं।

: ६६ :

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १।९१।५॥

पदार्थ—हे (सोम) सकल जगत् उत्पादक और सत्कर्मों में प्रेरक शान्तस्वरूप शान्तिदायक परमात्मन्! (त्वम् सत्पतिः असि) आप सत्पुरुषों के पालन करने वाले हो आप ही सब के (राजा) स्वामी (उत) और (वृत्रहा) मेघों के रचक, धारक और मारक हो (त्वम् भद्रः असि) आप कल्याणस्वरूप, कल्याणकारक और (क्रतुः) सब के कर्ता हो।

भावार्थ—हे सकल ब्रह्माण्डों के उत्पन्न करने वाले, सत्कर्मों में प्रेरक और शान्ति देने वाले सोम परमात्मन्! आप श्रेष्ठ पुरुषों के पालन करने वाले, सब चर और अचर जगत् के राजा और मेघों के उत्पादक धारक और मारक हो। आप कल्याण स्वरूप, अपने भक्तों का कल्याण करने वाले और सारे जगत् के उत्पन्न करने वाले हो।

: ६७ :

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे ।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ १।९१।६॥

पदार्थ—हे (सोम) सत्कर्मों में प्रेरक प्रभो ! आप (नः) हमारे (जीवातुम्) जीवन की (वशः) कामना करने वाले (प्रियस्तोत्रः) और जिन के गुणों का कथन प्रेम उत्पन्न करने वाला है ऐसे (वनस्पतिः) आप अपने भक्तों की और सेवनीय पदार्थों की पालना करने वाले हैं । आपको जान कर (न मरामहे) हम मृत्यु को प्राप्त नहीं होते किन्तु मोक्षरूप अमर अवस्था को प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की भक्ति करते और उसकी वैदिक आज्ञा के अनुसार अपना जीवन बनाते हुए उसके नियमानुकूलचलते हैं, वे पूरी आयु पाते हैं और इस भौतिक देह को त्याग कर मुक्ति धाम को प्राप्त होते हैं ।

: ६८ :

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे ।
ताभिर्नोऽविता भव ॥ १।९१।९॥

पदार्थ—हे (सोम) परमेश्वर (ते) आपकी (याः) जो (मयोभुवः) सुख की उत्पन्न करने वाली (ऊतयः) रक्षणादि क्रियाएं (दाशुषे सन्ति) दानी धर्मात्मा मनुष्य के लिये हैं (ताभिः) उनसे (नः) हमारे (अविता भव) रक्षा आदि के करने वाले अपने हूजिये ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप का नियम है, कि जो यज्ञ दानादि उत्तम वैदिक कर्म करने वाले धर्मात्मा पुरुष हैं, उनकी आप सदा रक्षा करते हैं । उन रक्षा आदि क्रियाओं से आप हम भक्तों की रक्षा कीजिये ।

: ६९ :

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः ।
सुमृडीको न आ विश ।। १।९१।११।।

पदार्थ—हे सोम ! (वचोविदः) वेद शास्त्रादिकों के वचनों के ज्ञाता (वयम्) हम लोग (गीर्भिः) अनेक स्तुति समूहों से (त्वा) आपको (वर्द्धयामः) बढ़ाते अर्थात् सर्वोपरि विराजमान मानते हैं (सुमृडीकः) उत्तम सुख के दाता आप (नः) हम लोगों को (आविश) प्राप्त होओ ।

भावार्थ—हे वेदवेद्य परमात्मन् ! वेदादि श्रेष्ठ विद्या के ज्ञाता हम लोग, आपकी अनेक पवित्र वेद मन्त्रों से महिमा को गाते हुए, आप सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकर्त्ता, अन्तर्यामी के ध्यान में निमग्न होते हैं । दयामय प्रभो ! हम आपकी कृपा से अपने हृदय में आपको अनुभव करें, जिससे हम लोग सदा सुखी होवें । क्योंकि आपकी वाणी रूपी वेद में लिखा है 'तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्याः पन्था विद्यतेऽयनाय' अर्थात् उस प्रभु को जान कर ही मनुष्य मृत्यु से पार हो जाता है । मुक्ति के लिये और कोई दूसरा मार्ग नहीं है ।

: ७० :

त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते ।
दक्षं दधासि जीवसे । १।९१।७।।

पदार्थ—हे सोम ! (त्वम्) आप (ऋतायते) विशेष ज्ञान की इच्छा करने हारे (महे) महापूज्यगुणयुक्त (यूने) ब्रह्मचर्य्य और विद्या से तरुण अवस्था को प्राप्त हुए ब्रह्मचारी के लिये (भगम्) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को तथा (त्वम्) आप (जीवसे) जीने के लिये (दक्षम्) बल को (दधासि) धारण कराते हैं ।

भावार्थ— शान्तिप्रद सोम ! आप, श्रेष्ठगुणयुक्त और ब्रह्मचर्यादि साधन सम्पन्न जिज्ञासु अपने भक्त को, अनेक प्रकार का ऐश्वर्य और बहुत काल तक जीने के लिए बल प्रदान करते हो। आपकी भक्ति और ब्रह्मचर्य्यादि साधनों के बिना कोई चिरंजीवी नहीं हो सकता, न ही लोक परलोक में सुखी हो सकता है।

: ७१ :

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ १।६१।८॥

पदार्थ—हे सोम ! (त्वम्) आप (नः) हमारी (विश्वतः) समस्त (अघायतः) पापी पुरुषों से (रक्ष) रक्षा कीजिये। हे (राजन्) सबकी रक्षा का प्रकाश करने वाले ! (त्वावतः) आपका (सखा) मित्र (न रिष्येत्) कभी नष्ट नहीं होता।

भावार्थ—पुरुषों को इस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके उत्तम यत्न करना चाहिए कि जिससे धर्म को छोड़ने और अधर्म के ग्रहण करने की इच्छा भी न उठे। धर्म और अधर्म की प्रवृत्ति में मन की इच्छा ही कारण है। मन को सत्संग, स्वाध्याय और प्रभु भक्ति में लगाने से, धर्म के त्याग और अधर्म के ग्रहण में इच्छा ही न होगी।

: ७२ :

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः ।
सुमित्रः सोम नो भव ॥ १।६१।१२॥

पदार्थ—हे सोम ! आप (गयस्फानः) धन, जनपद, प्रजा, सुराज्य के बढ़ाने वाले (अमीवहा) सब रोगों के विनाश करने वाले (वसुवित्) पृथिवी आदि वसुओं के जानने वाले अर्थात् सर्वज्ञ और विद्या, सुवर्णादि धन के दाता (पुष्टिवर्धनः) शरीर, मन, इन्द्रिय और आत्मा की पुष्टि को बढ़ाने वाले हैं (नः) हमारे (सुमित्रः)

उत्तम मित्र (भव) कृपा करके हूजिये ।

भावार्थ—हे सोम ! आपकी कृपा के बिना पुरुषों को धन, विद्या आदि प्राप्त नहीं हो सकते, न ही अनेक प्रकार के रोग नष्ट हो सकते हैं, न ही शरीर, मन, इन्द्रिय और आत्मा की पुष्टि हो सकती है । इसलिए हम सबको योग्य है कि हम आप परम पूज्य परमात्मा को ही अपना परम प्यारा सच्चा मित्र बनावें, जिससे हम सबका भला हो ।

: ७३ :

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य्य इव स्व ओक्ये ।। १।६१।१३।।

पदार्थ—हे (सोम) सुखप्रद ईश्वर ! (न) जैसे (गावः) गौएं (यवसेषु) घासादि में रमती हैं और (मर्य्यः इव) जैसे मनुष्य (स्व ओक्ये) अपने गृह में रमण करता है वैसे (आ) अच्छे प्रकार (नः हृदि) हमारे हृदय में (रारन्धि) रमण करिये ।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! जैसे गौ आदि पशु अपने खाने योग्य घासादि पदार्थों में उत्साहपूर्वक रमण करते हैं मनुष्य अपने घरों में आनन्द से रहते हैं । ऐसे ही भगवन् ! आप मेरे हृदय में रमण करें, अर्थात् मेरे आत्मा में प्रकाशित हूजिये, जिससे मैं आपको यथार्थ रूप से जानता हुआ अपने जन्म को सफल बनाऊं ।

: ७४ :

अस्माँ अवन्तु तेशतमस्मान्त्सहस्रमूतयः ।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ।। ४।३१।१०।।

पदार्थ—हे इन्द्र ! (ते) आपकी (शतम् ऊतयः) सैकड़ों रक्षायें (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें और (सहस्रम्) हजारों (ऊतयः) रक्षायें (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें (विश्वा) सब (अभिष्टयः) वाञ्छित पदार्थ (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें ।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन् ! आपकी सैकड़ों और हज़ारों रक्षायें हमारी रक्षा करें। भगवन् ! आपके दिए हुए अनेक मनोवांछित पदार्थ, हमारी रक्षा करें। ऐसा न हो कि, हम अनेक पदार्थों को प्राप्त होकर, आपसे विमुख हुए, उन पदार्थों से अनेक उपद्रव करके पाप के भागी बन जाएं, किन्तु उन पदार्थों को संसार के उपकार में लगाते हुए, आपकी कृपा के पात्र बनें।

: ७५ :

सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत।
स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ६।४५।४॥

पदार्थ—हे (सखायः) मित्रो ! (ब्रह्मवाहसे) वेद और वैदिक ज्ञान को धारण करने वाले तथा उन वेदों को हमारे कानों तक पहुंचाने वाले परमात्मा की (अर्चत) स्तुति प्रार्थना रूप पूजा करो (च) और (प्रगायत) उसी प्रभु का गायन करो (हि) क्योंकि (सः) वह जगदीश हमारा (प्रमतिः) सच्चा बन्धु है अथवा वह परमात्मा ही हमारी (मही प्रमतिः) बड़ी बुद्धि है।

भावार्थ—हे ज्ञानी मित्रो ! जिस जगत्पति परमात्मा ने, हमारे कल्याण के लिए वेदों को रचा, उस ज्ञान को धारण किया, सृष्टि के आरम्भ में चार महर्षियों के अन्तःकरणों में, उन चार वेदों का प्रकाश किया। वही चारों वेद, गुरु परम्परा से हमारे कानों तक पहुंचाये गये, इसलिए हमारा सबका कर्तव्य है, कि हम सब उस प्रभु की पूजा करें, क्योंकि वही हमारा सच्चा बन्धु है। परमेश्वर परायण होना यही हमारी बड़ी बुद्धि है। प्रभु भक्ति के बिना बुद्धिमान् पण्डित भी महामूर्ख है।

: ७६ :

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ १।२२।२०

पदार्थ—(तत् विष्णोः) उस सर्वव्यापक परमेश्वर के (परमम् पदम्) श्रेष्ठ स्वरूप को (सूरयः) विद्वान् लोग (सदा पश्यन्ति) सदा देखते हैं (दिवि इव) जैसे सब लोग द्युलोक में (आततम्) सर्वत्र व्याप्त (चक्षु) सूर्य को देखते हैं।

भावार्थ—उस सर्वव्यापक परमात्मा के सर्वोत्तम स्वरूप को, ज्ञानी महात्मा लोग सदा प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं, जैसे आकाश में सर्वत्र विस्तार पाये हुए, सूर्य को सब लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। वैसे ही महानुभाव महात्मा लोग अपने हृदय में उस परमात्मा को प्रत्यक्ष देखते हैं।

: ७७ :

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत् परमं पदम्॥ १।२२।२१॥

पदार्थ—(विष्णोः) व्यापक प्रभु का (यत् परमम् पदम्) जो सर्वोत्तम पद है (तत्) उसको (विप्रासः) जो बुद्धिमान्, ज्ञानी (विपन्यवः) संसार के व्यवहारी पुरुषों से भिन्न हैं और (जागृवांसः) और जागे हुए हैं (समिन्धते) वे ही अच्छी तरह से प्रकाशित करते अर्थात् साक्षात् जानते हैं।

भावार्थ—उस सर्वव्यापक विष्णु भगवान् के सर्वोत्तम स्वरूप को, ऐसे विद्वान् ज्ञानी महात्मा सन्तजन ही जानकर, प्राप्त हो सकते हैं, जो संसारी पुरुषों से भिन्न हैं और जागरणशील हैं, अर्थात् अज्ञान, संशय भ्रम आलस्यादि नींद से रहित हैं। सदा उद्यमी, वेदादि सद्विद्याओं के अभ्यासी, ज्ञान ध्यान में तत्पर, संसार के विषय भोगों से उपरत, काम, क्रोधादि दोषों से रहित, और शान्त हृदय हैं, जिनके सत्संग और सहवास से ज्ञान, ध्यान, प्रभु-भक्ति और शान्ति आदि प्राप्त हो सकें, ऐसे महात्माओं का ही मुमुक्षु जनों को सत्संग और सेवा करनी चाहिए, जिससे पुरुष का लोक और परलोक सुधरे।

: ७८ :

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ **१।२२।१६॥**

पदार्थ—(विष्णोः) सर्वव्यापक जगत्पति परमात्मा के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो (यतः) जिससे (व्रतानि) नियमों को (पस्पशे) मनुष्य प्राप्त होता है (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (युज्यः) वही योग्य (सखा) मित्र है।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग उस सर्वव्यापक जगत्पिता के, जगन्निर्माणादि आश्चर्य कर्मों को देखो और विचारो, जो उसने अपने प्रिय पुत्रों के लिए अवश्य कर्तव्य रूप से नियम निश्चित किए हैं उनको देखो, क्योंकि इन्द्रियों के स्वामी जीव का एक वही योग्य मित्र है। वह दयामय प्रभु जीवात्मा के हित के लिए अनेक अद्भुत कर्म कर रहा है। उसकी अपार कृपा है।

: ७६ :

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।

अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ **१।६०।१॥**

पदार्थ—(वरुणः) सर्वोत्तम (मित्रः) सबसे प्रेम करने वाला (विद्वान्) सर्वज्ञ (अर्यमा) न्यायकारी (देवैः सजोषाः) विद्वानों के साथ प्रेम करने वाला परमात्मा (नः) हमको (ऋजुनीती) सरल नीति से (नयतु) चलावे।

भावार्थ—हे महाराजाधिराज परमात्मन् ! आप हमको सरल शुद्ध नीति प्राप्त करायें। आप सर्वोत्कृष्ट हैं, हमें श्रेष्ठ विद्या और श्रेष्ठ धनादि प्रदान करके उत्तम बनावें। आप सबके मित्र हैं हमें भी सब का शुभचिन्तक बनावें। आप महाविद्वान् हैं, हमें भी विद्वान् बनायें आप न्यायकारी हैं, हमें भी धर्मानुसार न्याय करने वाला बनायें, जिससे हम विद्वानों और दिव्य गुणों के साथ प्रीति

करने वाले होकर आपकी आज्ञा का पालन कर सकें। भगवन् ! आप हमारी सदा सहायता करते रहें, जिससे हम सुनीतियुक्त होकर सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सकें

: ८० :

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ५।२४।४॥

पदार्थ—हे (शोचिष्ठ) ज्योतिः स्वरूप वा पवित्र स्वरूप पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (दीदिवः) प्रकाशमान (तम् त्वा) उस सर्वत्र प्रसिद्ध आपसे (सुम्नाय) अपने सुख के लिये (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (नूनम्) अवश्य (ईमहे) याचना करते हैं।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप प्रकाश देने वाले पतितपावन जगदीश ! आपसे अपने और अपने मित्रों और बान्धवों के सुख के लिये प्रार्थना करते हैं। हम सब आपके प्यारे पुत्र, आपकी भक्ति में तत्पर होते हुए इस लोक और परलोक में सदा सुखी रहें। हम पर ऐसी कृपा करो।

: ८१ :

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ १।९७।६॥

पदार्थ—हे (विश्वतोमुख) परमात्मन् ! आपका मुख सब दिशाओं में है आप सब ओर देख रहे हैं। आप (विश्वतः) सर्वत्र (परिभूः असि) व्याप्त हैं, (नः) हमारे (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) सर्वथा विनष्ट हों।

भावार्थ— हे विश्वतोमुख सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, अतएव आपका नाम विश्वतोमुख है। आप अपनी सर्वज्ञता से, सब जीवों के हृदय के भावों को और उनके

कर्मों को जानते हैं, कोई बात आपसे छिपी नहीं। इसलिये हमारी ऐसी प्रार्थना है कि, हमारे सब पाप और पापों के कारण दुष्ट संकल्पों को नष्ट करें। जिससे हम आपके सच्चे ज्ञानी और भक्त बन सकें।

: ८२ :

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय।

१।३६।१५

पदार्थ—हे (बृहद्भानो) सब से बड़े तेजस्विन् (यविष्ठय) महा बलिन् (अग्ने) ज्ञान स्वरूप प्रभो! (नः) हमें (रक्षसः) राक्षसों से (पाहि) बचाओ (धूर्तेःअराव्णः) धूर्त, ठग, कृपण, स्वार्थियों से (पाहि) बचाओ (रीषतः) पीड़ा देने वाले (उत) और अथवा (जिघांसतः) हनन करने की इच्छा करने वाले से (पाहि) रक्षा करो।

भावार्थ—हे महाबली, तेजस्वी सब के नेता परमात्मन्! राक्षस, धूर्त, कृपण, कंजूस, मक्खीचूस, स्वार्थान्ध पुरुषों से हमारी रक्षा कीजिए, और जो दुष्ट, हमें पीड़ा देने तथा जो दुष्ट शत्रु, हमारे नाश की इच्छा करने वाले हैं ऐसे पापी लोगों से हमें सदा बचाओ। हम आपकी कृपा से सुरक्षित होकर अपना और जगत् का कुछ भला कर सकें।

: ८३ :

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य।

१०।७।३॥

पदार्थ—(अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमात्मा को (पितरम् मन्ये) मैं पिता मानता हूं (अग्निम् आपिम्) अग्नि को बन्धु (अग्निम्

भ्रातरम्) अग्नि को भ्राता और (सदम् इत् सखायम्) सदा का ही मित्र मानता हूँ (बृहतः अग्नेः) इस बड़े अग्नि के (अनीकम्) बल को (सपर्यम्) मैं पूजन करता हूँ। इस अग्नि के प्रभाव से (दिवि) द्युलोक में (सूर्यस्य) सूर्य का (यजतम्) बड़ा पवित्र करने वाला (शुक्रम्) तेज चमक रहा है।

भावार्थ—परमात्मा ही हमारा सब का सच्चा पिता माता बन्धु भ्राता सदा का मित्रादि सब कुछ है। संसार के पिता मातादि सम्बन्धी, इस शरीर के रहने तक सम्बन्धी हैं। इस शरीर के नष्ट होने पर इस जीव का न कोई सांसारिक पिता है, न कोई माता भ्राता आदि है। सच्चा पिता आदि तो इसका परमात्मा ही है, इसी के ज्योतिरूप बल से द्यु आदि लोकों में सूर्यचन्द्रादि प्रकाश कर रहे हैं। इसलिए ही सत्-शास्त्रों में, परमात्मा को ज्योतियों का ज्योति वर्णन किया गया है। परमात्मा की ज्योति के बिना सूर्यादि कुछ भी प्रकाश नहीं कर सकते, इसलिए आओ! भ्रातृ-गण! हम सब उस ज्योतियों के ज्योति, जगत्पिता परमात्मा की प्रेम से स्तुति प्रार्थना उपासना करें, जिससे हमारा कल्याण हो।

: ८४ :

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा॥

१।५९।३।

पदार्थ—(सूर्ये) सूर्य में (न) जैसे (रश्मयः) किरणें (ध्रुवासः) स्थिर हैं ऐसे (वैश्वानरे) सब के नेता (अग्नौ) अग्नि में (वसूनि) सब धन (आ दधिरे) सब ओर से अटल रहते हैं (या पर्वतेषु) जो धन पर्वतों में (अप्सु) जलों में (ओषधीषु) ओषधियों में (या मानुषेषु) और जो मनुष्यों में है (तस्य राजा असि) उस सब के आप राजा हैं।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! जो धन महातेजस्वी अग्नि में, पर्वतों में, ओषधीवर्ग में, समुद्रादि जलों में और मनुष्यों के खज़ाने आदिक में स्थित है, उस सब धन के आप ही स्वामी हैं। जैसे सूर्य में किरणें अटल होकर रहती हैं ऐसे संसार से सब धन, आप में स्थिर होकर रहते हैं। भगवन् ! आप कंगाल को एक क्षण में धनी और धनी को कंगाल बना सकते हैं।

: ८५ :

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।
१।६४।१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (देवानाम् देवः) आप विद्वानों के भी परम विद्वान् हो (अद्भुतः मित्रः असि) और उन विद्वानों के आश्चर्य रूप आनन्द देने वाले मित्र हो। (वसूनाम् वसुः असि) वसुओं के वसु हो (अध्वरे) यज्ञ में (चारुः) अत्यन्त शोभायमान हो (तव) आपकी (सप्रथस्तमे) अति विस्तीर्ण (शर्मन्) सुखदायक (सख्ये) मित्रता में (वयम्) हम (स्याम) स्थिर रहें और (मा रिषामा) पीड़ित न होवें।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी प्रभो ! आप विद्वान् पुरुषों के महाविद्वान् और आश्चर्यकारक सुखदायक सच्चे मित्र हो। लाखों प्राणियों के आधाररूप जो पृथिवी आदि वसु हैं, उन वसुओं के अधिष्ठानरूप आप वसु हो। भगवन् ! आप ज्ञान यज्ञादि उत्तम कर्मों में शोभायमान, धार्मिक और ज्ञानी पुरुषों को शोभा देने वाले हो। आपकी मित्रता सदा आनन्ददायक है। आपकी मित्रता में स्थिर रहते हुए, हम कभी दुःखी नहीं हो सकते। कृपानिधे ! हम यही चाहते हैं कि, हम आपको ही सच्चा सुखदायक मित्र जानकर आपकी प्रेम भक्ति में लगे रहें।

: ८६ :

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ १।१३।९॥

पदार्थ—(इडा) वाणी (सरस्वती) विद्या (मही) मातृभूमि (मयोभुवः) कल्याण करने वाली और (अस्रिधः) कभी हानि न पहुंचाने वाली (तिस्रः देवीः) तीन देवियें (बर्हिः) हमारे अन्तःकरण में (सीदन्तु) विराजमान हों ।

भावार्थ—प्रभु से प्रार्थना है कि, दयामय परमात्मन् ! हमारे देशवासियों में इन तीन देवियों की भक्ति हो । १. इडा अपनी मातृभाषा भाषियों के साथ मातृभाषा में बातचीत करना । २. लोक, परलोक, जड़, चेतन, पुण्य, पाप, हित, अहित, कर्तव्य, अकर्तव्य को बताने वाली सच्ची विद्या सरस्वती । ३. मही अपनी जन्मभूमि के वासी अपने बान्धवों से प्रेम । यह तीन देवियां मनुष्य को सदा सुख देने वाली हैं, कभी हानि करने वाली नहीं हैं । हर एक मनुष्य के अन्तःकरण में, इन तीनों देवियों के प्रति भक्ति होनी चाहिए । जिस देश के वासियों की इन तीन देवियों में प्रीति होगी, वह देश उन्नत होगा । जिस देश में इन तीन देवियों में भक्ति नहीं है, जिनका अपनी भाषा और विद्या से प्रेम नहीं, अपनी मातृभूमि और मातृभूमि में बसने वालों से प्रेम नहीं, वह देश अवनति के गढ़े में पड़ा रहेगा ।

: ८७ :

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ।
५।४२।८॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) सूर्य चन्द्रादि सब लोक लोकान्तरों के स्वामिन् ! (ये तव ऊतिभिः) जो आपकी रक्षाओं के साथ

(सचमानाः) सम्बन्ध रखने वाले हैं वे (अरिष्टाः) दुखों से रहित (मघवानः) धनवान् और (सुवीराः) अच्छे पुत्रादि सन्तान वाले होते हैं (ये अश्वदा) जो घोड़ों का दान करने वाले हैं (उत वा) और (सन्ति गोदाः) गौओं के दाता और (ये वस्त्रदाः) जो वस्त्रों का दान करते हैं वे (सुभगाः) सौभाग्य वाले हैं (तेषु रायः) उनके ही घरों में अनेक प्रकार के धन और सब ऐश्वर्य रहते हैं ।

भावार्थ—हे सर्व ब्रह्माण्डों के स्वामिन् ! परमात्मन् ! जो धर्मात्मा आपके सच्चे प्रेमी भक्त हैं, उनकी आप सब प्रकार से रक्षा करते हैं । वे सब प्रकार के दुःख और कष्टों से रहित हो जाते हैं, धनवान् और सुपुत्रादि सन्तान वाले होते हैं, और धनवान् होकर भी, सब पापों से रहित होते हैं । उस धन को उत्तम महात्माओं का अन्नवस्त्रादिकों से सत्कार करने में खर्च करते हैं, और धार्मिक संस्थाओं में, वेदवेत्ता महानुभावों के वास करने के लिए, अनेक सुन्दर स्थान बनवा देते हैं, जिनमें रहकर महात्मा लोग प्रभु की भक्ति करते और वेदविद्या का प्रचार कर सबको प्रभु का भक्त और वेदानुकूल आचरण करने वाला बनाते हैं । ऐसे धार्मिक पुरुष ही सौभाग्यवान् हैं, ऐसे आचार-व्यवहार करने वाले उत्तम पुरुष के पास ही, बहुत धन धान्य होना चाहिए ।

: ८८ :

अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥ ५।८२।२॥

पदार्थ—(अस्य सवितुः) इस जगत् उत्पादक परमेश्वर के (स्वयशस्तरम्) अपने यश से फैले हुए (प्रियम्) प्रेम करने योग्य (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (कच्चन) कोई भी (न मिनन्ति) नाश नहीं कर सकता ।

भावार्थ—सृष्टि रचना कर्ता परमेश्वर का स्वराज्य सारे संसार

में फैला हुआ है और वह स्वराज्य प्रभु के बल और यश से फैला है। उसके नियम अटल हैं, और सबके प्रीति करने योग्य हैं। उस जगत् कर्ता के सृष्टि नियमों को और स्वराज्य को कोई नाश नहीं कर सकता। वास्तव में अविनाशी परमात्मा का स्वराज्य भी अविनश्वर है। मनुष्य तो मर्त्य अर्थात् मरण धर्मा हैं इस मनुष्य का राज्य भी नाशवान् है, कदापि अविनाशी नहीं हो सकता।

: ८९ :

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ १।९०।६॥

पदार्थ—(ऋतायते) सत्याचरण वाले पुरुष के लिए (वाताः) वायुगण (मधुक्षरन्ति) मधु वर्षण करती हैं (सिन्धवः) सब नदियां (मधु क्षरन्ति) मधु बरसाती हैं, (नः) हम उपासकों के लिए (ओषधीः) गेहूं, चावल, चना आदि सब अन्न (माध्वीः सन्तु) मधु-रता युक्त होवें।

भावार्थ—हे परमात्मन्! जैसे सदाचारी पुरुष के लिए सब प्रकार के वायु और सब नदियां सुखदायिनी होती हैं, ऐसे ही आपके उपासक जो हम लोग हैं, उनके लिए भी सब प्रकार के वायु सब अन्न सुखप्रद हों, जिससे हम सब लोग, आपकी भक्ति और आपकी आज्ञारूप वैदिक धर्म का सर्वत्र प्रचार कर सकें।

: ९० :

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ १।९०।७॥

पदार्थ—(नक्तम् मधु) हमारे लिए रात्रि मधु हो (उत) और (उषसः) प्रातःकाल मधु हों (पार्थिवम् रजः) पृथिवी के ग्राम नगरादि (मधुमत्) माधुर्य युक्त हों (नः) हमारे लिये (पिता) बरसात करने से हमारा सब का पालन करने वाला

(द्यौः) द्युलोक (मधु अस्तु) मधुवत् सुखप्रद हो।

भावार्थ—हे जगत्पिता परमात्मन्! हमारे लिए, सब रात्रि और प्रातःकाल मधुवत् सुखदायक हों। सब नगर ग्राम गृहादि भी सुखजनक हों। यह ऊपर का द्युलोक, जो बरसात द्वारा हम सब का पालक होने से पिता रूप है वह भी सुख देने वाला हो।

: ६१ :

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥
५।५१।१२॥

पदार्थ—(वायुम्) अनन्त बलवान् परमेश्वर का (स्वस्तये) कल्याण के लिए (उपब्रवामहै) हम विशेष रूप से कथन करें (सोमम्) सकल-जगत् के उत्पादक और सत्कर्मों में प्रेरक प्रभु का (स्वस्ति) आनन्द के लिए कथन कर (यः) जो (भुवनस्य पतिः) जगत् का पालक है (बृहस्पतिम्) बड़े २ सूर्यादि लोकों का वा वेदवाणी का रक्षक (सर्वगणम्) सब की गणना करने वाले जगदीश्वर का (स्वस्तये) कल्याण की प्राप्ति के लिये कथन करें (आदित्यासः) अविनाशी परमेश्वर के भक्त (नः स्वस्तये) हमारे आनन्द के लिए (भवन्तु) सदा वर्तमान रहें।

भावार्थ—हे अनन्त बलवान् परमैश्वर्ययुक्त, सत्कर्मों में प्रेरक ब्रह्माण्डों के और वेद वाणी के रक्षक, सब की गिनती करने वाले सर्वशक्तिमान् जगत्पिता परमात्मान्! आपकी हम जिज्ञासु लोग, बारंबार स्तुति और प्रार्थना करते हैं, कृपा करके हमारा इस लोक और परलोक में सदा कल्याण करें। भगवन्! आपके भक्त जो वेदविद्या के ज्ञाता और सब का कल्याण चाहने वाले शान्तात्मा महात्मा हैं, वे भी हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश दे कर, हमारा कल्याण करने वाले हों।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ॥ ५।५१।१५

पदार्थ--(स्वस्ति पन्थाम्) कल्याणप्रद मार्ग पर (अनुचरेम) हम चलते रहें (सूर्याचन्द्रमसौ इव) जैसे सूर्य और चन्द्रमा चल रहे हैं (पुनः) बारम्बार (ददता) दान कर्ता (अघ्नता) किसी की हिंसा न करने वाले तथा (जानता) सब को सब प्रकार जानने वाले परमात्मा के (संगमेमहि) संग को हम प्राप्त हों, अर्थात् प्रभु के सच्चे ज्ञानी भक्त बनें ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! हम पर कृपा करके प्रेरणा करो कि हम लोग कल्याणप्रद मार्ग पर चलें । जैसे सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश और सब का पालन पोषण करते हुए, जगत् का उपकार कर रहे हैं, ऐसे हम भी अज्ञानान्धकार का नाश करते हुए, जगत् के उपकार करने में लग जायें । भगवन् ! आप महादानी सब के रक्षक महाज्ञानी हो, ऐसे आपसे हमारा पूर्ण प्रेम हो । और आपके प्यारे जो महापुरुष, सन्तजन हैं जो परम उदार, किसी प्राणी की भी हिंसा न करने वाले, वेद शास्त्र उपनिषदों के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मज्ञानी और आपके सच्चे प्रेमी हैं उन महानुभाव महात्माओं का हमें सत्संग दो, जिससे हम, आपके ज्ञानी और सच्चे प्रेमी भक्त बन कर, अपने जन्म को सफल करें ।

: ९३ :

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।
१।८९।५॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (तम्) उस (ईशानम्) ईश्वर की जो (जगतःतस्थुषः पतिम्) जंगम

ग्रौर स्थावर का स्वामी (धियम् जिन्वम्) बुद्धि का प्रेरक है उसकी (हूमहे) प्रार्थना करते हैं वह (पूषा) पोषक ईश्वर (नः) हमारे (वेदसाम् वृधे) धनों की वृद्धि के लिये (ग्रसत्) होवे तथा (ग्रदब्धः) किसी से न दबने वाला (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (रक्षिता) रक्षक ग्रौर (पायुः) पालक (ग्रसत्) होवे ।

भावार्थ—सब चर ग्रौर ग्रचर के स्वामी परमेश्वर की, हम प्रार्थना उपासना करते हैं, कि वह हमारी बुद्धियों को शुभमार्ग में लगावे, ग्रौर हमारे तन, धन की रक्षा करे, हमारे कल्याण का रक्षक तथा पालक हो, क्योंकि उस प्रभु की कृपा दृष्टि के बिना न हमारा तन ग्रौर धन सुरक्षित हो सकता है, ग्रौर न ही हमें कल्याण प्राप्त हो सकता है । इस लिये इस लोक ग्रौर परलोक में कल्याण प्राप्ति के लिये, उस जगत् पति परमात्मा की हम लोग प्रार्थना उपासना करते हैं ।

: ६४ :

विश्वे देवा नो ग्रद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा ग्रवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ।

५।५१।१३॥

पदार्थ—(ग्रद्य) ग्राज (विश्वे देवाः) सब दिव्य शक्ति वाले पदार्थ (नः) हमारे (स्वस्तये) सुख के लिए हों (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी (वसुः) सब का ग्रधिष्ठान (ग्रग्निः) सर्वव्यापक ज्ञानस्वरूप परमात्मा (नः स्वस्तये) हमारे सुख से लिये हो (देवाः) विजयी (ऋभवः) बुद्धिमान् लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (ग्रवन्तु) रक्षा करें (रुद्रः) पापियों को दण्ड देकर रुलाने वाला ईश्वर (नः स्वस्तये) हमारे सुख के लिये (ग्रंहसः पातु) पाप कर्म से बचा कर हमारी रक्षा करे ।

भावार्थ—हे सब मनुष्यों के हितकर्ता ज्ञानस्वरूप सर्वव्यापक

प्रभो ! जितने दिव्यशक्ति वाले पदार्थ हैं, वे सब आपकी कृपा से हमें अब सुखदायक हों। सब ज्ञानी लोग हमारे कल्याणकारक हों। जिन ज्ञानी और आपके भक्त महात्माओं के सत्सङ्ग से, हमारा जन्म सफल हो सके, और जिनकी प्राप्ति, आपकी कृपादृष्टि के बिना नहीं हो सकती, ऐसे महानुभाव हमारा कल्याण करें भगवन्! पापी लोगों को उनके सुधार के लिये उनके पापों का फल आप दण्ड देते हैं। हम पर कृपा करके उन पापों से हमें बचावें और हमारा कल्याण करें।

: ९५ :

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या विन्दते वसु ॥ १०।१५१।४॥

पदार्थ—(यजमानाः देवाः) यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने वाले विद्वान् जिनका (वायुगोपाः) अनन्त बल वाला परमात्मा रक्षक है, (श्रद्धाम्) वेदोक्त धर्म में और वेदों के ज्ञाता महात्माओं के वचनों में विश्वास का (उपासते) सेवन करते हैं। (हृदय्य आकूत्य) मनुष्य अपने हृदय के शुद्ध संकल्प से (श्रद्धाम्) श्रद्धा को और (श्रद्धया) श्रद्धा से (वसु विन्दते) धन को प्राप्त होता है।

भावार्थ—श्रेष्ठ कर्म करने वाले जिनकी सदा प्रभु रक्षा करता है, ऐसे विद्वान् पुरुष वेदों में और वेदोक्त धर्म में तथा वेदज्ञ महात्माओं के वचनों में दृढ़ विश्वास करते हैं। पुरुष अपने पवित्र हृदय के भाव से श्रद्धा को और श्रद्धा से धन को प्राप्त होता है। श्रद्धा के बिना कोई भी श्रेष्ठ कर्म नहीं हो सकता। जिनकी वेदों में और अपने माननीय आचार्यों में श्रद्धा नहीं, ऐसे नास्तिक कोई अच्छा धर्म कर्म नहीं कर सकते। श्रेष्ठ धर्म कर्म और ब्रह्मज्ञान के बिना यह दुर्लभ मनुष्य देह व्यर्थ हो जाता है। इसलिये ऐसे नास्तिक भाव को अपने मन में कभी नहीं आने देना चाहिये।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥७।५९।१२॥

पदार्थ—(त्र्यम्बकम्) तीनों काल में एकरस ज्ञानयुक्त, अथवा तीनों लोकों का जनक अथवा जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय इन तीनों के कर्त्ता परमात्मा (सुगन्धिम्) बड़े यशवाले (पुष्टिवर्धनम्) शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाले जगदीश की (यजामहे) स्तुति करते हैं। हे प्रभो ! (उर्वारुकम् इव) जैसे पका हुआ खरबूजा (बन्धनात्) लता बन्धन से छूट जाता है वैसे ही (मृत्योः) मृत्यु से (मुक्षीय) हम छूट जावें। (अमृतात् मा) मोक्षरूप सुख से न छूटें।

भावार्थ—हे जगत् उत्पत्ति स्थिति प्रलयकर्ता परमात्मन् ! आपका यश सब जगत् में व्याप रहा है, आप ही अपने भक्तों के शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाले हैं। भगवन् ! जैसे पका हुआ खरबूजा अपने लता बन्धन से छूट जाता है, ऐसे ही मैं भी मृत्यु के बन्धन दुःख से छूट जाऊँ, किन्तु मुक्ति से कभी अलग न होऊं। आपकी कृपा से मुक्ति सुख को अनुभव करता हुआ सदा आनन्द में मग्न रहूँ।

: ९७ :

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि ।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥ १।२५।२०॥

पदार्थ—हे (मेधिर) मेधाविन वरुण ! (त्वम् विश्वस्य) आप सब जगत् के (राजसि) प्रकाशक और राजा स्वामी हैं (दिवः च) द्युलोक के (ग्मः च) और भूलोक के भी स्वामी हैं (सः) वह आप (यामनि) बुलाने पर (प्रतिश्रुधि) हमारी प्रार्थना को सुने।

भावार्थ—हे बुद्धिमान् सर्वोत्तम प्रभो ! आप सारे जगत् के

द्यु लोक के प्रकाश करने वाले और सारी पृथिवी के स्वामी हैं। दयामय जब हम आपकी प्रेमपूर्वक प्रार्थना करें, तब आप सुनकर हमें प्रेमी भक्त बनावें, जिससे हमारा कल्याण हो।

: ६८ :

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह।
इषं स्वश्च धीमहि ॥ ७।६६।६॥

पदार्थ—हे (वरुण देव) अति श्रेष्ठ स्वीकरणीय देव! (ते स्याम) हम आपके ही होवें (मित्र) हे सबसे प्रेम करने वाले मित्र! (सूरिभिः सह) विद्वानों के साथ आपके उपासक होवें (इषम्) अभिलषित धन धान्य (स्वः च) प्रकाश और नित्य सुख को (धीमहि) प्राप्त होवें।

भावार्थ—हे परमात्म देव! हम पर कृपा करें कि हम आपके ही प्रेमी भक्त स्तुतिगायक और मानने वाने होवें। केवल हम ही नहीं किन्तु, विद्वानों और वान्धव मित्रों के साथ, हम आपके प्रेमी भक्त होवें। भगवन्! आपकी कृपा से हम, धन धान्य और ज्ञान को प्राप्त होकर नित्य सुख को भी प्राप्त करें।

: ६६ :

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्याः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतुदेवगोपा ॥
७।३५।१३॥

पदार्थ—(अजः) अजन्मा (एकपात्) एक पगवाला अर्थात् एकरस व्यापक (देवः) प्रकाशस्वरूप सुखप्रद (नः शम्) हमें शान्ति दायक (अस्तु) हो (अहिः) जिसकी कोई हिंसा न कर सके, निर्विकार (बुध्न्यः) आदि कारण (शम् समुद्रः) सबका सींचने वाला परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो (अपाम्) प्रजाओं का (नपात्) न गिराने वाला, (पेरुः) पार लगाने वाला जगत्पति (नः शम्) हमें

शान्तिदायक (अस्तु) हो (पृश्निः) सबका स्पर्श करने वाला (देव-गोपा) विद्वान् महात्माओं का रक्षक (नः शम् भवतु) हमें शान्ति-दायक हो ।

भावार्थ—कभी भी जन्म न लेने वाला सदा एकरस व्यापक देव प्रभु हमें शान्ति प्रदान करे। जिस भगवान् की कभी कोई हिंसा नहीं कर सकता, ऐसा वह निर्विकार, सब का आदि मूल कारण और सबको हरा भरा रखने वाला हमें सुखदायक हो। सब प्रजाओं का रक्षक सब का उद्धार करने वाला सर्वव्यापक विद्वान् महात्माओं का सदा रक्षक, हमें शान्ति प्रदान करे ।

: १०० :

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा ।

शं नः इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ १।९०।९॥

पदार्थ—(मित्रः) सबसे स्नेह करने वाला परमात्मा (न) हमारे लिए (शम्) शान्तिदायक हो (वरुणः) सर्व उत्तम प्रभु (शम्) शान्तिदायक हो (अर्यमा) यम, न्यायकारी जगत्पति (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक हो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला महा-बली जगदीश (नः शम्) हमारे लिये कल्याणदाता हो (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े सूर्य चन्द्रादिकों का और वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर, हमारे लिये कल्याणकारी हो (उरुक्रमः) महाबली (विष्णुः) सर्व-व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा (नः शम्) हमें बल देकर सदा सुखी बनावें ।

भावार्थ—मित्र, वरुण, अर्य्यमा, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु आदि परमात्मा के अनन्त नाम हैं, ये सब सार्थक हैं निरर्थक एक भी नहीं। अनन्त शक्ति, अनन्त गुण और अनन्त ही ज्ञान वाले जगत्पिता में सर्व जगत् का उत्पन्न करना, अपने सब भक्तों को ज्ञान और शान्ति देकर, उनका लोक परलोक सुधारना इत्यादि सब घट सकते हैं ।

यजुर्वेद शतक

यजुर्वेद के चुने हुए ईश्वर भक्ति के
१०० मंत्रों का संग्रह

—अर्थ और भावार्थ सहित—

—स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

"वेद प्रभु की पवित्र वाणी है, जो आदिसृष्टि में जीवों के कल्याणार्थ, संसार के अन्य भोग्य पदार्थों की भांति कर्मों की यथार्थ व्यवस्था के ज्ञानार्थ, तद्नुसार आचरण करने के लिए परम पवित्र ऋषियों द्वारा प्रदान की गई है। भावी कल्प-कल्पान्तरों में भी यह वाणी इसी प्रकार सदा प्रादुर्भूत होगी। यह किसी व्यक्ति या व्यक्ति-विशेषों की कृति नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के रचयिता परम पिता परमात्मा की ही रचना है। इसमें किसी प्रकार न्यूनाधिकता नहीं हो सकती।"

:—ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवः स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण, आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वः स्तेन ईशत माऽघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि । यजु० अ०१। म० १॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (इषे) अन्नादि इष्ट पदार्थों के लिये (त्वा) आपको (ऊर्जे) बलादिकों की प्राप्ति के लिये आश्रयण करते हैं । हे जीवो ! (त्वा वायवः) तुम वायुरूप (स्थ) हो । (सविता देवः) जगत् उत्पादक देव (श्रेष्ठतमाय कर्मणे) उत्तम कर्म के लिये (वः) तुम सब को (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे, उस उत्तम कर्म द्वारा (इन्द्राय भागम्) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त ऐसे उत्तम पुरुष के भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ, यज्ञादि कर्मों के सम्पादन के लिये (अघ्न्या) न मारने योग्य (प्रजापतिः) बछड़ों वाली (अनमीवाः) साधारण रोगों से रहित, (अयक्ष्माः) तपेदिक आदि बड़े रोगों से रहित गौएँ सम्पादन करो (वः) आप लोगों के बीच जो (स्तेनः) चोर हो, वह उन गौओं का (मा ईशत) स्वामी न बने, और (अघशंसः) पाप चिन्तक भी (मा) उनका स्वामी न बने । ऐसा प्रयत्न करो जिससे (बह्वीध्रुवा) बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौएँ (अस्मिन् गोपतौ) इस दोष रहित गौ रक्षक के पास (स्यात्) बनी रहें । प्रभु से प्रार्थना है कि (यजमानस्य) यज्ञादि उत्तम कर्म करने वाले के (पशून् पाहि) पशुओं की हे ईश्वर ! रक्षा कर ।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अन्न और बलादिकों की प्राप्ति के लिये आपकी प्रार्थना उपासना करते हुये आपका ही हम आश्रय लेते हैं । परम दयालु प्रभु, जीव को कहते हैं, कि, हे जीव ! तुम

वायुरूप हो। प्राणरूपी वायु से ही तुम्हारा जीवन बन रहा है। तुमको मैं जगत्कर्ता देव, शुभ कर्मों के करने के लिये प्रेरणा करता हूँ, यज्ञादि उत्तम कर्मकर्ताओं के लिये श्रेष्ठ गौओं का संग्रह करना आवश्यक है। प्रभु से प्रार्थना है कि, हे ईश्वर ! यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वाले यजमान के गौ आदि पशुओं की रक्षा करें।

: २ :

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः, पावको अस्मभ्यꣳशिवो भव ॥
३६।२०॥

पदार्थ—(हरसे) पापों को हरने वाले (शोचिषे) पवित्र करने वाले और (अर्चिषे) अर्चा, पूजा सत्कार करने योग्य आप परमात्मा को (नमः ते नमः ते) वारम्बार हमारी नमस्कार (अस्तु) हो। (ते हेतयः) आप के वज्र (अस्मत् अन्यान्) हमारे से भिन्न हमारे शत्रुओं (दूसरों) को (तपन्तु) तपाते रहें। (पावकः) पावन करने वाले आप जगदीश्वर (अस्मभ्यम्) हम सबके लिये (शिवः भव) कल्याणकारी होवें।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन् ! आप अपने भक्तों के पापों और कष्टों को दूर करने वाले, अर्थात् पापों से बचाते हुये उनके अन्तःकरण को पवित्र और तेजस्वी बनाने वाले हैं, आप भक्तवत्सल भगवान् को हमारा प्रणाम हो। हे दयामय जगदीश ! ऐसा समय कभी न आवे कि हम आपकी आज्ञा के विरुद्ध चलकर आपके दण्ड के भागी बनें। किन्तु हम सदा आपकी आज्ञा के अनुकूल चलकर, आपकी कृपा के पात्र बनते हुए, सुख और कल्याण के भागी बनें।

: ३ :

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ ३६।२१॥

पदार्थ—(विद्युते) विशेष प्रकाश तेजःस्वरूप (ते) आपके लिये (नमः अस्तु) नमस्कार हो। (स्तनयित्नवे) शब्द करने वाले (ते नमः) आपको नमस्कार हो। हे (भगवन्) ऐश्वर्य-सम्पन्न जगन्नियन्तः ! (ते नमः अस्तु) आपको प्रणाम हो, (यतः) जिससे (स्वः) सबको आनन्द करने के लिये (समीहसे) आप सम्यक् चेष्टा करते हैं।

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्ययुक्त समर्थ प्रभो ! आप विशेष प्रकाशस्वरूप और किसी से भी न दबने वाले महातेजस्वी हो, आपको हमारा नमस्कार हो। आप शब्द करने वाले अर्थात् वेदवाणी के दाता हो, आप सदा आनन्द में रहते हो अपने प्रेमी भक्तों को सदा आनन्द में रखते हो। आपकी जो-जो चेष्टाएं हैं, वे सबको आनन्द देने के लिये ही हैं, अतएव हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं।

: ४ :

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ३६।२२॥

पदार्थ—(यतः यतः) जिस-जिस स्थान से वा कारण से (सम् ईहसे) आप सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) उस-उससे (अभयम्) अभय दान (कुरु) करो। (नः प्रजाभ्यः) हमारी प्रजाओं के लिये (शम् कुरु) शान्ति स्थापन करो। (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओं के लिए (अभयम् कुरु) अभय प्रदान करो।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन् ! जिस-जिस स्थान से वा कारण से आप कुछ चेष्टा करो, उस-उससे हमें निर्भय करो। हमारी सब प्रजाओं को और हमें शान्ति प्रदान करो। संसार भर की सब प्रजाएं आपस में प्रीतिपूर्वक बर्ताव करती हुई सुख-पूर्वक रहें और अपने जन्म को सफल करें। आपका उपदेश है कि

आपस में लड़ना-झगड़ना कोई बुद्धिमत्ता नहीं, एक दूसरे से प्रेम-पूर्वक रहना, मिलना-जुलना यही सुखदायक है। अतएव आप प्रभु से प्रार्थना है कि, हे दयामय ! हम सबको शान्ति प्रदान करो और हमारे गौ अश्वादि उपकारक पशुओं को भी अभय प्रदान करो।

: ५ :

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
११।८३॥

पदार्थ—हे (अन्नपते) अन्न के स्वामिन् ! (नः) हमें (अन्नस्य) अन्न को (प्रदेहि) प्रकर्ष से दो, (अनमीवस्य) जो अन्न रोग करने वाला न हो, (शुष्मिणः) बलकारक हों। (प्रदातारम्) अन्नदाता को (प्रतारिषः) तृप्त कर (नः द्विपदे) हमारे दो पग वाले [मनुष्य] तथा (चतुष्पदे) चार पग वाले गौ अश्वादि पशुओं के लिए (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कराओ।

भावार्थ—हे अन्नादि उत्तम पदार्थों के स्वामिन् ! आप कृपा करके रोगनानाशक और बल-वर्धक अन्न हम को दो और अन्नदाता पुरुष का उद्धार करो। हमारे दो पग वाले गौ अश्वादि पशु, जो सदा हम पर उपकार कर रहे हैं, जिनका जीवन ही परोपकार के लिए है, इन में भी पराक्रम धारण कराओ।

: ६ :

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥
३।१७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप (तनूपा असि) हमारे शरीरों की रक्षा करने हारे हैं, (मे तन्वम्) मेरे

शरीर की (पाहि) रक्षा करो। हे (अग्ने) परमेश्वर! (आयुर्दा असि) आप आयु-जीवन के दाता हो, (मे आयु, देहि) मुझे जीवन प्रदान करो। हे (अग्ने) पूज्य प्रभो! (वर्चोदाः असि) आप तेजदाता हैं (मे) मुझे (वर्चः देहि) तेज प्रदान करें। हे (अग्ने) परमेश्वर (यत् मे तन्वा) जो मेरे शरीर में (ऊनम्) न्यूनता हो (मे) मेरी; (तत्) उस न्यूनता को (आपृण) पूर्ण कर दो।

भावार्थ—हे सर्वरक्षक जगदीश! आप सब के शरीरों की रक्षा करने वाले और आयु प्रदान करने वाले हैं अतः आपके पुत्र जो हम हैं, इन की रक्षा करते हुए लम्बी आयु वाला बनाओ। हम पाप और दुराचारों में फंस कर कभी नष्ट भ्रष्ट न हों। दयामय भगवान्! अविद्या आदि दोषों को दूर करने वाला वर्चस जो ब्रह्मतेज है, उसके दाता भी आप ही हो, हमें भी वह तेज प्रदान करो, जिस से हम अपना और अपने स्नेहियों का कल्याण कर सकें। भगवन्! आप सर्वगुण सम्पन्न हो, हमारी न्यूनता दूर कर के हमें अनेक शुभगुण सम्पन्न करो, ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना को स्वीकर करें।

: ७ :

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ३६।२॥

पदार्थ—(मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र (हृदयस्य) हृदय (मनसः) और मन का (यत् छिद्रम्) जो छिद्र वा त्रुटि हो (वा) और जो इन इन्द्रियों का छिद्र (अति तृण्णम्) अति पीड़ित वा व्याकुलता है (तत्) उस (मे) मेरे दोष को (बृहस्पतिः) सब बड़े-बड़े लोक लोकान्तरों का स्वामी परमेश्वर (दधातु) ठीक करे। (यः) जो (भुवनस्य) सारे जगत् का (पतिः) स्वामी है वह (नः) हम सब का (शम्) कल्याणकारक (भवतु) होवे।

भावार्थ—हे सब बड़े-बड़े ब्रह्माण्डों के कर्ता, हर्ता और नियन्ता परमात्मन् ! जो मेरे नेत्र, हृदय, मन, वाणी, श्रोत्रादिकों का छिद्र, अर्थात् तुच्छता, निर्बलता और मन्दत्वादि दोष हैं, इन को निवारण करके, मेरे सब बाह्य इन्द्रिय और अन्त:करण को सत्य धर्मादिकों में स्थापन करें जिससे हम सब आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करते हुए, सदा कल्याण के भागी बनें। हे सारे भुवनों के स्वामिन् ! हम आपके पुत्र हैं, अपने पुत्रों पर कृपा करते हुए हम सबका कल्याण करें।

: ८ :

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि ।
सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २।२६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (स्वयंभूः असि) अजन्मा अनादि हैं। (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय, (रश्मिः) प्रकाशमान (वर्चोदाः) विद्या वा प्रकाश देने वाले (असि) हैं, (वर्चो मे देहि) मुझे विद्या वा प्रकाश दो। (सूर्यस्य) चराचर जगत् के आत्मा जो आप भगवान् वा इस भौतिक सूर्य के (आवृतम्) आचरण को मैं (अनु आवर्त्ते) स्वीकार करता हूं।

भावार्थ—हे अजन्मा सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप विज्ञानप्रद परमात्मन् ! आप बड़े २ ऋषि महर्षियों को भी वैदिक ज्ञान और आत्मज्ञान के देने वाले हैं, कृपया हमें भी ब्रह्मज्ञानरूप वर्चस देकर श्रेष्ठ बनावें। चराचर जगत् के आत्मा सूर्य जो आप, उस आपकी आज्ञा का पालन करते हुए हम, सबको उपदेश देकर आप का सच्चा ज्ञानी और प्रेमी-भक्त बनावें। यह भौतिक सूर्य जैसे अन्धकार का नाशक और सबका उपकार कर रहा है, ऐसे हम भी अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करते हुए सब के उपकार करने में प्रवृत्त होवें।

: ९ :

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव त॑संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ १७।२७॥

पदार्थ— (यः) जो परमेश्वर (नः पिता) हम सब का पालन करने वाला (जनिता) जनक (यः विधाता) जो सब सुख और मुक्ति सुख का भी सिद्ध करने वाला है, (विश्वा भुवनानि) सब लोक लोकान्तरों तथा (धामानि) स्थिति के स्थानों को (वेद) जानता है। (यः देवानाम्) जो भगवान् दिव्य शक्ति वाले सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवों के (नामधा) नामों को धारण कर रहा है वह (एकः एव) एक ही अद्वितीय परमात्मा है। (तम् संप्रश्नम्) उसी जानने योग्य परमेश्वर को आश्रय करके (अन्या भुवना यन्ति) अन्य सब लोक लोकान्तर गति कर रहे हैं।

भावार्थ—जो परमेश्वर, हम सब का रक्षक, जनक और हमारे सब कर्मों का फल प्रदाता है, वही भगवान्, सब लोक लोकान्तरों का ज्ञाता और अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, वरुण, मित्र, वसु, यम, विष्णु, बृहस्पति, प्रजापति आदि दिव्य देवों के नामों को धारण करने वाला एक ही अद्वितीय अनुपम परमात्मा है, उसी परमात्मा के आश्रित होकर, अन्य सब लोक गतिशील हो रहे हैं। दुर्लभ मानवदेह को प्राप्त हो कर, इसी परमात्मा की जिज्ञासा करनी चाहिए। इसी के ज्ञान से मनुष्य देह सफल होगी अन्यथा नहीं।

: १० :

दृते दृ॑ह मा ज्योक्ते संदृशि।
जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥३६।१९॥

पदार्थ—हे (दृते) अविद्या रूपी अन्धकार के विनाशक परमात्मन्! (मा) मुझको (दृंह) दृढ कीजिए, जिससे मैं (ते)

आपके (संदृशि) यथार्थ ज्ञान में (ज्योक्) निरन्तर (जीव्यासम्) जीवन धारण करूं, (ते) आपके (संदृशि) साक्षात्कार में प्रवृत्त हुआ बहुत समय तक मैं जीता रहूँ।

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि, ब्रह्मचर्यादि साधन सम्पन्न होकर युक्त आहार विहार पूर्वक औषध आदि का यथार्थ ज्ञान अवश्य सम्पादन करे, क्योंकि परमात्म-ज्ञान के बिना बहुत काल तक जीना भी व्यर्थ ही है। अतएव इस मन्त्र में प्रभु से प्रार्थना की गई है कि हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आप कृपा करें कि मैं दीर्घकाल तक जीता हुआ आप के ज्ञान और सच्ची भक्ति को प्राप्त होकर, अपने मनुष्य जन्म को सफल करूं।

: ११ :

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत ॥

३२।२॥

पदार्थ—(विद्युतः) विशेष प्रकाशमान (पुरुषात्) सर्वत्र पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषाः) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि क्रियाएं (अविजज्ञिरे) उत्पन्न होती हैं। कोई भी (एनम्) इस को (न ऊर्ध्वम्) न ऊपर से (न तिर्य्यञ्चम्) न तिरछे (न मध्ये) न बीच में से (परिजग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है।

भावार्थ—जिस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान प्रकाशमान पूर्ण परमात्मा से, क्षण, घटिका, दिन, रात्रि आदि काल के सब अवयव उत्पन्न हुए हैं, और जिससे सारे जगतों की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, नियमनादि होते हैं, उस जगत्पिता परमात्मा को, कोई भी नीचे, ऊपर, बीच में से वा तिरछे ग्रहण नहीं कर सकता। ऐसे पूर्ण जगदीश परमात्मा को योगाभ्यास, ध्यान, उपासनादि साधनों से ही, जिज्ञासु पुरुष जान सकता है, अन्यथा नहीं।

: १२ :

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥३२।१॥

पदार्थ—(तत्) वह ब्रह्म (एव) ही (अग्निः) अग्नि है। (तत्) वह (आदित्यः) आदित्य, (तत् वायु) वह वायु, (तत् उ चन्द्रमाः) वह निश्चय चन्द्रमा है। (तत् एव शुक्रम्) वह ही शुक्र (तत् ब्रह्म) वह ब्रह्म है। (ताः आपः) वह आप (स प्रजापतिः) वह ही प्रजापति है।

भावार्थ—उस परब्रह्म के यह अग्नि आदि सार्थक नाम हैं, निरर्थक एक भी नहीं। अग्नि नाम परमात्मा का इसलिए है कि वह सर्वव्यापक, स्वप्रकाशज्ञानस्वरूप, सबका अग्रणी नेता और परम पूजनीय है। अविनाशी होने से और सारे जगत् का प्रलयकर्ता होने से उसका नाम आदित्य है। अनन्त बलवान् होने से उसको वायु कहते हैं। सब प्रेमी भक्तों को आनन्द देता है, इसलिए उस जगत्पति का नाम चन्द्रमा है। शुद्ध पवित्र ज्ञानस्वरूप होने से शुक्र, और सबसे बड़ा होने से ब्रह्म, सर्वत्र व्यापक होने से आपः सब प्रजाओं का स्वामी, पालक और रक्षक होने से उस जगत्पिता को प्रजापति कहते हैं। ऐसे ही सब वेदों में, परमात्मा के सार्थक अनन्त नाम निरूपण किये हैं, जिनको स्मरण करता हुआ पुरुष कल्याण को प्राप्त हो जाता है।

: १३ :

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३४।४१॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टिकारक परमात्मन् ! (तव) आपके (व्रते) नियम में रहते हुए (वयम्) हम लोग (कदाचन) कभी भी (न रिष्येम) पीड़ित वा दुःखी न हों। (इह) इस जगत् में (ते)

आपके (स्तोतारः) स्तुति करते हुए हम सुखी (स्मसि) होते हैं।

भावार्थ—हे सबके पालन पोषण करने वाले परमात्मन्! आपके अटल सृष्टि नियमों के अनुसार अपना जीवन बनाने वाले हम आपके सेवक, इस लोक वा परलोक में कभी दुःखी नहीं हो सकते, इसलिए आपकी प्रेमपूर्वक स्तुति करने वाले हम सदा सुखी होते हैं। आप परम पिता हम पर कृपा करें कि हम आपकी श्रद्धा भक्तिपूर्व उपासना, प्रार्थना और स्तुति नित्य किया करें।

: १४ :

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमान-शानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ ३२।१०॥

पदार्थ—(सः) वह परमेश्वर (नः) हम सबका (बन्धुः) भाई के समान मान्य और सहायक है। (जनिता) जनयिता अर्थात् हमारे सबके शरीरों का उत्पन्न करने हारा है। (स विधाता) वही जगदीश सब पदार्थों का और सबके कर्मों का फलदाता है। (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तरों और (धामानि) सबके जन्मस्थान और नामों को (वेद) जानता है। (यत्र) जिस परमेश्वर में (देवाः) विद्वान् लोग (अमृतम्) मोक्ष सुख को (आनशानाः) प्राप्त होते हुए (तृतीये) जीव प्रकृति से विलक्षण तीसरे (धामन्) आधाररूप जगदीश्वर में रमण करते हुए (अध्यैरयन्त) अपनी इच्छापूर्वक सर्वत्र विचरते हैं।

भावार्थ—जो जगत्पति, हम सबका बन्धु और सबका जनक, सबके कर्मों का फलप्रदाता, सब लोक लोकान्तरों को और सबके जन्मस्थान और नामों को जानता है, वह जीव और प्रकृति से विलक्षण है। उसी परमात्मा में विद्वान् लोग, मुक्ति सुख को अनुभव करते हुए, अपनी इच्छापूर्वक सर्वत्र विचरते हैं।

: १५ :

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदꣳसं च विचैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च
विभूः प्रजासु ॥ ३२।८॥

पदार्थ—(वेनः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष (तत्) उस ब्रह्म को जो (गुहानिहितम्) बुद्धिरूपी गुफा में स्थित तथा (सत्) तीन कालों में वर्तमान नित्य है, उसको (पश्यत्) अनुभव करता है, (यत्र) जिस ब्रह्म में (विश्वम्) सारा संसार (एक नीडम्) एक आश्रय को (भवति) प्राप्त होता है, (तस्मिन्) उसी ब्रह्म में (इदम् सर्वम्) यह सब जगत् (सम् एति च) प्रलयकाल में संगत होता अर्थात् लीन होता है। और उत्पत्ति काल में (वि एति च) पृथक् स्थूल रूप को भी प्राप्त होता है। (सः) वह जगदीश (विभूः) विविध प्रकार से व्याप्त हुआ (प्रजासु) प्रजाओं में (ओतः प्रोतः च) ओत और प्रोत है।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी पुरुष, उस ब्रह्म को अपनी बुद्धिरूपी गुफा में स्थित देखता है, जो ब्रह्म सत्य, होने से नित्य त्रिकालों में अबाध्य और सारे संसार का आश्रय है, यह सब जगत् प्रलय काल में जिसमें लीन होता और उत्पत्ति काल में जिससे निकलकर स्थूलरूप को प्राप्त होता है, और बने हुए सब जगत् में व्यापक, वस्त्र में ताने-पेटे के समान सर्वत्र भरा हुआ है। ऐसे ब्रह्म को ब्रह्मज्ञानी जानता और अनुभव करता हुआ कृतार्थ होता है।

: १६ :

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
३४।५८॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणः पते) ब्रह्माण्ड के स्वामिन्, वा वेद रक्षक प्रभो ! (देवाः) वेदवेत्ता विद्वान् (यत्) जिसकी (विदथे) पठन

पाठनादि व्यवहार में (अवन्ति) रक्षा करते हैं। और (यत्) जिस (बृहत) बड़े श्रेष्ठ का (वयम् सुवीराः) हम उत्तम वीर पुरुष (वदेम) कहें (अस्य सूक्तस्य) अच्छे प्रकार कहे इस वेद के (त्वम्) आप (यन्ता) नियमपूर्वक दाता हैं, (च) और (तनयम्) अपने पुत्र तुल्य मनुष्य मात्र को (बोधि) करावें, (तत्) उस (भद्रम्) कल्याणमय वेदामृत से (विश्वम्) सब संसार को (जिन्व) तृप्त कीजिए।

भावार्थ—हे सकल संसार के और वेद के रक्षक परमात्मन्! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम न करने वाले होवें। सारे संसार के मनुष्य जो आपके ही पुत्र हैं, उनके हृदय में वेदों में प्रेम और दृढ़ विश्वास उत्पन्न करें, जिससे वेदों को पढ़-सुनकर उनके कल्याणमय वैदिक ज्ञान से तृप्त हुए सारे संसार को तृप्त करें।

: १७ :

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्। यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकाꣳसि चक्रिरे॥ ३४।५७॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस परमेश्वर में (इन्द्रः) बिजुली वा सूर्य (वरुणः) जल वा चन्द्रमा (मित्रः) प्राण अपानादि वायु (अर्यमा) सूत्रात्मा वायु (देवाः) ये सब उत्तम गुण वाले (ओकांसि) निवासों को (चक्रिरे) किये हुए हैं, वही (ब्रह्मणः पतिः) सारे ब्रह्माण्ड का और वेद का रक्षक जगदीश (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय पदार्थों में श्रेष्ठ (मंत्रम्) वेद रूप मन्त्र भाग को (नूनम्) निश्चय कर (प्रवदति) अच्छे प्रकार कहता है।

भावार्थ—जिस परमात्मा में, कार्य कारण रूप सब जगत् और जीव निवास कर रहे हैं, उन जीवों के कल्याण के लिए, जिस दयामय परमात्मा ने मन्त्र भाग रूपी वेद बनाये, उन वेदों को पढ़ते-पढ़ाते सुनते-सुनाते हुए, हम लोग उस जगत्पिता परमात्मा को जानकर और उसी की भक्ति करते हुए, कल्याण के भागी बन सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं।

: १८ :

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३३।२४॥

पदार्थ—(येषाम्) जिन उत्तम पुरुषों का (इध्मः) महा-तेजस्वी (पृथुः) विस्तार युक्त (स्वरुः) सूर्य के समान प्रतापी (युवा) नित्य युवा एकरस (बृहत्) सबसे बड़ा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर (सखा) मित्र है, (एषाम्) उन (इत्) ही का (भूरि) बहुत (शस्तम्) स्तुति योग्य कर्म होता है ।

भावार्थ—जिन महानुभाव भद्र पुरुषों ने, विषय भोगों में न फँसकर, महातेजस्वी, सर्वव्यापक सूर्यवत् प्रतापी, एकरस, महाबली, सबसे बड़े परमेश्वर को, अपना मित्र बना लिया है, उन्हीं का जीवन सफल है । सांसारिक भोगों से विरक्त, परमेश्वर के ध्यान में और उसके ज्ञान में आसक्त, महापुरुषों के सत्संग से ही, मुमुक्षु पुरुषों का कल्याण हो सकता है, न कि विषय-लम्पट ईश्वर विमुखों के कुसंग से ।

: १९ :

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् ।
सं देवो देवेन सवित्रा गत सँसूर्य्येण रोचते ॥ ३७।१४॥

पदार्थ—जो परमेश्वर (देवानाम्) विद्वानों और पृथ्वी आदि तेतीस देवों के (गर्भः) गर्भ की नाईं उत्पत्ति स्थान (मतीनाम्) मननशील बुद्धिमान मनुष्यों के (पिता) पालक (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पतिः) रक्षक स्वामी, (देवः) स्वप्रकाश-स्वरूप परमात्मा (सवित्रा) सब संसार के प्रेरक (सूर्येण देवेन) सूर्य देव के समान (सं रोचते) सम्यक् प्रकाश कर रहा है, उसको हे मनुष्यो ! (सम् गत) आप लोग सम्यक् प्राप्त होवो ।

भावार्थ—जो जगत्पिता परमात्मा सबका उत्पादक, पिता के

तुल्य सबका और विशेषकर विद्वानों का पालक सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक जगदीश्वर है, उसी पूर्ण परमात्मा की हम सब लोग, सदैव प्रेम से उपासना किया करें, जिससे हमारा सबका कल्याण हो।

: २० :

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥
२।२४॥

पदार्थ—(वर्चसा) वेदों के स्वाध्याय और योगाभ्यास करने से प्राप्त जो ब्रह्मतेज (पयसा) पुष्टिकारक दुग्ध घृतादि (तनूभिः) नीरोग शरीर और (शिवेन मनसा) कल्याणकारी पवित्र मन से (सम् अगन्महि) सम्यक् संयुक्त रहें (सुदत्रः) श्रेष्ठ पदार्थों का दाता, (त्वष्टा) जगत् उत्पादक प्रभु हमें (रायः) अनेक प्रकार का धन (विदधातु) प्रदान करे। (तन्वः) हमारे शरीर में (यत्) जो विलिष्टम् विपरीत अनिष्ट, उपघातक पदार्थ हो उसको (अनुमार्ष्टु) शुद्ध करें वा दूर करें।

भावार्थ—हे जगत् पिता अनेक उत्तम पदार्थों के प्रदाता परमेश्वर! अपनी अपार कृपा से, हमें वेदों के स्वाध्यायशील, शरीर की पुष्टि करने वाले अनेक खाद्य पदार्थों के स्वामी, नीरोग ऐश्वर्य शरीर वाले और कल्याणकारी शुद्ध मन से युक्त बनावें। हे सकल के स्वामी इन्द्र! हम कभी दरिद्री, दीन, मलीन, पराधीन, रोगी न हों, किन्तु सुखी रहते हुए उत्तम-उत्तम पदार्थों के स्वामी हों।

: २१ :

पयः पृथिव्यां पय ओषधिषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ १८।३६॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! आप कृपा करके (पृथिव्याम्)

पृथिवी में (पयः) पुष्टिकारक रस को (धाः) स्थापित करें। ऐसे ही (ओषधीषु) ओषधियोंमें (दिवि) द्युलोक में, और (अन्तरिक्षे) मध्य लोक में (पयः धाः) पौष्टिक रस स्थापित करें (प्रदिशः) समस्त दिशाएं (मह्यम्) मेरे लिए (पयस्वतीः) पौष्टिक रस से पूर्ण (सन्तु) होवें।

भावार्थ—हे सबके पालन पोषण कर्ता जगदीश्वर! आप, अपने पुत्र हम सब पर कृपा करें कि आपकी नियम व्यवस्था के अनुसार जहां-जहां हमारा निवास हो, वहां-वहां हम अन्नादिकों के पौष्टिक रस से पुष्ट हुए, आपके स्मरण और उपासना में तत्पर रहें। पृथिवी में, द्युलोक वा मध्य लोक में और पूर्व पश्चिमादि सब दिशाओं में रहते, आपकी प्रेमपूर्वक भक्ति, प्रार्थना, उपासना करते हुए सदा आनन्द में रहें।

: २२ :

इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ ३६।८॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (विश्वस्य) सब चर और अचर जगत् को (राजति) प्रकाश करने वाला और सब का राजा, स्वामी है। (नः) हमारे (द्विपदे) दो पांव वालों के लिये और (चतुष्पदे) चार पांव वालों के लिये भी (शम् अस्तु) कल्याण कर्ता होवे।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! आप सब चर और अचर जगतों के राजा और स्वामी हैं। आपकी दिव्य ज्योति से ही सूर्य, चन्द्र, बिजली आदि प्रकाशित हो रहे हैं। आप सब जगतों के प्रकाशक हैं। भगवन्! हमारे सब मनुष्यादि दो पांव वाले और गौ अश्वादि पशु चार पांव वाले जो हम पर सदा उपकार कर रहे हैं, जिनका जीवन ही पर-उपकार के लिये है, इनके लिये भी आप सदा सुख और कल्याणकर्ता होवें।

: २३ :

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ ३६।१२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (देवी आपः) दिव्य गुण युक्त जल, महात्मा, आप ईश्वर, विद्वान् आप्त पुरुष, श्रेष्ठ कर्म और ज्ञान (नः अभिष्टये) हमारे अभिलषित कार्यों के सिद्ध करने के लिये (शम् नः) हमें शान्तिदायक हों और वे (पीतये भवन्तु) पान और पालन रक्षण के लिये भी हों । वे ही (नः) हम पर (शंयोः अभि-स्रवन्तु) शान्ति सुख का सब ओर से वर्षण करने और बहाने वाले हों ।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! हम पर आप कृपा करें कि, दिव्य गुण वाले जल आदि पदार्थ, आप्त वक्ता विद्वान् महात्मा लोग, श्रेष्ठ कर्म, ज्ञान और आप ईश्वर हमारे इष्ट कार्यों को सिद्ध करते हुए, हमें शान्तिदायक हों । ये ही हमारा पालन-पोषण करके हम पर सब ओर से शान्ति सुख की वर्षा करने वाले हों ।

: २४ :

शं वातः शꣳहि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः ।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभिशूशुचन् ॥ ३५।८॥

पदार्थ—हे जीव ! (वातः) वायु (शम्) सुखकारी हो । (ते) तेरे लिये (घृणिः) सूर्य (हि) भी (शम्) सुखकर हो । (ते) तेरे लिये (इष्टकाः) वेदी में चयन की हुई ईंटे अथवा ईंटों से बने हुए स्थान (शम्) सुखप्रद (भवन्तु) हों (ते) तेरे लिये (पार्थिवासः अग्नयः) इस पृथिवी की अग्नि और बिजली आदि (शम् भवन्तु) सुखकारक हों । ये सब अग्नि, वायु, सूर्य; बिजली आदि पदार्थ (त्वा) तुमको (मा अभिशूशुचन) न दग्ध करें, न सतावें, दुःख और शोक के कारण न हों ।

भावार्थ—दयामय परमपिता परमात्मा, हम सबको वेद द्वारा उपदेश करते हैं कि, हे मेरे प्यारे पुत्रो ! आप सबको चाहिये कि आप लोग ऐसे अच्छे धार्मिक काम करो और मेरी भक्ति, प्रार्थना उपासना में लग जाओ, जिससे अग्नि, बिजली सूर्यादि सब दिव्य देव, आपको सुखदायक हों। प्यारे पुत्रो ! ये सब पदार्थ आप लोगों को सुख देने के लिये ही मैंने बनाए हैं, दुःख देने के लिये नहीं। दुःख तो अपनी अविद्या, मूर्खता, अधर्म करने और प्रभु से विमुख होने से होता है। आप, पापों को छोड़कर मुझ प्रभु की शरण में आकर सदा सुखी हो जाओ।

: २५ :

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः
अन्तरिक्षँ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥ ३५।९॥

पदार्थ—हे जीव ! (ते) तेरे लिये (दिशः) पूर्व पश्चिमादि दिशाएँ और इनमें रहने वाले प्राणिवर्ग (शिवतमाः) अत्यन्त सुख-कारी (कल्पन्ताम्) हों। (आपः तुभ्यम् शिवतमाः) जल तेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी हों। (सिन्धवः तुभ्यम् शिवतमाः भवन्तु) नदियां और समुद्र तेरे लिये अति सुखकारी हों। (तुभ्यम्) तेरे लिये (अन्तरिक्षम् शिवम्) मध्य आकाश कल्याणकारी हों। (ते) तेरे लिए (सर्वाः दिशः) ईशानादि सब विदिशाएं अत्यन्त कल्याणकारी (कल्पन्ताम्) होवें।

भावार्थ—परम कृपालु परमात्मा, अपने पुत्र जीव मात्र को उत्तम उपदेश करते हैं—हे मेरे प्यारे पुत्रो ! आप लोग यदि पापाचरण को छोड़कर, सदा वेदानुकूल, अपना आचरण बनाते हुए मेरी प्रेम भक्ति में लग जावें तो आपके लिए सब दिशा, उपदिशा, सब जल, सब नदियां, समुद्र, अन्तरिक्ष और इनमें रहने वाले सब प्राणी और सब पदार्थ अत्यन्त मंगलकारी हों।

: २६ :

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ।।३३।८१।।

पदार्थ—हे (पुरूवसो) बहुत पदार्थों में वास करने वाले परम-पिता परमात्मन् ! (याः इमाः) जो ये (मम गिरः) मेरी वाणियां (उ) निश्चय करके (त्वा वर्द्धन्तु) आपको बढ़ावें [आपकी महिमा का प्रचार करें] (पावक वर्णाः) अग्नि के तुल्य वर्ण वाले महातेजस्वी (शुचयः) पवित्र हृदय (विपश्चितः) विद्वान् जन (स्तोमैः) स्तुति वचनों से (अभि अनूषत) प्रशंसा करें ।

भावार्थ—हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामिन् प्रभो ! हम सब मुमुक्षु जनों को योग्य है कि हम सब की वाणियाँ आपकी महिमा को बढ़ावें । सब विद्वान् पवित्र हृदय, महातेजस्वी, महात्मा लोगों को भी चाहिए कि, आपकी प्रेमपूर्वक उपासना प्रार्थना और स्तुति करने में लग जावें क्योंकि आपकी भक्ति से ही हम सबका जन्म सफल हो सकता है । आपकी भक्ति के विना, विद्वान् हो चाहे अज्ञानी, किसी का भी जन्म सफल नहीं हो सकता । इसलिए हम सबको योग्य है कि हम सब लोग, उस दयामय अन्तर्यामी जगदीश्वर की, पवित्र वेद-मन्त्रों से प्रार्थना उपासना और स्तुति किया करें ।

: २७ :

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा ऊर्ध्वो
अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ।। ३७।१९।।

पदार्थ—हे जगदीश ! (हृदे त्वा) हृदय की चेतनता के लिए आपको, (मनसे त्वा) ज्ञानयुक्त अन्तःकरण की शुद्धि के लिए आपको, (दिवे त्वा) विद्या के प्रकाश वा बिजुली-विद्या की प्राप्ति के लिए आपको (सूर्याय त्वा) सूर्यादि लोकों के ज्ञान की प्राप्ति अर्थ आपको हम लोग ध्यावें [आपका ध्यान करें] (ऊर्ध्वः) सबसे

ऊंचे अर्थात् उत्कृष्ट आप (दिवि) उत्तम व्यवहार और (देवेषु) विद्वानों में (अध्वरम्) हिंसा रहित यज्ञ का (वेहि) स्थापन करें।

भावार्थ—हे दयामय जगद्रक्षक परमात्मन्! आप कृपा करें, हमारा हृदय चेतन स्फूर्ति वाला हो, और अंतःकरण ज्ञान युक्त हो, आत्मविद्या का प्रकाश हो। बिजुली, अग्नि, सूर्य, वायु आदि विद्याओं की प्राप्ति के लिए सदा आपका ही ध्यान धरें। आप सारे संसार के विद्वानों में अहिंसामय यज्ञ का विस्तार कर रहे हैं, अहिंसक प्राणी की कोई हिंसा न करे। सारे संसार में शान्ति का राज्य हो, कोई किसी को दुःख न देवे। मनुष्यमात्र सब एक दूसरे के मित्र बनकर, एक दूसरे के हित करने में प्रवृत्त हों, कोई किसी की हानि न करे।

: २८ :

त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥
३४।१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश जगदीश्वर! (त्वम्) आप (प्रथमः) सबसे प्रथम प्रख्यात (अङ्गिराः) जीवात्माओं को सुख देने वाले (ऋषिः) ज्ञानी (देवानाम्) विद्वानों में (देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र (अभवः) हैं। (तव व्रते) आपके नियम में (कवयः) मेघावी (विद्म-नापसः) सब कर्मों के ज्ञाता (भ्राजदृष्टयः) प्रदीप्त हैं दृष्टि जिनकी ऐसे (मरुतोऽजायन्त) मनुष्य प्रकट हो जाते हैं।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप ज्ञानप्रद प्रभो! आप सबसे प्रथम प्रसिद्ध, जीव के सुखदाता, महाज्ञानी, विद्वान् महात्माओं के कल्याण कारक और सच्चे मित्र हैं। जो महापुरुष मेधावी उज्ज्वल बुद्धि वाले, आपके बनाए नियमों के अनुसार अपना जीवन बनाते हैं, वे ही आपकी आज्ञा मनाते हुए सदा सुखी होते हैं।

: २९ :

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ।। ३६।४।।

पदार्थ—(सदा वृधः) सदा से महान् प्रभु (चित्र) आश्चर्य-कारक और आश्चर्यस्वरूप, (कया ऊती) सुखकारी रक्षण से (कया शचिष्ठया) सुखमय अपनी अतिशक्ति द्वारा (वृता) वर्तमान (नः) हम सबका (सखा) मित्र (आभुवत्) सदा बना रहता है ।

भावार्थ—सदा से महान् वह जगदीश्वर आश्चर्यस्वरूप और आश्चर्यकारक है। वह आनन्ददायक रक्षण से और अपनी आनन्द-कारक महाशक्ति द्वारा, हम सबकी रक्षा करता हुआ, हमारा सच्चा मित्र बना रहता है । ऐसे सदा सुखदायक सच्चे मित्र पर-मात्मा की, शुद्ध मन से भक्ति करना हमारा सबका कर्तव्य है ।

: ३० :

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ।। ३६।५।।

पदार्थ—हे जीव ! (अन्धसः) अन्नादि भोग्य पदार्थों के (मदानाम्) आनन्दों से (मंहिष्ठ) अधिक आनन्दकारक और (सत्यः) तीनों कालों में एक रस (कः) सुखस्वरूप (चित्) ज्ञानी परमात्मा (त्वा) तुमको (मत्सत्) आनन्द करता है और (दृढा वसु) बलकारक धनों को (आ रुजे) दुःखनाश के लिए देता है ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वह सत्, चित और आनन्दस्वरूप जगत्पिता परमात्मा, अन्नादि भोग और बलयुक्त धन, अनेक विपत्तियों के दूर करने के लिए तुम मनुष्यों को, देकर आनन्दित करते हैं, ऐसे दयालु परमपिता को कभी भूलना नहीं चाहिए ।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३६।६॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (नः सखीनाम्) हम सब आपके प्रेमी मित्रों के और (जरितॄणाम्) उपासकों के (शतम् ऊतिभिः) सैंकड़ों रक्षणों से (अभि सु अविता) चारों ओर से उत्तम रक्षक (भवासि) आप होते हैं ।

भावार्थ—हे सबके रक्षक परम प्यारे जगदीश्वर ! आप अपने मित्रों और उपासकों का अनेक प्रकार से अत्युत्तम रक्षण करते हैं । भगवन् ! न्यूनता हमारी ही है, जो हम संसार के भोगों में लम्पट होकर संसारी पुरुषों को अपना मित्र जानते और उनके ही सेवक और उपासक बने रहते हैं । इसमें अपराध हमारा ही है, जो हम आपके प्यारे मित्र और उपासक नहीं बनते ।

: ३२ :

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳराजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ १८।४८॥

पदार्थ—(नः ब्राह्मणेषु) हमारे ब्राह्मणों में (रुचम्) तेज और परस्पर प्रेम (धेहि) प्रदान करो । (नः (राजसु) हमारे क्षत्रियों में (रुचम् कृधि) तेज और प्रेम स्थापन करो । (विश्येषु शूद्रेषु) वैश्य और शूद्रों में (रुचम् धेहि) तेज और प्रेम स्थापन करो । (मयि) मेरे में भी (रुचा) अपने तेज और प्रेम द्वारा (रुचम् धेहि) सबसे प्रेम और तेज को स्थापन करो ।

भावार्थ—हे विशाल प्रेम ज्ञान और तेज के भण्डार परमात्मन् ! हमारे ब्राह्मणादि चारों वर्णों को वेदों के स्वाध्याय और योगाभ्यासादि साधनों से उत्पन्न जो ब्रह्मतेज उस तेज से सम्पन्न करो । इन चारों वर्णों में आपस में प्रेम भी उत्पन्न करो, जिससे

एक दूसरे के सहायक बनते हुए सब सुखी हों। वेदादि सत्य शास्त्रों की विद्या और परस्पर प्रेम के बिना, कभी कोई सुखी नहीं हो सकता। इसीलिए आप दयालु पिता ने इस मन्त्र द्वारा, हमें बताया कि मेरे प्यारे पुत्रो ! तुम लोग मुझसे ब्रह्मविद्या और परस्पर प्रेम की प्रार्थना करो, जिससे आप लोग सदा सुखी होओ।

: ३३ :

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ २०।२५॥

पदार्थ—(यत्र) जिस देश में (ब्रह्म) वेद वेत्ता ब्राह्मण (च) और (क्षत्रं च) विद्वान शूर वीर क्षत्रिय ये दोनों (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार से मिलकर (सह) एक साथ (चरतः) विचरण करते हैं अर्थात् विद्यमान् रहते और (यत्र) जहां (देवाः) विद्वान् ब्राह्मण और क्षत्रिय जन (सह अग्निना) ज्ञानस्वरूप परमात्मा की प्रार्थना उपासना करते और अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मों के करने से ईश्वर की आज्ञा का पालन करते, उसी का ध्यान धरते और उसी के साथ रहते हैं (तम् लोकम्) उस देश और उस जनसमाज को मैं (पुण्यम्) पवित्र और (प्रज्ञेषम्) उत्कृष्ट जानता हूँ।

भावार्थ—परमात्मा हम सबको वेद द्वारा उपदेश देते हैं कि, जिस देश या जनसमाज में वेदवेत्ता सच्चे ब्राह्मण और शूरवीर क्षत्रिय मिलकर काम करते हैं, वह देश और जनसमुदाय पवित्र भाग्यशाली है। वही देश और जनसमुदाय परम सुखी है। उस देश के वासी विद्वान् लोग, अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म करते और जगदीश्वर का ध्यान धरते, और उस परमपिता परमात्मा के साथ रहते हैं। धन्यवाद है ऐसे देश को और उसके वासी परमेश्वर के प्यारे विद्वान् महापुरुषों को, जो प्रभु के भक्त बनकर दूसरों को भी परमेश्वर का भक्त और वेदानुयायी बनाते हैं।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
३४।१॥

पदार्थ--हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! (यत्) जो मुझ जीवात्मा का (मनः) संकल्प विकल्प करने वाला अन्तःकरण (दैवम्) ज्ञानादि दिव्य गुणों वाला और प्रकाशस्वरूप (जाग्रतः) जागते हुए का (दूरम् उद् आ एति) दूर २ देशों में जाया करता है और (सुप्तस्य) सोते हुए [मुझ] का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) भीतर आ जाता है (तत्) वही मन (उ) निश्चय से (ज्योतिषाम्) सूर्य, चन्द्रादि प्रकाशकों का और नाना विषयों के प्रकाश करने वाले इन्द्रियगण का (ज्योतिः) प्रकाशक है, और वही मन (दूरङ्गमम्) दूर तक पहुंचाने वाला (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसंकल्पम्) शुभ कल्याणमय संकल्प करने वाला (अस्तु) हो ।

भावार्थ—हे सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ! आपकी कृपा से मेरा मन, शुभमंगलमय कल्याण का सङ्कल्प करने वाला हो, कभी दुष्ट सङ्कल्प करने वाला न हो, क्योंकि यह मन अति चंचल है, जागृत अवस्था में दूर २ तक भागता फिरता है । जब हम सो जाते हैं तब भी यह मन अन्दर भटकता रहता है, वही दिव्य मन दूर २ देशों में आने जाने वाला और ज्योतियों का ज्योति है । क्योंकि मन के बिना किसी ज्योति का ज्ञान नहीं हो सकता । दयामय परमात्मान् ! यह मन आपकी कृपा से ही शुभ सङ्कल्प वाला हो सकता है ।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
३४।२॥

पदार्थ—(येन) जिस मन से (अपसः) कर्म करने वाले उद्यमी और (मनीषिणः) दृढ़ निश्चय वाले ज्ञानी और (धीराः) ध्यान करने वाले महात्मा लोग (विदथेषु) ज्ञानयुक्त व्यवहारों और युद्धादिकों में और (यज्ञे) यज्ञ वा परमपूज्य परमात्मा की प्राप्ति के लिये (कर्माणि) अनेक उत्तम कर्मों का (कृण्वन्ति) सेवन करते हैं और (यत्) जो (प्रजानाम् अन्तः) सब प्रजाओं के अन्तर मध्य में (अपूर्वम्) अद्‌भुत सबसे श्रेष्ठ (यक्षम्) पूजनीय, सब इन्द्रियों का प्रेरणा करने वाला है (तत् मे मनः) वह ऐसा मेरा मन (शिव-सङ्कल्पम् अस्तु) शुभ सङ्कल्प करने वाला हो।

भावार्थ—हम सब जिज्ञासु पुरुषों को चाहिये कि, अपने मन को बुरे कर्मों से हटाकर परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, वेद विद्या, उत्तम महात्माओं के सत्सङ्ग में लगावे, क्योंकि जो उत्तम यज्ञादि कर्म करने वाले परम ज्ञानी अपने मन को वश में करने वाले और ध्याननिष्ठ धीर मेधावी पुरुष हैं, वे सब अधर्मा-चरण से अपने मन को हटाकर, श्रेष्ठ ज्ञान कर्म और योगाभ्या-सादि में लगाते हैं। मेरा मन भी दयामय आप परमात्मा की कृपा से उत्तम सङ्कल्प और परमात्मा के ध्यान में संलग्न हो।

: ३६ :

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु ॥ ३४।३॥

पदार्थ—(यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेष कर उत्तम ज्ञान साधन

(चेतः) स्मरण करने वाला (धृतिः च) धैर्यस्वरूप और लज्जा आदि करने वाला (यत् प्रजासु) जो प्राणियों के भीतर (अन्तः) अन्तः करण में (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाश है, (यस्मात् ऋते) जिसके बिना (किम् चन) कोई भी (कर्म) काम (न क्रियते) नहीं किया जाता (तत् मे मनः) वह सब कामों का साधन मेरा मन (शिवसङ्कल्पम्) शुभ सङ्कल्प वाला और परमात्मा में इच्छा करने वाला हो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप वृत्तिवाला होने से चार प्रकार का है। मनन करने से मन, निश्चय करने से बुद्धि, स्मरण करने से चित्त और अहङ्कार करने से अहङ्कार कहलाता है। यह मन शरीर के भीतर प्रकाश, स्मरण, धैर्य और लज्जा आदि करने वाला और सब प्राणियों के कर्मों का साधक अविनाशी है, उसको अशुभ कर्मों से हटाकर अच्छे कर्मों में लगाओ और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करो कि, हे दयामय जगदीश ! हमारा मन श्रेष्ठ मङ्गलमय सङ्कल्प करने वाला और आप प्रभु परमपिता परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा करने वाला हो।

: ३७ :

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३४।४॥

पदार्थ—(येन अमृतेन) जिस अविनाशी आत्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) आगे होने वाला (सर्वम् इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) ग्रहण किया जाता, अर्थात् जाना जाता है। (येन) जिससे (सप्त होता) सात मनुष्य होता जिस यज्ञ में अथवा पाँच प्राण छटा जीवात्मा और सातवां

अव्यक्त, ये सात जिसमें लेने देने वाले हों, वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञान रूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत् मे मनः) वह योगयुक्त मेरा चित्त (शिव सङ्कल्पम् अस्तु) परमात्मा और मोक्ष विषयक सङ्कल्प करने वाला हो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मन योगाभ्यास के साधनों से सिद्ध हुआ, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान इन तीनों कालों का ज्ञाता, सब सृष्टि का जानने वाला, कर्म, उपासना और ज्ञान का साधन है, ऐसे मन को कल्याण में ही लगाना चाहिए।

: ३८ :

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता
रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं
प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। ३४।५।।

पदार्थ—(रथनाभौ अराः इव) रथ के चक्र की नाभि में जैसे अरे लगे रहते हैं, इसी प्रकार (यस्मिन्) जिस मन में (ऋचः) ऋग्वेद, (साम) सामवेद, (यजूंषि) यजुर्वेद, (प्रतिष्ठिताः) सब ओर से स्थित हैं अर्थात् चार वेदों के मन्त्र विद्वान् के मन में संस्कार रूप से स्थित रहते हैं, (यस्मिन्) जिस मन में (प्रजानाम्) सब प्राणियों के (सर्वम् चित्तम्) सब पदार्थों के ज्ञान (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान ओत-प्रोत हैं, अर्थात् पिरोये हुए हैं (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ वेद विचार और परमात्मा के ध्यानादिकों के सङ्कल्प वाला हो।

भावार्थ—हे जिज्ञासु पुरुषों ! हम सब लोगों को योग्य है कि, जिस मन के स्वस्थ और शुद्ध रहने से, सत्संग, वेद विचार और ईश्वर ध्यानादि हो सकते हैं, अशुद्ध अस्वस्थ मन से नहीं ऐसे मन की अशुद्ध भावना को हटाकर वेद विचार और ईश्वर ध्यान में लगावें, जिससे हमारा कल्याण हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु ॥ ३४।६॥

पदार्थ—(इव) जिस प्रकार (सुसारथिः) उत्तम सारथि (अश्वान्) घोड़ों को चलाता है (इव) इसी प्रकार (यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों के इन्द्रिय रूपी (वाजिनः) वेगवान् घोड़ों को (अभीशुभिः) लगामों द्वारा (नेनीयते) अनेक मार्गों पर ले जाता है, मन भी इन्द्रियों की अनेक प्रकार की प्रवृत्तिरूपी लगामों द्वारा मनुष्यों को अपने वश में करके अनेक प्रकार के शुभ-अशुभ मार्गों में ले जाता है, (हृत्प्रतिष्ठम्) जो मन हृदय में स्थित हुआ (अजिरम्) अजर बूढ़ा नहीं होता (जविष्ठम्) बड़ा वेगवान् है। (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिवसंकल्पम् अस्तु) उत्तम कल्याण कारक संकल्प वाला हो।

भावार्थ—रथ का सारथी जैसे घोड़ों को चलाता है, ऐसे ही यह मन इन्द्रियों का संचालक है। इस मन में सदा शुभ संकल्प होने चाहियें, जैसे उत्तम सारथी, घोड़ों को लगाम द्वारा अपने वश में करता हुआ अभिलषित स्थान को पहुँच जाता है। ऐसे ही मन आदि इन्द्रियों को अपने वश में करता हुआ मुमुक्षु पुरुष, मुक्ति-रूपी अभिलषित धाम को पहुँच जाता है। मन भी बड़ा ही बल-वान्, बूढ़ा न होने वाला है, इसको अपने वश में करने के लिए मुमुक्षु पुरुष को बड़ा यत्न करना चाहिये।

: ४० :

आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री

धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायतां । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२।२२॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मन्) महाशक्ति वाले ब्रह्मन् परमात्मन् ! हमारे (राष्ट्रे) देश में (ब्रह्मवर्चसी) वेद और परमेश्वर का ज्ञाता तेजस्वी सच्चा (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (आजायताम्) सब ओर हो, (शूरः) शूरवीर (इषव्यः) बाणविद्या में चतुर (अतिव्याधी) दुष्टों को अति वेग से दबा देने वाला (महारथः) महारथी (राजन्यः) राजपुत्र क्षत्रिय वर्ग (आजायताम्) हो । (दोग्ध्री धेनुः) बहुत दुग्ध देने वाली गौएं (अनड्वान् वोढा) बैल भार उठाने वाले (आशुः सप्तिः) शीघ्र चलने वाले घोड़े आदि हों । (योषा पुरन्धिः) स्त्री पति पुत्र वाली हो । (अस्य यजमानस्य) इस यजमान के राष्ट्र में (सभेयः युवा) सभा में उत्तम वक्ता जवान, और (जिष्णू) जयशील (रथेष्ठाः) रथ पर स्थित (वीरः) वीर पुरुष (जायताम्) होवे । (निकामे निकामे) अपेक्षित समय पर (नः) हमारे देश में (पर्जन्यः वर्षतु) मेघ बरसे (नः ओषधयः) हमारे अन्न आदि (फलवत्यः पच्यन्ताम्) फल वाले होकर पकें तथा (नः योग क्षेमः) जो धन आदि पहले हमें अप्राप्त हैं वह प्राप्त हों और जो प्राप्त हैं उनका संरक्षण (कल्पताम्) भली प्रकार सिद्ध हो ।

भावार्थ—परमात्मन् ! हमारे देश में ब्राह्मण उच्च कोटि के हों । हमारे देश में वीर क्षत्रिय उत्पन्न हों । गौ, घोड़े, बैल हमारे देश में उत्तम हों । समय पर वर्षा की, तथा परिपक्व अन्न की प्राप्ति की आवश्यकता को पूर्ण करते हुए आप, हमारे योग-क्षेम को भली प्रकार सिद्ध करें ।

: ४१ :

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धयः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥१६।३६॥

पदार्थ—(मा) मुझे (देवजनाः) परमेश्वर के प्यारे विद्वान् महात्मा सन्त जन जो देव कहलाने योग्य हैं पवित्र करें। (मनसा धियः) सोच विचार से किये कर्म (पुनन्तु) पवित्र करें। (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणिगण और पृथ्वी जलादि भूत (पुनन्तु) पवित्र करें। (जातवेदः) वेदों को संसार में प्रकट करने वाला अन्तर्यामी प्रभु (मा) मुझे (पुनीहि) पवित्र करे।

भावार्थ—हे पतित पावन भगवन्! आपकी कृपा से आपके प्यारे महात्मा सन्तजन, हमें उपदेश देकर पवित्र करें। हमारे विचारपूर्वक किये कर्म भी, हमें पवित्र करें। भगवन्! प्रकृति और इसके कार्य जो चर और अचर भूत हैं, ये सब आपके अधीन हैं, आपकी कृपा से हमें पवित्र होने में ये अनुकूल हों। आपने हमें सांसारिक और परमार्थिक सुख देने के लिए, चार वेद प्रकट किये हैं, आप कृपा करें कि, उन वेदों का स्वाध्याय करते हुए, हम सब आपके पुत्र अपने लोक और परलोक को सुधारें। यह तब ही हो सकता है, जब आप हमको पवित्र करें। मलिन हृदय से तो न आपकी भक्ति हो सकती है और न ही वेदों का स्वाध्याय, इसीलिए हमारी वारम्बार ऐसी प्रार्थना है कि, 'जातवेदः पुनीहि मा'।

: ४२ :

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः॥ १६।४३॥

पदार्थ—हे (सवितः) सबके जनक! (देव) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्। आप (पवित्रेण) शुद्ध आचरण और ज्ञान तथा (सवेन च) उत्तम ऐश्वर्य इन (उभाभ्याम्) दोनों से (माम्) मुझको

(विश्वतः) सब प्रकार से (पुनीहि) पवित्र करें।

भावार्थ—हे सकल सृष्टिकर्त्ता सकल सुखप्रदाता परमात्मन्! आप कृपा करके हमें अपना यथार्थ ज्ञान प्रदान करें। तथा शुद्धाचरण वाला बनाकर ऐश्वर्य भी देवें, क्योंकि शुद्ध आचरण और आपके ज्ञान के बिना सब ऐश्वर्य पुरुष को नरक में ले जाता है। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि, हमें शुद्धाचरण वाला और ब्रह्मज्ञानी बनाकर, उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हुए, पवित्र बनाएँ, जिससे हम, लोक और परलोक में सुखी हों।

: ४३ :

अग्न आयूँषि पवस आ सुवोर्जमिषञ्च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ १६।३८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप सर्वत्र व्यापक पूज्य परमात्मन्! (आयूंषि) जीवनों को (पवसे) पवित्र करके (नः ऊर्जम्) हमारे लिए बल (च) और (इषम्) अभिलषित फल अन्नादि ऐश्वर्य को (आसुव) प्रदान करें (आरे) समीप और दूर के (दुच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तों जैसे दुष्ट पुरुषों को (बाधस्व) पीड़ित और नष्ट करें।

भावार्थ—हे अन्तर्यामी कृपासिन्धो भगवन्! हम पर आप कृपा करें, हमारा जीवन पवित्र हो, आपके यथार्थ ज्ञान और आपकी प्रेम भक्ति के रंग से रंगा हुआ हो। हमारे शरीर नीरोग, मन उज्ज्वल और आत्मा उन्नत हों। हमारे आर्य भ्राता, वेदों के विद्वान्, पवित्र जीवन वाले, धार्मिक, आपके अनन्य भक्त श्रद्धा भक्तियुक्त हों। भगवन्! अपने भक्तों के विरोधी दुःखदायकों के हृदय को भी पवित्र करें, जिससे वे लोग भी, किसी की हानि न करते हुए कल्याण के भागी बन जावें।

: ४४ :

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳहवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳहुवेम ॥ ३४।३४॥

पदार्थ—(प्रातः) प्रभात वेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य युक्त प्रभु की (हवामहे) हम स्तुति प्रार्थना करते हैं। (प्रातः) (मित्रा वरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र के रचयिता परमात्मा की (प्रातः भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्ता (ब्रह्मणः पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलानेहारे और भक्तों के सर्व रोग नाशक जगदीश्वर की (हुवेम) हम लोग प्रातःकाल में स्तुति प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हे ज्ञानस्वरूप ज्ञानप्रद परमात्मन्! हे सकल ऐश्वर्य के स्वामी ऐश्वर्य के दाता प्रभो! हे परम प्यारे सूर्य, चन्द्र आदि सब जगतों के रचयिता अपने भक्तों और ब्रह्माण्ड के पालन करने वाले जगदीश! सब मनुष्यों के आप ही सेवनीय हो। आप ही सब भक्तों को शुभ कर्मों में लगाने वाले और उनके रोग शोक आदि कष्टों के दूर करने वाले और अन्तर्यामी हो। हम आपकी ही स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं अन्य की नहीं।

: ४५ :

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳहुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता। आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ ३४।३५॥

पदार्थ—(प्रातः) समय में (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य

के दाता (उग्रम्) बड़े तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य के उत्पत्तिकर्ता (यः) जो सूर्य चन्द्रादि लोकों का (विधर्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारण कर्ता (यम् चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरः चित्) दुष्टों का भी दण्डदाता (राजा) सबका प्रकाशक और स्वामी है (यम् भगम्) जिस भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूं और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको (आह) उपदेश करते हैं कि तुम, जो मैं सूर्यादि लोक लोकान्तरों का बनाने और धारण करने हारा हूं, उस मेरी उपासना किया करो और मेरी आज्ञा में रहो, इससे (वयम् हुवेम) हम लोग उसकी स्तुति करते हैं।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् ! महातेजस्विन् जगदीश ! आपकी महिमा को कौन जान सकता है ? आपने सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, मंगल, शुक्रादि लोकों को बनाया और इनमें अनन्त प्राणी बसाये हैं। उन सबको आपने ही धारण किया और उनमें बसने वाले प्राणियों के गुण कर्म स्वभावों को आप ही जानते और और उनको सुख दुःखादि देते हैं। ऐसे महासमर्थ आप प्रभु को, प्रातःकाल में हम स्मरण करते हैं। आप अपने स्मरण का प्रकार भी मन्त्रों द्वारा बता रहे हैं, यह आपकी अपार कृपा है, जिसको हम कभी भूल नहीं सकते।

: ४६ :

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥
३४।३६॥

पदार्थ—हे (भग) भजनीय प्रभो ! (प्रणेतः) सबके उत्पादक सत्कर्मों में प्रेरक (भग) ऐश्वर्य प्रद (सत्यराधः) धन के दाता (भग)

सत्याचरणी पुरुषों को ऐश्वर्यप्रद आप परमेश्वर (नः) हमें (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये, उसके दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये। हे (भग) भगवन्! (गोभिः अश्वैः) गाय घोड़े आदि उपकारक पशुओं से हमारी समृद्धि को (नः) हमारे लिए (प्रजनय) प्रकट कीजिए (भग) भगवन्! आपकी कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम पुरुषों से (नृवन्तः) वीर मनुष्य युक्त (प्र स्याम) अच्छे प्रकार होवें।

भावार्थ—हे भजनीय प्रभो! आप सारे संसार को उत्पन्न करने वाले और सदाचारी अपने सच्चे भक्तों के लिए सच्चा धन ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। जिस बुद्धि से आप हम पर प्रसन्न होवें, ऐसी बुद्धि हमें देकर हमारी रक्षा करें। सारे सुखों की जननी उत्तम बुद्धि ही है। इसलिए हम आपसे ऐसी प्रज्ञा मेधा उज्ज्वल बुद्धि की प्रार्थना करते हैं। भगवन्! गौ-घोड़े आदि हमें देकर हमारी समृद्धि को बढ़ावें और अच्छे-अच्छे विद्वान् और वीर पुरुषों से हमें संयुक्त करें, जिससे हमें किसी प्रकार का भी कष्ट न हो।

: ४७ :

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानाᳬसुमतौ स्याम॥
३४।३७॥

पदार्थ—हे भगवन्! आपकी कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से (इदानीम्) इसी समय (प्रपित्वे) पदार्थों की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम् मध्ये) इन दिनों के मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें (उत) और (मघवन्) हे परम पूजनीय असंख्य धन दाता प्रभो! (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय काल में (देवानाम्) पूर्ण विद्वानों की (सुमतौ) उत्तम बुद्धि वा सम्मति में सकल ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हम होवें।

भावार्थ—हे परम पूज्य असंख्य धन आदि पदार्थदाता प्रभो ! आप हम पर कृपा करें, कि हम आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से शीघ्र ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान होवें । भगवन् ! आपकी पूर्ण कृपा से ही पूर्ण विद्वान् महात्मा सन्त जन मिलते हैं । उनकी कृपा और सदुपदेशों से, हम अपना लोक और परलोक सुधारते हुए, सुखी रह सकते हैं । किसी उत्तम पुरुष का यह सत्य वचन है कि "बिना हरि कृपा मिले नहीं सन्ता" ।

: ४८ :

भग एव भगवानस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥
३४।३८॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वान् महापुरुषो ! (भगः) सबके भजनीय सेवनीय परमेश्वर (एव) ही (भगवान् अस्तु) हमारा सबका पूज्य इष्ट देव हो । (तेन वयम्) उस देव की कृपा से हम सब (भगवन्तः स्याम) भाग्यवान् हों । (तम् त्वा) उस आप भगवान् को, हे (भग) भगवन् ! (सर्व इत्) समस्त जन भी (जोहवीति) बार-बार स्मरण करता है । हे (भग) भगवन् ! (इह) इस जगत् में (सः नः) वह आप हमारे (पुरः एता) अग्रगामी अर्थात् सबके नायक लीडर वा नेता (भव) होवें ।

भावार्थ—हे महात्मा विद्वान् महापुरुषो ! हम सबका पूजनीय इष्ट देव, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ही होना चाहिए, न कि जड़ पदार्थ वा कोई जल, स्थल, वा जन्मता मरता कोई मनुष्य या पशु पक्षी । आप महापुरुष विद्वानों की कृपा से साधारण पुरुष भी प्रभु का भक्त बनकर भाग्यशाली बन जाता है और अनेक पुरुषों का कल्याण करता है । हे परमेश्वर ! आपका महती कृपा से, पुरुष विद्वान् और आपका सच्चा भक्त बनकर, अनेक पुरुषों को

आपका भक्त बनाकर संसार से उनका उद्धारकर्ता बन जाता है। यह सब आपकी कृपा का ही प्रताप है।

: ४९ :

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥ ११।५॥

पदार्थ—ईश्वर की उपासना का उपदेष्टा गुरु और उसका ग्रहण करने वाला शिष्य, इन दोनों के प्रति परमेश्वर का उपदेश है कि (पूर्व्यम् ब्रह्म) मैं सनातन ब्रह्म (वाम्) आप गुरु-शिष्य दोनों को (युजे) उपासना में जोड़ता हूँ, (नमोभिः) नमस्कारों से (विश्लोकः) विविध कीर्ति (एतु) प्राप्त हो, (इव) जैसे (सूरेः) विद्वान् पुरुष को (पथ्या) मार्ग प्राप्त होता है, (ये विश्वे अमृतस्य पुत्राः) जो सब आप लोग, अमर जो मैं हूं उसके पुत्र हो, (शृण्वन्तु) सुनो (दिव्यानि धामानि) दिव्य लोकों अर्थात् मोक्ष सुखों को (आ तस्थुः) [अधितिष्ठन्तु] प्राप्त होवो।

भावार्थ—परम कृपालु परमात्मा, अपने भक्तों पर कृपा करते हुए कहते हैं—हे अमृत के पुत्रो! मेरे वचन को बड़े प्रेम से सुनो। आप लोग मुझको बारम्बार नमस्कार करते और मेरा ही मन में ध्यान धरते हो, इस लोक में कीर्ति और शान्ति को प्राप्त होओ। मोक्ष के अनन्त दिव्य सुख भी, आप लोगों के लिए ही नियत हैं, उनको प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहो।

: ५० :

**अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥ १२।७९॥**

पदार्थ—(अश्वत्थे) कलतक रहेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार में (वः) आप जीव लोगों की (निषदनम्) स्थिति की (पर्णे)

पत्ते के तुल्य चंचल जीवन वाले शरीर में (वः) तुम्हारा (वसतिः) निवास (कृता) किया, (यत्) जिस (पुरुषम्) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को (किल) ही (सनवथ) सेवन करो और (गोभाजः इत्) वेदवाणी, इन्द्रिय, किरण आदि के सेवन करने वाले ही (किल असथ) निश्चय से होवो।

भावार्थ—दयामय परमात्मा अपने प्यारे पुत्रों को उपदेश देते हैं—हे पुत्रो ! आप लोग विचार कर देखो, अति चंचल नश्वर, संसार में आप लोगों की मैंने स्थिति की है, उसमें भी पत्ते के तुल्य शीघ्र गिर जाने वाले शरीर में मैंने आप लोगों का निवास कराया है। ऐसे नश्वर संसार और क्षणभंगुर शरीर में रहते हुए भी आप लोग संसार और शरीर को नित्य अविनाशी जानकर मुझ जगत्पति प्रभु को भुला देते हैं। संसार में ऐसे फँसे कि, न आपकी वेदवाणी जो मेरी प्यारी वाणी है उसमें रुचि रही और न आपकी वेदवेत्ता महात्माओं के सत्संग में ही श्रद्धा रही। इसलिए अब भी आपको मेरा उपदेश है, आप लोग सत्संग करें। वेदवाणी सुनने-पढ़ने से ही प्रेम से मेरी भक्ति करते, लोक परलोक में कल्याण के भागी बनें।

: ५१ :

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ९।१॥

पदार्थ—(देव) हे प्रकाशमय (सवितः) सब जगत् के उत्पादक सबके प्रेरक परमात्मन् ! (यज्ञम्) यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को (प्रसुव) अच्छे प्रकार चलाओ। (यज्ञपतिम्) यज्ञ के रक्षक यजमान को (भगाय) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए (प्रसुव) आगे बढ़ाओ (दिव्यः) विलक्षण अलौकिक आश्चर्यस्वरूप (गन्धर्वः) वेदविद्या के आधार

(केतपू:) बुद्धि के पवित्र करने वाले परमेश्वर (न: केतम्) हमारी बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करें (वाच: पति:) वेदविद्या और वेदवाणी के पालक स्वामी प्रभु (न: वाचम्) हमारी विद्या और वाणी को (स्वदनु) मधुर करें ।

भावार्थ—हे सदा प्रकाशस्वरूप, सब जगत् के स्रष्टा जगदीश ! आप कृपा करके यज्ञादि उत्तम कर्मों को सारे संसार में फैला दो। यज्ञ आदि कर्मों के करने वालों के ऐश्वर्य को बढ़ाओ, जिसको देख कर यज्ञ आदि कर्मों के करने की रुचि सबके मन में उत्पन्न हो। आप आश्चर्यस्वरूप अपने प्रेमी जनों की बुद्धियों को शुद्ध करने वाले हैं, कृपया हमारी बुद्धि को भी शुद्ध करें। आप वेदों के और वाणी के पालक हैं, हमारी वाणी को सत्य भाषण करने वाली और मधुर बोलने वाली बनावें ।

: ५२ :

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्य: ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳरयिं दा: ॥३।२५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश ! (त्वम् न:) आप हमारे (अन्तम:) अत्यन्त समीप स्थित हैं, (उत वरूथ्य:) और वरणीय और सेवनीय आप ही हैं। (त्राता) आप हमारे रक्षक (शिव: भव:) सुखदायक होओ (वसु:) सब में वास करने वाले (अग्नि:) सबके अग्रणीय नेता (वसुश्रवा:) धन ऐश्वर्य के स्वामी होने से महा-यशस्वी (अच्छा नक्षि) हमें भली प्रकार प्राप्त होओ (द्युमत्तमम्) हमें उज्ज्वल (रयिम् दा:) धन विभूति प्रदान करें ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप सर्वत्र व्यापक होने से सबके अति निकट हुए, सबके गुण, कर्म स्वभाव को जान रहे हो। किसी की कोई बात भी आप से छिपी नहीं। इसलिए हम पर दया करो कि हम आपको सर्वान्तिर्यामी जानकर सब दुर्गुण दुर्व्यसन और सब

प्रकार के पापों से रहित हुए आपके सच्चे प्रेमी भक्त बनें। भगवन्! आप ही भजनीय, सेवनीय, सबके नेता सब में वास करने वाले, सारी विभूति के स्वामी, अपने प्यारे पुत्रों को उत्तम से उत्तम धन के दाता और उनके कल्याण के कर्ता हों। भगवन्! हमें भी उत्तम से उत्तम धन प्रदान करें और हमें अच्छे प्रकार से प्राप्त होकर, लोक परलोक में हमारा कल्याण करें। हम आपकी ही शरण में आये हैं।

: ५३ :

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्।
अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व॥ ३।३८॥

पदार्थ—(विश्ववेदसम्) सब ज्ञान और धनों के स्वामी (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वसुवित्तमम्) सब से अधिक धन ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले (आ अगन्म) प्राप्त हों। हे (अग्ने) हमारे सब के नेता आप (सम्राट्) सब से अधिक प्रकाशमान (द्युमन्म्) धन और अन्न को (सहः) समस्त बल को (अभि अभि) सब ओर से (आयच्छस्व) हमें प्रदान करें।

भावार्थ—हे सब से अधिक ज्ञान, बल और धन के स्वामी परमात्मन्! हम आपकी शरण को प्राप्त होते हैं, आप कृपा करके सबको ज्ञान, धन और बल प्रदान करो। भगवन्! आप सच्चे सम्राट् हो, आप जैसा समर्थ, न्यायकारी, महाज्ञानी, महाबली दूसरा कौन हो सकता है। हम आप महाराजाधिराज की प्रजा हैं, हमें जो कुछ चाहिये आप से ही मांगेंगे, आप जैसा दयालु दाता न कोई हुआ, न है और न होगा। आपने अनन्त पदार्थ हमें दिये, दे रहे हो और देते रहोगे, आपके अन्न आदि और ऐश्वर्य हमारे लिये ही तो हैं, क्योंकि आप तो सदा आनन्दस्वरूप हो आपको धन की आवश्यकता ही नहीं। जितने लोक लोकान्तर आपने बनाये हैं, ये सब आपने अपने प्यारे पुत्रों के लिये ही बनाये हैं, अपने लिये नहीं।

: ५४ :

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रात॰सचेमहि ॥ ३।५५॥

पदार्थ—हे (पितरः) पालन करने वाले पूज्य महापुरुषो ! (दैव्यः जनः) देव विद्वानों में सुशिक्षित, परमात्मा का अनन्य भक्त और योगीराज महात्मा पुरुष (नः) हमें (पुनः) बार-बार (मन ददातु) ज्ञान का प्रदान करे, हम लोग (जीवम्) जीवन और (व्रातम्) उत्तम कर्मों को (सचेमहि) प्राप्त हों ।

भावार्थ—हे हमारे पूज्य पालन-पोषन करने वाले महापुरुषो ! परमात्मा की दया और आप महापुरुषों की आशीर्वाद से हमें ऐसा योगीराज वेदवेत्ता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ सन्त महात्मा, संसार के कामी क्रोधी पुरुषों से भिन्न, शान्तात्मा महापुरुष प्राप्त हो, जिसके यथार्थ उपदेशों से, हम अपने जीवन और आचरणों को सुधारते हुए, परमेश्वर के अनन्य भक्त बनकर अपने जन्म को सफल करें ।

: ५५ :

वय॰सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ३।५६॥

पदार्थ—हे (सोम) सब के प्रेरक परमात्मन् ! (वयम्) हम (तव व्रते) आपके बनाये नियम के अनुसार चल कर और (तनूषु) अपने शरीर और आत्माओं में (तव) आपके (मनः) ज्ञान को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्र पौत्रादि से युक्त हो कर (सचेमहि) सुख को प्राप्त करें ।

भावार्थ—हे सोम सत्कर्मों में प्रेरक जगदीश्वर ! आप के बनाये वैदिक नियमों के अनुसार अपना जीवन बनाकर, अपने आत्मा में आपके ज्ञान को धारण करते हुए, अपने सम्बन्धिवर्ग सहित इस लोक और परलोक में आप की कृपा से हम सदा सुखी रहें ।

: ५६ :

आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ३।५४॥

पदार्थ—(नः) हमें (पुनः) बार-बार (क्रत्वे) उत्तम विद्या और श्रेष्ठ कर्म (दक्षाय) बल के लिये (ज्योक् च) चिर काल तक (जीवसे) जीवन धारण करने के लिये और (सूर्यम्) सब चराचर के आत्मा, सब के प्रेरक सूर्य के समान ज्योतिर्मय परमेश्वर के (दृशे) ज्ञान के लिये (मनः) मनन वा ज्ञान शक्ति (आ एतु) प्राप्त हो।

भावार्थ—हे ज्ञानमय परमात्मन् ! आप की कृपा से, हम उत्तम वैदिक कर्म, वेद विद्या और उत्तम बल प्राप्ति पूर्वक, बहुत काल तक जीवन धारण करते हुए, आप ज्योतिर्मय परमात्मा के यथार्थ ज्ञान को प्राप्त हों। भगवन् ! आप के यथार्थ स्वरूप को जानकर, आप की वेद-विद्या का ही सारे संसार में प्रचार करें, ऐसी हमारी प्रार्थना को कृपा कर स्वीकार करें।

: ५७ :

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ।
तेषाᳬसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ १६।५६॥

पदार्थ—(ये) जो (भूतानाम्) प्राणिमात्र के (अधिपतयः) अधिपति पालक, रक्षक स्वामी (विशिखासः) शिखा रहित संन्यासी और (कपर्दिनः) जटाधारी ब्रह्मचारी लोग हैं, (तेषाम्) उन के हितार्थ (सहस्रयोजने) हज़ार योजन के देश में हम लोग सर्वदा भ्रमण करते हैं और (धन्वानि) अविद्यादि दोषों के निवारणार्थ विद्यादि शास्त्रों का वे लोग (अवतन्मसि) विस्तार करते हैं।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि, जो वेदों के विद्वान्, सब के शुभचिन्तक, परमात्मा के सच्चे प्रेमी, महात्मा, मुण्डित संन्यासी और ऐसे ही जटिल ब्रह्मचारी लोग हैं, उन की प्रेम पूर्वक

सेवा करें और उनसे ही वेदों के अर्थ और भाव जान कर, परमात्मा के सच्चे प्रेमी भक्त बनें। महानुभाव महात्माओं की सेवा और उनसे वेद उपदेश लेने के लिए कहीं दूर भी जाना पड़े तब भी कष्ट सहन करके उनके पास जाकर, उनकी सेवा करते हुए उपदेश धारण कर अपने जन्म को सफल करें।

: ५८ :

कया त्वं न ऊत्याऽभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर॥ ३६।७॥

पदार्थ—हे (वृषन्) सब सुख और ऐश्वर्य के वर्षक परमात्मन्! (त्वम्) आप (कया) किस अचिन्तनीय सुखदायक (ऊत्या) रक्षण आदि क्रिया से (नः) हम को (अभि प्र मन्दसे) सब ओर से आनन्दित करते और (कया) किस रीति से (स्तोतृभ्यः) आप की प्रशंसा करने वाले मनुष्यों के लिए सुख को (आभर) सब प्रकार से प्राप्त कराते हो?

भावार्थ—हे परम दयालु परमात्मन्! जिस बुद्धि और युक्ति से आप धर्मात्मा ज्ञानी पुरुषों को सुखी करते और उनकी सब ओर से रक्षा करते हैं, उस बुद्धि और युक्ति को हम को भी जताइये।

: ५९ :

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता १४।२०॥

भावार्थ—(अग्निः) यह प्रसिद्ध अग्नि (देवता) दिव्य गुण वाला (वातः) पवन (देवता) शुद्ध गुण युक्ति (सूर्यः) सूर्य (देवता) अच्छे गुणों वाला (चन्द्रमाः देवता) चन्द्रमा शुद्ध गुण युक्त

(वसवः) पृथ्वी आदि आठ वसु (देवता) दिव्य गुण वाले (रुद्राः) प्राण आदि ११ रुद्र (देवता) शुद्ध गुण वाले (आदित्याः) बारह महीने (देवता) दिव्य गुणयुक्त (मरुतः) मनन कर्त्ता विद्वान् ऋत्विग् लोग (देवता) दिव्य गुण वाले (विश्वे देवाः) अच्छे गुण वाले सब विद्वान् मनुष्य, वा दिव्य पदार्थ (देवता) देव संज्ञा वाले हैं (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्माण्ड वा वेदवाणी का रक्षक परमात्मा (देवता) सब दिव्य गुण युक्त देवों का भी देव है (इन्द्रः) बिजुली वा उत्तम घन (देवता) दिव्य गुण युक्त (वरुणः देवता) जल वा श्रेष्ठ गुणों वाला पदार्थ उत्तम है ।

भावार्थ—इस संसार में जो अच्छे गुणों वाले पदार्थ हैं, वे दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं, और जो सब देवों का देव होने से महादेव, सब का धारक, रचक और रक्षक, सबकी व्यवस्था और प्रलय करने हारा सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है, उस सबके अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें, उसी की ही सबको प्रेम से उपासना करनी चाहिए ।

: ६० :

चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां २ आविवेश ॥ १७।९१॥

पदार्थ—(चत्वारि श्रृङ्गा) चार दिशाएँ सींगवत् (त्रयः अस्य) तीन इसके (पादः) चरण हैं तीन काल अथवा तीन भुवन चरण के समान हैं । (द्वे शीर्षे) पृथ्वी और द्युलोक दोनों शिर हैं । (अस्य सप्त हस्तासः) महत्, अहंकार और पांच भूत ये सात इस भगवान् के हाथ हैं । (त्रिधा बद्धः) सत् चित् आनन्द इन तीन स्वरूपों में बद्ध है, वह (वृषभः) सब सुखों की वर्षा करने

वाला और सारे जगत् को उठाने वाला (रोरवीति) वेद ज्ञान का उपदेश कर रहा है, वह (महः देवः) महादेव (मर्त्यान्. आववेश) मरण धर्मा मनुष्यों और विनश्वर सब पदार्थों में भी व्यापक है।

भावार्थ—इस मन्त्र में अलङ्कार से परमात्मा का कथन है। जैसे कोई ऐसा बैल हो जिसके चार सींग, तीन पांव, दो सिर, सात हाथ, तीन प्रकार से बंधा हुआ बार बार बोलता हो, ऐसे बैल की उपमा से प्रभु के स्वरूप का निरूपण किया है। चार दिशाएँ सींगवत्. तीन काल वा तीन भुवन पादवत्, पृथिवी और द्युलोक दोनों शिरवत्, महतत्त्व अहङ्कार, पांच भूत ये सात प्रभु के हाथवत् हैं, सत्, चित्, आनन्द (इन तीन) स्वरूप से विराजमान, सब सुखों की वर्षा करने वाला, वेद ज्ञान का सदा उपदेश कर रहा है। वह महादेव, मरणधर्मा मनुष्यों और सब नश्वर पदार्थों में व्यापक है, ऐसे प्रभु को जानना चाहिये।

: ६१ :

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १४।१७॥

पदार्थ—हे दयामय जगदीश्वर ! (मे आयुः पाहि) मेरे आयु की रक्षा करो। (मे प्राणम् पाहि) मेरे प्राण की रक्षा करो। (मे व्यानम् पाहि) मेरे व्यान की रक्षा करो। (मे चक्षुः पाहि) मेरे नेत्रों की रक्षा करो। (मे श्रोत्रम् पाहि) मेरे कानों की रक्षा करो। (मे वाचम् पिन्व) मेरी वाणी को अच्छी शिक्षा से युक्त करो। (मे मनः जिन्व) मेरे मन को प्रसन्न करो। (मे आत्मानम् पाहि) मेरे चेतन आत्मा की और मेरे इस भौतिक देह की रक्षा करो। (मे ज्योतिः यच्छ) मुझे आत्मा की और अपनी यथार्थ ज्ञानरूपी ज्योतिः प्रदान करें।

भावार्थ—परमात्मन् ! आप कृपा करके हमारे आयुः, प्राण, अपान, व्यान, नेत्र, श्रोत्र, वाणी, मन, देह और इस चेतन जीवात्मा की रक्षा करते हुए मुझे यथार्थ ब्रह्मज्ञान प्रदान करें, जिससे हम आपके दिये मनुष्य जन्म को सफल कर सकें। भगवन् ! आयुः, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, वाणी, मन आदि की रचा और इन की नीरोगता के विना, हमारा जीवन ही दुःखमय हो जायगा, इसलिए आप से इनकी रक्षा और प्रसन्नता की भी हम प्रार्थना करते हैं कृपा करके इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करें।

: ६२ :

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳसर्वतःस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।। ३१।१।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पुरुषः) पूर्ण परमेश्वर (सहस्रशीर्षा) जिसमें हमारे सब प्राणियों के सहस्र अर्थात् अनन्त शिर (सहस्राक्षः) जिसमें हजारों नेत्र (सहस्रपात्) हजारों पग हैं (सः भूमिम्) वह समग्र भूमि को (सर्वतः) सब प्रकार से (स्पृत्वा) व्याप्त होके (दश अंगुलम्) पांच स्थूल भूत, पाँच सूक्ष्म भूत यह दश जिसके अवयव है ऐसे सब जगत् को (अति अतिष्ठत) उलांघ कर स्थित होता है अर्थात् सब से पृथक् भी स्थित होता है।

भावार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! जिस पूर्ण परमात्मा में, हम मनुष्य आदि सब प्राणियों के, अनन्त शिर, नेत्र, पग आदि अवयव हैं, जो पृथिवी आदि से उपलक्षित पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर, जहां जगत् नहीं वहां भी पूर्ण हो रहा है। उस जगत् कर्ता परिपूर्ण जगत्पति परमात्मा, चेतनदेव की उपासना करनी चाहिए। किसी जड़ पदार्थ को परमेश्वर मानना और उस जड़ पदार्थ को ही भोग लगाना, उसी को प्रणाम करना, पंखा व चामर फेरना महामूर्खता है। परमेश्वर ने ही सब जगत् के पदार्थों को बनाया, ईश्वर रचित उन

पदार्थों में ईश्वरबुद्धि करके, उनको भोग लगाना नमस्कारादि करना, महामूर्खता नहीं तो और क्या है ?

: ६३ :

पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ३१.२॥

पदार्थ—(पुरुषः एव) सब जगत् में पूर्ण व्यापक ईश्वर ही (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (यत् च) और जो (भाव्यम्) भविष्य में उत्पन्न होगा और है (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से (अति रोहति) अत्यन्त बढ़ता है, (इदम् सर्वम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप समस्त जगत् का और (अमृतत्वस्य) अविनाशी मोक्ष सुख वा कारण का भी (ईशानः) स्वामी परमात्मा है, वही सब कुछ रचता है ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जब २ इस जगत् की रचना हुई तब २ उस समर्थ प्रभु ने ही इस जगत् को रचा, वही सदा इसका पालन-पोषण और धारण करता रहा, अब कर रहा है, आगे भविष्य में भी इसकी रचना पालन-पोषण धारण करना आदि काम करता रहेगा । और मुक्ति सुख भी उसी जगन्नियन्ता परमात्मा के अधीन है । वही प्रभु, अपने प्यारे, अपने जीवन को पवित्र वेदानुसार पवित्र बनाने वाले ज्ञानी भक्तों को मुक्ति देकर सदा सुखी रखता है ।

: ६४ :

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३१।३॥

पदार्थ—(एतावान्) तीन काल में होने वाला जितना संसार है, यह सब (अस्य) इस जगदीश ही की (महिमा) सामर्थ्य का स्वरूप है (च) और (पूरुषः) सारे जगत् में पूर्ण परमेश्वर (अतः)

इस जगत् से (ज्यायान्) बहुत ही बड़ा है (विश्वा भूतानि) प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त सब भूत (अस्य पादः) इस भगवान् का एक पाद है इस एक अंश रूप पाद में सारा संसार वर्त्तमान है और (त्रिपाद्) तीन अंशों वाला (अस्य) इस परमेश्वर का स्वरूप (दिवि) प्रकाशस्वरूप अपने आप में (अमृतम्) नित्य अविनाशी रूप से वर्तमान है।

भावार्थ—यह भूत भौतिक सब संसार इस जगत्पति की महिमा है। उस प्रभु ने ही सारे जगत् को अपनी शक्ति से रचा और वही इसका पालन पोषण कर रहा है। इस जगत् से वह बहुत ही बड़ा है, सारे चराचर जगत् के सब भूत इस प्रभु के एक अंश में पड़े हैं। उस जगदीश के तीन पाद स्व स्वरूप में वर्तमान हैं। वही अविनाशी प्रकाशस्वरूप और सदा मुक्तस्वरूप है। कभी बन्धन में नहीं आता, और अपने भक्तों के सकल बन्धनों को काट कर उनको मुक्ति प्रदान करता है।

: ६५ :

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ३१।४॥

पदार्थ—पूर्व उक्त (त्रिपात् पुरुषः) तीन अंशों वाला पुरुष (ऊर्ध्वः) सबसे उत्तम संसार से पृथक् सदा मुक्त स्वरूप (उत् ऐत्) उदय को प्राप्त हो रहा है। (अस्य) इस पुरुष का (पादः) एक भाग (इह) इस जगत् में (पुनः) बारंबार उत्पत्ति प्रलय के चक्र में (अभवत्) प्राप्त होता है। (ततः) इसके अनन्तर (साशनानशने अभि) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों प्रकार के चराचर लोकों के प्रति (विष्वङ्) सब प्रकार से व्याप्त होकर (वि अक्रामत्) विशेष कर उनको उत्पन्न करता है।

भावार्थ—परमात्मा कार्य जगत् से पृथक्, तीन अंशों से प्रकाशित हुआ, एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को बार-बार

उत्पन्न करता है, पश्चात् उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है। इन मन्त्रों में परमात्मा के जो चार पाद वर्णन किये हैं, यह एक उपदेश करने का ढंग है। उस निराकार प्रभु के वास्तव में न कोई हस्त है न पाव। पुनः इस कथन का कि, वही प्रभु एक अंश से जगत् को उत्पन्न करता है, तीन अंशों में पृथक् रहता है, भाव यह है कि सारे जगत् से प्रभु बहुत बड़ा है, जगत् बहुत ही अल्प है। अनन्त ब्रह्माण्डों को रचता हुआ भी इन से पृथक् है और बहुत बड़ा है।

: ६६ :

ततो विरडाजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ ३१५॥

पदार्थ—(ततः) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (विराट्) सूर्य चन्द्रादि विविध लोकों से प्रकाशवान ब्रह्माण्ड रूप संसार (अजायत) उत्पन्न हुआ। (विराजः अधि) विराट् संसार के भी ऊपर अधिष्ठाता (पूरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा होता है, (अथो) इसके अनन्तर (सः) वह पुरुष (पुरः) सब से प्रथम विद्यमान रह कर (जातः) इस जगत् में प्रसिद्ध हुआ (अति अरिच्यत) जगत् से अतिरिक्त होता है। (पश्चात् भूमिम्) पीछे पृथिवी और शरीरों को उत्पन्न करता है।

भावार्थ—परमात्मा से ही सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है। वह प्रभु उस जगत् से पृथक्, उसमें व्याप्त होकर भी, उसके दोषों से लिप्त न होके इस सब का अधिष्ठाता है। ऐसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सदा आनन्द स्वरूप जगदीश की ही उपासना करनी चाहिए।

: ६७ :

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥ ३१६॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) सर्वपूज्य (सर्वहुतः) सब को नेत्र, श्रोत्र, वाक्, हस्त, पाद, प्राणादि सब कुछ देने वाले परमेश्वर से (पृषद् ग्राज्यम्) दधि, दुग्ध घृत ग्रादि भोग्य पदार्थ (सम्भृतम्) उत्पन्न हुए। (ये) जो (ग्रारण्याः) वन के सिंह शूकर ग्रादि (च) ग्रौर (ग्राम्याः) ग्राम में होने वाले गाय भैंस ग्रादि हैं (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के समान वेग ग्रादि गुणों वाले सब (पशून्) पशुग्रों को (चक्रे) उत्पन्न करता है।

भावार्थ—सब के पूजने योग्य ग्रौर नेत्र, श्रोत्र, प्राणादि ग्रमूल्य ग्रनन्त पदार्थों के दाता परमात्मा ने, दधि, दुग्ध, घृत ग्रादि भोज्य पदार्थ हमारे लिए उत्पन्न किए हैं। उसी जगत्पति ने वन में रहने वाले, सिंह, शूकर, शृगाल, मृगादि भगने वाले, पशु बनाए ग्रौर उसी, प्रभु ने नगरों में रहने वाले, गौ, घोड़ा, ऊँट, भैंस, बकरी, भेड़ ग्रादि उपकारी पशु बनाये, जो सदा हमारी सेवा कर रहे हैं। दयामय प्रभो! ग्रापको, जो पुरुष, स्मरण नहीं करते, ग्रापकी वैदिक ग्राज्ञा को न मानकर, संसार के भोगों में फँसे रहते हैं, ऐसे कृतघ्न दुष्ट पापियों को जितने भी दुःख हों थोड़े हैं।

: ६८ :

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ३१ ७॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस पूर्ण ग्रौर (यज्ञात्) ग्रत्यन्त पूजनीय (सर्वहुतः) जिसके ग्रर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते हैं, उसी परमात्मा से (ऋचः) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता (तस्मात्) उस परमात्मा से (छन्दांसि)ग्रथर्व-वेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता (तस्मात्) उस प्रभु से ही (यजुः) यजुर्वेद (ग्रजायत) उत्पन्न होता है।

भावार्थ—उस परम कृपालु जगत्पिता ने, हमारे इस लोक ग्रौर परलोक के ग्रनन्त सुखों की प्राप्ति के लिए चार वेद बनाये,

उन वेदों को पढ़ सुन के हम, लोक परलोक के सब सुखों को प्राप्त हो सकते हैं। परमात्मा के ज्ञान और उपासना के बिना मुक्ति सुख नहीं प्राप्त हो सकता और उसका ज्ञान और उपासना बिना वेदों के पढ़े सुने नहीं हो सकता। महर्षि लोगों का वचन है "नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्" वेदों को न जानने वाला कोई पुरुष भी उस व्यापक प्रभु को नहीं जान सकता। ऐसे लोक परलोक के सुख की प्राप्ति के लिए, हम सबको वेदों का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना आवश्यक है। विना वेदों के न कोई ईश्वर का ज्ञानी हो सकता है न ही भक्त। जिसका ज्ञान नहीं हुआ उसकी भक्ति कैसे ?

: ६९ :

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ३१।८॥

पदार्थ—(अश्वाः) घोड़े (ये के च) और जो कोई गधा, ऊँट आदि (उभयादतः) दोनों ओर दांतों वाले हैं (तस्मात अजायन्त) उस परमेश्वर से उत्पन्न हुए (तस्मात्) उसी ईश्वर से (गावः) गौएं भी (ह) निश्चय करके (जज्ञिरे) उत्पन्न हुई (तस्मात्) उससे (अजाऽवयः) बकरी, भेड़ (जाताः) उत्पन्न हुईं हैं।

भावार्थ—उस जगत् रचयिता परमात्मा ने अपनी शक्ति से घोड़े, गधे, ऊँट आदि नीचे ऊपर दोनों ओर दांतों वाले पशु उत्पन्न किये, एक ओर दांतों वाले बैल, भैंस आदि प्राणी उत्पन्न किये। उसी प्रभु ने बकरी भेड़ आदि प्राणी उत्पन्न किये हैं। इस वेद मन्त्र में जो घोड़ा, गाय, बकरी और भेड़ इतने थोड़े प्राणियों का वर्णन है, वह संसार के लाखों प्राणियों का उपलक्षण है, अर्थात् वह सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ता प्रभु, अपनी अचिन्त्य शक्ति से लाखों प्रकार के प्राणियों के शरीरों को सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न और प्रलय काल में सबका संहार भी करता है।

: ७० :

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ३१।९॥

पदार्थ—(ये देवाः) जो विद्वान् (च) और (साध्याः) योगाभ्यासादि साधन करते हुए (ऋषयः) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले ज्ञानी लोग हैं, जिस (अग्रतः) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं, वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से (तम् अयजन्त) उसी का पूजन करते हैं।

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को, चराचर संसार के कर्ता-धर्ता जगदीश्वर का, शम, दम, विवेक, वैराग्य, धारणा, ध्यान आदि साधनों से पवित्र हृदय रूप मन्दिर में, सदा पूजन करना चाहिए। बाहिर के पूजने के ढंग, जो बहिर्मुखता के कारण हैं, उनसे सदा विद्वान् पुरुषों को आप बचकर, अज्ञानी पुरुषों को बचाना चाहिए। जो विद्वान् कहलाकर आप बाहिर के पाखण्ड और दम्भ में फँसे और दूसरों को उन्हीं में फँसाते हैं, वे विद्वान् ही नहीं महामूर्ख और स्वार्थी हैं। ऐसे दम्भी, कपटी पुरुषों से परे रहने में ही कल्याण है।

: ७१ :

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ३१।१०॥

पदार्थ—(यत्) जिस (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को विद्वान् पुरुष (वि अदधुः) विविध प्रकारों से धारण करते हैं उसकी (कतिधा) कितने प्रकार से (वि अकल्पयन्) कल्पना करते हैं। (अस्य मुखम् किम्) इस ईश्वर की सृष्टि में मुख के समान श्रेष्ठ कौन (आसीत्)

है (बाहू किम्) भुजबल का धारण करने वाला कौन (ऊरू) जंघें (किम्) कौन हैं (पादौ) पांव के समान (किम्) कौन (उच्येते) कहा जाता है।

भावार्थ—इस जगत् में ईश्वर का सामर्थ्य असंख्य है, उस समुदाय में उत्तम अंग मुख अर्थात् मुख्य गुणों से इस संसार में क्या उत्पन्न हुआ है? बाहूबल, वीर्य्य, शूरता और युद्ध-विद्या आदि गुणों से कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ है? व्यापार, कृषि आदि मध्यम गुणों से किसकी उत्पत्ति हुई है? मूर्खता आदि नीच गुणों से किसकी उत्पत्ति हुई है? इन चार प्रश्नों के उत्तर आगे के मन्त्र में दिए हैं।

: ७२ :

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँशूद्रो अजायत ॥३१।११॥

पदार्थ—(अस्य) इस प्रभु की सृष्टि में (ब्राह्मणः) वेदवेत्ता ईश्वर का ज्ञाता वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है। (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (राजन्यः) क्षत्रिय (कृतः) बनाया (यत्) जो (ऊरू) जांघों के तुल्य वेगादि काम करने वाला (तद्) वह (अस्य) इसका (वैश्यः) सर्वत्र प्रवेश करने हारा वैश्य है। (पद्भ्याम्) सेवा के योग्य और अभिमान रहित होने से (शूद्रः) मूर्खतादि गुण युक्त शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ।

भावार्थ—जो मनुष्य वेदविद्या और शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम, ब्रह्म के ज्ञाता हों वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्यों को सिद्ध करने हारे हों वे क्षत्रिय, जो व्यवहार विद्या में प्रवीण हों वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण, विद्या हीन, पगों के समान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त हैं, वे शूद्र मानने चाहियें। ऐसी वर्णव्यवस्था गुण कर्म अनुसार ही वेद कथित है। जन्म से न कोई ब्राह्मण है, न ही कोई क्षत्रियादि। सब वेदा-

नुयायी मनुष्यों को चाहिए कि ऐसी व्यवस्था के अनुसार आप चलें और औरों को चलावें।

: ७३ :

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।। ३१।१२।।

पदार्थ—(चन्द्रमाः) चन्द्र (मनसः जातः) मनरूप से कल्पना किया गया है। जैसे हमारे शरीर में मन है, ऐसे ही विराट् शरीर में चन्द्र है। (सूर्यः चक्षोः अजायत) चक्षु से सूर्य को प्रकट किया, मानो उसका नेत्र सूर्य है, (श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च) श्रोत से वायु और प्राण प्रकट किए गए, मानो श्रोत्र वायु और प्राण हैं। (मुखात्) मुख से (अग्निः अजायत) अग्नि को प्रकट किया, मानो अग्नि विराट् का मुख है।

भावार्थ—सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने प्रकृति रूप उपादान कारण से, इस ब्रह्माण्ड रूप विराट् शरीर को उत्पन्न किया। उसमें चन्द्रलोक मन स्थानी जानना चाहिए। सूर्यलोक नेत्ररूप, वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य, अग्नि मुख के तुल्य, ओषधि और बनस्पतियां रोमों के तुल्य नदियां नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हाड़ों के तुल्य हैं, ऐसा जानना चाहिए।

: ७४ :

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्योः समवर्त्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ अकल्पयन् ।। ३१।१३।।

पदार्थ—(नाभ्याः) नाभि भाग से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ। (द्यौः) प्रकाश युक्त लोक (शीर्ष्णः) सिर भाग से (सम् अवर्तत) कल्पित हुआ (पद्भ्याम् भूमिः) पांव से पृथिवी, (दिशः श्रोत्रात्) श्रोत्र से दिशाएँ (तथा लोकान्) ऐसे ही सब लोकों को (अकल्पयन्) कल्पित किया गया है। अर्थात् उस

विराट् की अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्युलोक है, भूमि पैर हैं, कान दिशा तथा लोक हैं।

भावार्थ—इस संसार में जो २ कार्यरूप पदार्थ हैं, वे सब, विराट् का ही अवयव रूप जानना चाहिए। ऐसे विराट् को भी जब परमात्मा ने बनाया तब यह सिद्ध हो गया कि, सारी भूमि और द्युलोकादि सब लोक, उनमें रहने वाले सब प्राणी, उस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने ही बनाये हैं। ये सब लोक न तो आप ही उत्पन्न हुए न इनका कोई और ही रचक है क्योंकि प्रकृति आप जड़ है, जड़ से अपने आप कुछ उत्पन्न हो नहीं सकता। जीव अल्पज्ञ परतन्त्र और बहुत ही थोड़ी शक्तिवाला है। सूर्य, चन्द्र आदि लोक लोकान्तरों का जीव द्वारा बनना असंभव है।

: ७५ :

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ ३१।१४॥

पदार्थ—(यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य वा जानने योग्य (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञम्) उपासना रूप ज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) सम्पादन करते हैं, तब (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्तः) वर्ष के आरम्भ काल वसन्त ऋतु के समान, सौम्यभाग दिन का पूर्वाह्न काल ही (आज्यम्) घृत (ग्रीष्मः) ऋतु मध्याह्न काल (इध्मः) ईंधन प्रकाशक और (शरत्) शरद् ऋतु रात्रि (हविः) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है।

भावार्थ—जब वाह्य सामग्री के अभाव में संन्यासी विद्वान् महात्मा लोग, संसार कर्ता ईश्वर की उपासना रूप मानस ज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें, तब पूर्वाह्नादि काल ही साधनरूप से कल्पना करने चाहिएँ।

: ७६ :

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ।। ३१।१५।।

पदार्थ—(यत्) जिस (यज्ञम्) मानस ज्ञान यज्ञ को (तन्वानः) विस्तृत करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (पशुम्) जानने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को हृदय में (अबध्नन्) ध्यानयोग रूप रस्सी से बाँधते हैं (अस्य) इस यज्ञ के (सप्त) सात (परिधयः) परिधि अर्थात् धारण सामर्थ्य (आसन्) हैं, (त्रिःसप्त) इक्कीस २१ (समिधः) सामग्री रूप (कृताः) विधान किये गये हैं ।

भावार्थ—विद्वान् लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानस यज्ञ को करते हुए, उससे पूर्ण परमेश्वर को जान कर कृतार्थ होते हैं । इस यज्ञ की इक्कीस समिधा रूप सामग्री ऐसी हैं—मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञान इन्द्रिय और सत्त्व, रजस्, तमस्, यह तीन गुण २१ समिधा हैं । गायत्री आदि सात छन्द परिधि हैं, अर्थात् चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान हैं ।

: ७७ :

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।
३१।१६।।

पदार्थ—जो (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञेन) ज्ञान यज्ञ से (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा की (अयजन्त) भक्ति से पूजा करते हैं (तानि) वह पूजादि (धर्माणि) धारणा रूप धर्म (प्रथमानि) अनादि रूप से मुख्य (आसन्) हैं, (ते) वे विद्वान् (महिमानः) महत्त्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख में (पूर्वे) इस समय से पूर्व हुए (साध्याः) साधनों को किये हुए (देवाः) प्रकाशमान विद्वान् (सन्ति) हैं उस (नाकम्)

सब दुखों से रहित मुक्ति सुख को (ह) ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि विवेक वैराग, शम दमादि साधनों से युक्त हो कर उस दयामय परमात्मा की उपासना करें। इस संसार में अनादि काल से, इस भक्ति उपासना रूप धर्म से जैसे पहले मुक्त हुए विद्वान्, सदा आनन्द को प्राप्त हो रहे हैं, ऐसे ही हम सब लोग भी, उस जगत्पति जगदीश की श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से उपासना करके, सब दुखों से रहित सदा आनन्द धाम मुक्ति को प्राप्त होवें।

: ७८ :

अदभ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥
३१।१७॥

पदार्थ—(अद्भ्यः) जलों से और (पृथिव्यै) पृथिवी से (विश्व-कर्मणः) समस्त संसार के कर्ता जगत्पति के (रसात्) प्रेरक बल से (संभृतः) सम्यक् पुष्ट हुआ (अग्रे) सब से प्रथम जो ब्रह्माण्ड (सम् अवर्त्तत) उत्पन्न हुआ (त्वष्टा) वह विधाता ही (तस्य) उसके (रूपम्) रूप को (विदधत्) विधान करता हुआ (अग्रे) आदि में (मर्त्यस्य) मनुष्य के (आजानम्) अच्छे प्रकार कर्तव्य कर्म और (देवत्वम्) विद्वत्ता को (एति) प्राप्त होता और मनुष्यों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सम्पूर्ण संसार का जनक जो परमात्मा, प्रकृति और उसके कार्य सूक्ष्म तथा स्थूल भूतों से, सब जगत् को और उसके शरीरों के रूपों को बनाता है उस ईश्वर का ज्ञान और उसकी वैदिक आज्ञा का पालन ही देवत्व है।

: ७९ :

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।३१।१८।

पदार्थ— जिज्ञासु पुरुष को विद्वान् कहता है कि हे जिज्ञासो! (अहम्) मैं जिस (एतम्) पूर्वोक्त (महान्तम्) बड़े २ गुणों से युक्त (आदित्यवर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (तमसः) अज्ञान, अन्धकार से (परस्तात्) पृथक् वर्तमान (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हूं (तम् एव) उसी को (विदित्वा) जान कर आप (मृत्युम्) दुःखप्रद मरण को (अति एति) उल्लंघन कर जाते हो किन्तु (अन्यः) इससे भिन्न (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिए (न विद्यते) विद्यमान नहीं है।

भावार्थ—मुमुक्षु पुरुष को कोई महानुभाव विद्वान् उपदेश करता है कि मुमुक्षो! मैं उस परमात्मा को जानता हूं। जो सर्वज्ञतादि गुणयुक्त-सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप, अज्ञान अन्धकार से परे वर्तमान, सर्वत्र पूर्ण है। इसी को जानकर बारंबार जन्म मरण से रहित हुआ मुक्तिधाम को प्राप्त होकर, सदा आनन्द में रहता है। इस प्रभु के ज्ञान और भक्ति के विना, मुक्तिधाम के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं हैं। इसलिये बहिर्मुखता के हेतु घण्टे घड़ियाल बजाना, अवैदिक चिह्न तिलक छाप आदि लगाना, कान फाड़कर उनमें मुद्रा धारण करना कराना, सब व्यर्थ और वेद विरुद्ध हैं। यह सब स्वार्थी, नास्तिक, वेदविरोधियों के चलाये हुए हैं। इन पाखण्डों से मुक्ति की आशा करनी भी महामूर्खता है।

: ८० :

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

३१।१९॥

पदार्थ—(अजायमानः) जो उत्पन्न न होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा पालक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सब के हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से

(विजायते) विशेष प्रकट होता है (तस्य योनिम्) उस प्रजापति के स्वरूप को (धीराः) ध्यानशील महापुरुष (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा भुवनानि) सब लोक-लोकान्तर (तस्थुः) स्थित हैं।

भावार्थ—सर्वपालक परमेश्वर, आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट होके सर्वत्र विचरता है अर्थात् सर्वत्र विराजमान है। उस जगदीश्वर के स्वरूप को विवेकी महात्मा लोग ही जानते हैं। उस सर्वाधार परमात्मा के आश्रित ही सब लोक स्थित हो रहे हैं। ऐसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता, अन्तर्यामी प्रभु को जानकर ही हम सुखी हो सकते हैं।

: ८१ :

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥ ३१।२०

पदार्थ—(यः) जो (देवेभ्यः) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि भूतों के उत्पन्न करने के लिये आप परमेश्वर (आतपति) सब प्रकार से विचार करता है और (यः) जो (देवानाम्) पञ्चभूत और सब लोकों से भी (पुरः हितः) सब से पूर्व विद्यमान रहा और (यः) जो (देवेभ्यः) प्रकाश और तेजोमय सूर्यादिकों से भी (पूर्वः) प्रथम (जातः) विद्यमान था (रुचाय) स्वप्रकाशस्वरूप (ब्राह्मये) परमात्मा को (नमः) हमारा वारम्बार प्रेम से नमस्कार है।

भावार्थ—जो जगत्पिता परमात्मा भूत भौतिक संसार की उत्पत्ति से प्रथम, विचार रूपी तप करता है। जैसे घटका निमित्त कारण कुलाल घट की उत्पत्ति से प्रथम जिस प्रकार का घट बनाना हो वैसा ही विचार करके घटको बनाता है, ऐसे ही ईश्वर विचार कर (उसका नियम ही विचार है) संसार को उत्पन्न करता है। संसार के देव सूर्य, चन्द्र, बिजुली आदिकों से वह प्रभु पूर्व ही

विद्यमान था। ऐसे वेद निरूपित प्रकाश और तेजोमय जगदीश को, बहुत नम्रतापूर्वक हम सब प्रेम भक्ति से बारम्बार प्रणाम करते हैं।

: ८२ :

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ।। ३१।२१।।

पदार्थ—(देवाः) विद्वान् पुरुष (रुचम्) रुचिकारक (ब्राह्मम्) ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान को (जनयन्तः) उपदेश द्वारा उत्पन्न करते हुए (अग्रे) प्रथम (तत्) उस ब्रह्म को ही (त्वा) तुम्हें (अब्रुवन्) कथन करें, (यः ब्राह्मणः) जो वेद वेत्ता ब्रह्मज्ञानी (एवम्) ऐसे (विद्यात्) ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करता है (तस्य) उसके (वशे) अधीन समस्त (देवाः) इन्द्रियगण (असन्) रहते हैं।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञान ही हम सब को आनन्द देने वाला और मनुष्य की रुचि और प्रीति बढ़ाने वाला है। उस ब्रह्मज्ञान को विद्वान् लोग, अन्य मनुष्यों को उपदेश करके, उनको आनन्दित कर देते हैं, जो मनुष्य इस प्रकार से ब्रह्म को जानता है, उसी ज्ञानी पुरुष के मन आदि सब इन्द्रिय वश में हो जाते हैं।

: ८३ :

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ।। ३१।२२।।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (ते) आप की (श्रीः) समग्र शोभा (च) और (लक्ष्मीः) सब ऐश्वर्य (च) भी (पत्न्यौ) दोनों स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान (अहोरात्रे) दिन रात (पार्श्वे) पार्श्व (नक्षत्राणि रूपम्) सारे नक्षत्र आप से ही प्रकाशित होने से आपके ही रूप हैं, (अश्विनौ) आकाश और पृथिवी (व्यात्तम्) मानो खुले मुख के

समान हैं, आप ही (इष्णन्) इच्छा करते हुए (मे) मेरे लिये (असुम्) उस मुक्ति सुख को (इषाण) प्राप्त करावें और (मे) मेरे लिए (सर्व लोकम् इषाण) सब के दर्शन और सब लोकों के सुखों को पहुंचावें ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! संसार भर की सर्व शोभारूपी श्री और संसार भर की सब विभूति धन ऐश्वर्य रूपी लक्ष्मी, ये दोनों आप की स्त्रियां हैं । जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति के अधीन रहती है, ऐसे ही सब शोभा और सब प्रकार की विभूति आपकी आज्ञा में सर्वदा वर्त्तमान हैं । दिन-रात (पार्श्वे) पासे और सब नक्षत्र आप के रूप के तुल्य हैं । द्युलोक और पृथिवी खुले मुख के तुल्य हैं, अर्थात् समस्त जगत् आपके अधीन है आपकी आज्ञा से बाहिर कुछ भी नहीं है, ऐसे महासमर्थ जगत्पति आप पिता से ही हमारी प्रार्थना है कि हमें शोभा और विभूति प्रदान करें और सब लोकों के सुख प्राप्त करावें । सर्वदुःख निवृत्ति पूर्वक, परमात्म प्राप्ति रूपी मुक्ति भी हमें कृपा कर प्रदान करें ।

: ८४ :

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।। ४०।१।।

पदार्थ—(जगत्याम्) इस सृष्टि में (यत् किंच) जो कुछ भी (जगत्) चर अचर संसार है (इदम् सर्वम्) यह सब (ईशा) सर्वशक्तिमान् नियन्ता परमेश्वर से (वास्यम्) व्याप्त है । (तेन त्यक्तेन) उन त्याग किये हुए अथवा (तेन) उस परमेश्वर से (त्यक्तेन) दिये हुए पदार्थ से (भुञ्जीथाः) भोग अनुभव कर । (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन की (मा गृधः) इच्छा मत कर ।

भावार्थ—मनुष्यमात्र को चाहिए कि, सर्वत्र व्यापक परमात्मा को जानकर, अन्याय से किसी के धनादि पदार्थ की कभी

इच्छा भी न करे। जो कुछ वस्तु परमेश्वर ने दे दी है उससे ही अपने शरीर की रक्षा करे। जो धर्मात्मा पुरुष, परमेश्वर को सर्वत्र व्यापक सर्वान्तर्यामी जानकर कभी पाप नहीं करते और सदा प्रभु के ध्यान और स्मरण में अपने समय को लगाते हैं, वे महापुरुष, इस लोक में सुखी और परलोक में मुक्ति सुख को प्राप्त करके सदा आनन्द में रहते हैं।

: ८५ :

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥४०।२॥

पदार्थ—(इह) इस जगत् में मनुष्य (कर्माणि) वैदिक कर्मों को (कुर्वन् एव) करता हुआ ही (शतम् समाः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे। हे मनुष्य! (एवम्) इस प्रकार (त्वयि नरे) कर्म करने वाले तुझ पुरुष में (कर्म न लिप्यते) अवैदिक कर्म का लेप नहीं होता (इतः अन्यथा) इससे किसी दूसरे प्रकार से (न अस्ति) कर्म का लेप लगे विना नहीं रहता।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वैदिक कर्म, सन्ध्या, प्रार्थना, उपासना, वेदों का स्वाध्याय, महात्मा सन्त जनों का सत्संगादि सदा करता हुआ, सौ वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा करे। ब्रह्मचर्यादि साधन ही पुरुष की आयु को बढ़ाने वाले हैं। व्यभिचारी, दुराचारी ब्रह्मचारी नहीं बन सकता इसलिए दुराचाररूप पाप कर्म त्यागकर, ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक वैदिक कर्म करता हुआ पुरुष, चिरंजीव बनने की इच्छा करे। पुरुष कुछ कर्म किये विना नहीं रह सकता, अच्छे कर्म न करेगा तो बुरे कर्म ही करेगा। इसलिए वेद ने कहा है, पुरुष अच्छे कर्म करे, तब पाप कर्मों से पुरुष का लेप कभी नहीं होगा। पाप कर्मों से छूटने का और कोई उपाय नहीं है।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥४०।३॥

पदार्थ—(ते लोकाः) वे मनुष्य (असुर्याः) केवल अपने प्राणों के पुष्ट करने वाले पापी असुर कहाने योग्य हैं जो (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) अज्ञान से (आवृताः) सब ओर से ढके हुए हैं (ये के च) और जो कोई (नाम) प्रसिद्ध (जनाः) मनुष्य (आत्महनः) आत्म हत्यारे हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरकर (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुष्ट देहरूपी लोकों को ही (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—वे ही मनुष्य, असुर दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि हैं, जो आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही हैं। ऐसे लोग कभी अज्ञान से पार होकर परमानन्द रूप मुक्ति को नहीं प्राप्त हो सकते। ऐसे पापी पुरुष अपने आत्मा के हनन करने हारे वेद में आत्म हत्यारे कहे गए हैं। दूसरे वे भी आत्म हत्यारे हैं, जो पिता की न्याईं सबके पालन-पोषण करने हारे, समस्त संसार के कर्ता-धर्ता सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को नहीं मानते न उसकी भक्ति करते. न ही उसकी वैदिक आज्ञा के अनुसार अपना जीवन बनाते हैं, केवल विषय भोगों में फँसकर, सारा जीवन उन भोगों की प्राप्ति के लिए लगा देना पामरपन नहीं तो और क्या है ? ईश्वर को न मानना ही सब पापों से बड़ा पाप है। ऐसे महापापी नास्तिक पुरुषों की सदा दुर्गति होती है। ऐसी दुर्गति देनेहारी नास्तिकतारूपी राक्षसी से सबको बचना और बचाना चाहिए।

: ८७ :

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४०।४॥

पदार्थ—(अनेजत्) कांपने वाला नहीं अचल, अपनी अवस्था से कभी चलायमान नहीं होता। (एकम्) अद्वितीय (मनसः जवीयः) मन से भी अधिक वेग वाला ब्रह्म है। (पूर्वम्) सबसे प्रथम, सबसे आगे (अर्षत्) गति करते हुए अर्थात् जहां कोई चल-कर जावे वहां व्यापक होने से पूर्व ही विद्यमान है, (एनम्) इस ब्रह्म को (देवाः) बाह्य नेत्र आदि इन्द्रिय (न आप्नुवन्) नहीं प्राप्त होते। (तद्) वह ब्रह्म (तिष्ठत्) अपने स्वरूप में स्थित (धावतः) विषयों की ओर गिरते हुए (अन्यान्) आत्मा से भिन्न मन वाणी आदि इन्द्रियों को (अति एति) लांघ जाता है अर्थात् उनकी पहुँच से परे रहता है। (तस्मिन्) उस व्यापक ईश्वर में (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में गतिशील वायु और जीव भी (अपः) कर्म वा क्रिया को (दधाति) धारण करता है।

भावार्थ—परमात्मा व्यापक है, मन जहां-जहां जाता है वहां-वहां प्रथम से ही परमात्म देव स्थिर वर्त्तमान हैं। प्रभु का ज्ञान शुद्ध एकाग्र मन से होता है, नेत्र आदि इन्द्रियों और अज्ञानी विषयी लोगों से वह देखने योग्य नहीं वह जगत्पिता आप निश्चल हुआ, सब जीवों को और वायु सूर्य चन्द्र आदिकों को नियम से चलाता और धारण करता है। ऐसे मन नेत्रादिकों के अविषय ब्रह्म को कोई महानुभाव महात्मा बाह्य भोगों से उपराम ही जान सकता है। विषयों में लम्पट दुराचारी शराबी कबाबी कभी नहीं जान सकता।

: ८८ :

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥४०।५॥

पदार्थ—(तद् एजति) वह ब्रह्म मूर्खों की दृष्टि से चलायमान होता है। (तत्) वह ब्रह्म (न एजति) अपने स्वरूप से कभी चलाय-मान नहीं होता अथवा (तत् एजति) वह ब्रह्म एजयति-समग्र

ब्रह्माण्ड को चला रहा है, आप चलायमान नहीं होता। (तत् दूरे) वह अज्ञानी मूर्ख दुराचारी पुरुषों से दूर है, (तत् उ अन्तिके) वह ही ब्रह्म विद्वान् सदाचारी महापुरुषों के समीप है, (तत्) वह (अस्य सर्वस्य) इस समस्त ब्रह्माण्ड और सब जीवों के (अन्तः) भीतर (तत् उ) वह ही ब्रह्म (अस्य सर्वस्य) इस जगत् के और सब जीवों के (बाह्यतः) बाहिर भी वर्त्तमान है, क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

भावार्थ—वह परमात्मा अज्ञानी मूर्खों की दृष्टि से चलता है, वास्तव में वह सब जगत् को चला रहा है, आप कूटस्थ निर्विकार अटल होने से कभी स्व स्वरूप से चलायमान नहीं होता। जो अज्ञानी पुरुष, परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध हैं, वे इधर-उधर भटकते हुए भी उसको नहीं जानते। जो विवेकी पुरुष ईश्वर की वैदिक आज्ञा के अनुसार अपने जीवन को बनाते, सदा वेदों का और वेदानुकूल उपनिषदादिकों का विचार करते, उत्तम महात्माओं का सत्संग और उनकी प्रेमपूर्वक सेवा करते हैं, वे अपने आत्मा में अति समीप ब्रह्म को प्राप्त होकर, सदा आनन्द में रहते हैं। परमात्मदेव को सब जगत् के अन्दर बाहिर व्यापक सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी जानकर कभी कोई पाप न करते हुए, उस प्रभु के ध्यान से अपने जन्म को सफल करना चाहिए।

: ८९ :

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ ४०।६॥

पदार्थ—(यस्तु) जो भी विद्वान् (सर्वाणि भूतानि) सब चर अचर पदार्थों को (आत्मन् एव) परमात्मा के ही आश्रित (अनु पश्यति) वेदों के स्वाध्याय, महात्माओं के सत्संग धर्माचरण और योगाभ्यास आदि साधनों से साक्षात् कर लेता है और (सर्वभूतेषु च) सब प्रकृति आदि पदार्थों में (आत्मानम्) परमात्मा को व्यापक

जानता है (ततः) तब वह (न विचिकित्सति) संशय को नहीं प्राप्त होता।

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष, सब प्राणी अप्राणी जगत् को परमात्मा के आश्रित देखता है और सब प्रकृति आदि पदार्थों में परमात्मा को जानता है। ऐसे विद्वान् महापुरुषों के हृदय में कोई संशय नहीं रहता।

इस मन्त्र का दूसरा अर्थ ऐसा होता है कि जो, विद्वान् पुरुष सब प्राणियों को अपने आत्मा में और अपने आत्मा को सब प्राणियों में देखता है वह किसी से घृणा वा किसी की निन्दा नहीं करता, अर्थात् वह सबका हितेच्छु शुभचिन्तक बन जाता है।

: ६० :

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ४०।७॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस ब्रह्म ज्ञान के प्राप्त होने से (सर्वाणि भूतानि) सब जीव प्राणी (आत्मा एव अभूत्) अपने आत्मा के तुल्य ही हो जाते हैं, समस्त जीव अपने समान दीखने लगते हैं तब (एकत्वम् अनु पश्यतः) परमात्मा में एकता अद्वितीय भाव को ध्यान योग से साक्षात् जानने वाले महापुरुष के (कः मोहः) मूढ़ता कहां और (कः शोकः) कौन सा शोक वा क्लेश रह सकता है अर्थात् उस महापुरुष से शोक मोहादि नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—जो विद्वान् संन्यासी महात्मा लोग, परमात्मा के पुत्र प्राणिमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जानते हैं, अर्थात् जैसे अपना हित चाहते हैं, वैसे ही अन्यों में भी वर्तते हैं। एक अद्वितीय परमात्मा की शरण को प्राप्त होते हैं, उनको शोक मोह लोभादि कदाचित् प्राप्त नहीं होते। और जो लोग, अपने आत्मा को यथार्थ जानकर परमात्म परायण हो जाते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं, ईश्वर से विमुख को कभी सुख की प्राप्ति नहीं होती।

: ९१ :

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ४०।८॥

पदार्थ – (सः) वह परमात्मा (परि अगात्) सब ओर से व्याप्त है (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) शरीर-रहित (अव्रणम्) फोड़ा फुंसी और घाव से (अस्नाविरम्) नाड़ी नस के बन्धन से रहित, (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित, सदा पवित्र (अपापविद्धम्) पापों से सदा मुक्त (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) सबके मनों का प्रेरक (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला (स्वयम्भूः) माता पिता से जन्म न लेने वाला अपनी सत्ता में सदा विद्यमान अनादि स्वरूप है वह (याथातथ्यतः) यथार्थ रूप से ठीक ठीक (शाश्वतीभ्यः) सनातन से चली आई (समाभ्यः) प्रजाओं के लिए (अर्थात्) समस्त पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर रचता और उनका ज्ञान प्रदान करता है ।

भावार्थ—जो परमात्मा, अनन्तशक्ति युक्त अजन्मा, निराकार, सदा मुक्त, न्यायकारी, निर्मल, सर्वज्ञ, सबका साक्षी, नियन्ता, अनादिस्वरूप, सृष्टि के आदि में ब्रह्मर्षियों द्वारा वेद विद्या का उपदेश न करता तो, कोई विद्वान् न हो सकता । ऐसे अजन्मा निराकार जगत्पति का जन्म मानना और उसका आकार बताना घोर मूर्खता और वेद विरुद्ध नास्तिकता नहीं तो और क्या है ? परमात्मा कृपा करके ऐसी नास्तिकता से जगत् को बचावे, ऐसी प्रार्थना है ।

: ९२ :

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः ॥४०।९॥

पदार्थ—(ये) जो (असम्भूतिम्) सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनों गुणों वाली अव्यक्त प्रकृति की (उपासते) उपास्य ईश्वर भाव से उपासना करते हैं, वे (अन्धम् तमः) आवरण करने वाले अन्धकार को (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं। (ये उ) और जो (सम्भूत्याम्) सृष्टि में (रताः) रमण करते हैं, उसी में फंसे हैं, (ते) वे (उ) निश्चय से (ततः) उससे भी (भूय इव) अधिक गहरे (तमः) अज्ञानरूप अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य, समस्त जगत् के प्रकृति रूप जड़ कारण को उपास्य ईश्वर भाव से स्वीकार करते हैं। वे अविद्या में पड़े हुए क्लेशों को ही प्राप्त होते हैं, और जो कार्य जड़ जगत् को उपास्य इष्टदेव ईश्वर जानकर, उस जड़ पदार्थ की उपासना करते हैं, वे गाढ़ अविद्या में फँस कर, सदा अधिकतर क्लेशों को प्राप्त होते हैं। इसलिये सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को ही, अपना पूज्य इष्टदेव जानकर, उसी की ही सदा उपासना करनी चाहिये, किसी जड़ पदार्थ की नहीं।

अथवा—(असम्भूतिम्) इस देह को छोड़कर पुनः अन्य देह में आत्मा प्रकट नहीं होता, ऐसा मानने वाले गाढ़ अन्धकार में पड़े हैं और जो (सम्भूतिम्) आत्मा ही कर्मानुसार जन्मता और मरता है, ईश्वर कुछ नहीं है, जो ऐसा मानने वाले हैं, वे नास्तिक उनसे भी अधिक घोर अन्धकार में पड़े हैं।

: ९३ :

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ ४०।१०॥

पदार्थ—(सम्भवात्) उत्पत्ति वाले कार्य जगत् से (अन्यत एव) भिन्न ही फल (आहुः) कहते हैं, (असम्भवात्) कारण प्रकृति के ज्ञान से (अन्यत आहुः) अन्य ही फल कहते हैं (ये) जो विद्वान्

पुरुष (नः) हमें (तत्) इस तत्व को (विचचक्षिरे) व्याख्यान पूर्वक कहते हैं उन (धीराणाम्) बुद्धिमान् पुरुषों से (इति शुश्रुम) इस प्रकार के वचन को हम सुनते हैं।

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग, कार्य कारण रूप वस्तु से भिन्न भिन्न उपकार लेते और लिवाते हैं और उन कार्य कारण के गुणों को आप जानते और दूसरे लोगों को भी बताते हैं, ऐसे ही हम सबको निश्चय करना चाहिये।

: ९४ :

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ४०।११॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (सम्भूतिम्) कार्य जगत् (च) और (विनाशम्) जिसमें पदार्थ नष्ट होकर लीन होते हैं, ऐसे कारण रूप असम्भूति (च) इनके गुण कर्म स्वभावों को (सह) एक साथ (उभयम्) दोनों (तत्) उन कार्य कारण स्वरूपों को (वेद) जानता है (विनाशेन) सबके अदृश्य होने के परम कारण को जान कर (मृत्युम्) देह छोड़ने से होने वाले भय को (तीर्त्वा) पार करके उसको सर्वथा त्यागकर (सम्भूत्या) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्त्व को जानकर (अमृतम्) अविनाशी मोक्ष सुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है।

भावार्थ—कार्य कारण रूप वस्तु निरर्थक नहीं है, किन्तु कार्य कारण के गुण कर्म स्वभावों को जानकर, धर्म आदि मोक्ष के साधनों में संयुक्त करके, अपने शरीरादि के कार्य कारण को जानकर, मरण का भय छोड़कर, मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिये। जिस कारण से यह शरीर उत्पन्न हुआ है, उसमें ही कभी न कभी अवश्य लीन होगा। जिसकी उत्पत्ति हुई है उसका नाश भी अवश्य होगा, ऐसे निश्चय से निर्भय होकर, मुक्ति के साधनों में यत्नशील होना चाहिये।

: ६५ :

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया॑ रताः ॥ ४०।१२॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (अविद्याम्) नित्य पवित्र सुख रूप आत्मा से भिन्न अपने और स्त्री आदिकों के शरीर आदिकों को नित्य पवित्र सुख और आत्मा रूप जानते और (उपासते) इन शरीरादिकों के अंजन-मंजन में सारे समय को लगा देते हैं वे (अन्धन्तमः) गाढ़ अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं, महा-ज्ञानी मूर्ख हैं और (ये उ) जो भी (विद्यायाम् रताः) विद्या अर्थात् केवल शास्त्रों के अक्षरों के पठन पाठनादि में लगे रहते हैं, वे (ततः भूयः इव) उससे भी अधिक (तमः) अज्ञानान्धकार में प्रवेश कर रहे हैं, उनसे भी अधिक अज्ञानी और मूर्ख हैं ।

भावार्थ—जो अज्ञानी संसारी लोग, आत्मा और परमात्मा के ज्ञान से हानि, केवल अनित्य अपवित्र दुःख अनात्म रूप, अपने और स्त्री आदि के शरीरों को नित्य पवित्र सुख और आत्मरूप जानकर इनके ही पालन पोषण अंजन-मंजन में सदा लगे रहते हैं, न वेदों का स्वाध्याय करते न ही विद्वानों का सत्संग करते हैं, ऐसे विषयों में लम्पट अविद्यारूप अन्धकार में पड़े अपने दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ खो रहे हैं। जो शास्त्र वा अन्य अनेक प्रकार की विद्या तो पढ़े हैं, परन्तु प्रभु का ज्ञान और उसकी प्रेम भक्ति से शून्य हैं। न वेदों को पढ़ते सुनते अनात्मविद्या के अभ्या-सी हैं, वे उन मूर्खों से भी गए गुजरे हैं । मूर्ख तो रस्ते पड़ सकते हैं, परन्तु वे अभिमानी लोग नहीं पड़ सकते ।

: ६६ :

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥४०।१६॥

पदार्थ—(विद्यायाः) विद्या के फल और कार्य (अन्यत् एव आहुः) भिन्न ही कहते हैं और (अविद्यायाः अन्यत् आहुः) अविद्या का फल अन्य कहते हैं (ये नः तद् विचचक्षिरे) जो हम को विद्या और अविद्या के स्वरूप का व्याख्यान करके कहते हैं। इस प्रकार उन (धीराणाम्) आत्मज्ञानी विद्वानों से (तत्) उस वचन को, हम लोग (इति शुश्रुम) (इस तत्व का) श्रवण करते हैं।

भावार्थ—अनादि गुणयुक्त चेतन से जो उपयोग होने योग्य है, वह अज्ञान युक्त जड़ से कदापि नहीं और जो जड़ से प्रयोजन सिद्ध होता है, वह चेतन से नहीं। सब मनुष्यों को विद्वानों के संग, योग, विज्ञान और धर्माचरण से इन दोनों का विवेक करके दोनों से उपयोग लेना चाहिये।

: ६७ :

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ ४०।१४॥

पदार्थ—(विद्याम् च अविद्याम् च) विद्या और अविद्या को इन साधनों सहित (यः) जो विद्वान् (तत् उभयम् वेद) इन दोनों के स्वरूप को जान लेता है वह (अविद्यया) अविद्या से (मृत्युम् तीर्त्वा) मृत्यु को उलांघ कर (विद्यया) ज्ञान से (अमृतम्) मुक्ति को (अश्नुते) प्राप्त होता है।

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष, विद्या-अविद्या के यथार्थरूप को जान लेते हैं, वे महापुरुष, जड़ शरीरादिकों और चेतन आत्मा को परमार्थ के कामों में लगाते हुए, मृत्यु आदि सब दुःखों से छूट कर सदा सुख को प्राप्त होते हैं। यदि जड़ प्रकृति आदि और शरीरादि कार्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति कैसे करे और जीव, कर्म उपासना और ज्ञान के संपादन करने में कैसे समर्थ हों? इससे यह सिद्ध हुआ कि, न केवल जड़, न

केवल चेतन से और न केवल कर्म से और न केवल ज्ञान से, कोई धर्मादि की सिद्धि करने में समर्थ होता है।

: ९८ :

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳस्मर ॥ ४०।१५॥

पदार्थ—हे (क्रतो) कर्म कर्ता जीव! शरीर छूटते समय तू (ओ३म्) इस मुख्य नाम वाले परमेश्वर का (स्मर) स्मरण कर। (क्लिबे) सामर्थ्य के लिये परमात्मा का (स्मर) स्मरण कर। (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर। (वायुः) यह प्राण अपानादि वायु (अनिलम्) कारण रूप वायु जो (अमृतम्) अविनाशी सूत्रात्मारूप है उस को प्राप्त हो जायगा। (अथ) इस के अनन्तर (इदम् शरीरम्) यह स्थूल शरीर (भस्मान्तम्) अन्त में भस्मीभूत हो जायगा।

भावार्थ—शरीर को त्यागते समय पुरुषों को चाहिये कि, परमात्मा के अनेक नामों में सब से श्रेष्ठ जो परमात्मा को प्यारा ओ३म् नाम है, उसका वाणी से जाप और मन से उस के अर्थ सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर का चिन्तन करें। यदि आप, अपने जीवन में उस सबसे श्रेष्ठ परमात्मा के ओ३म् नाम का जाप और मन से उस परम प्यारे प्रभु का ध्यान करते रहोगे तो, आपको मरण समय में भी उसका जाप और ध्यान बन सकेगा। इस-लिए हम सब को चाहिये कि ओ३म् का जाप और उसके अर्थ परमात्मा का सदा चिन्तन किया करें, तब ही हमारा कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

: ९९ :

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥
४०।१६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप सर्वव्यापक करुणामय परमात्मन् ! हे (देव) दिव्य गुण युक्त प्रभो ! आप (विश्वानि वयुनानि) हमारे सब कर्म और सब भावों को (विद्वान्) जानने वाले हो, इसलिए (अस्मान्) हम सबको (राये) सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नय) ले चलो। (अस्मान्) हम सब से (जुहुराणम्) कुटिलता रूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) दूर करो (ते) आप के लिए हम सब (भूयिष्ठाम्) बहुत ही (नमः उक्तिम् विधेम) नमस्कार कहते हैं।

भावार्थ—हे सर्वान्तर्यामी जगदीश ! आप हमारे सब के ज्ञान और कर्मों को जानते हो, आप से कुछ भी छिपा नहीं। हमारे कुसंस्कार और कुटिलता रूपी पाप को, दूर करो। इस लोक और परलोक में सुख प्राप्ति के लिए हमें उत्तम मार्ग से ले चलो, हम आप को बहुत ही नम्रता पूर्वक बारम्बार प्रणाम और आपकी ही स्तुति करते हैं।

: १०० :

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ४०॥१७॥

पदार्थ—(सत्यस्य) सत्यस्वरूप परमात्मा वा ज्ञान रूप मोक्ष का (मुखम्) द्वार (हिरण्मयेन) सुवर्णादि (पात्रेण) दरिद्रता रूपी दुःख से रक्षक धन सम्पत्ति से (अपिहितम्) ढका हुआ है (यः असौ) जो यह (आदित्ये) प्रलय में सब को संहार करने वाला जो ईश्वर, उसमें जो (पुरुषः) जीव है (सः असौ अहम्) सो यह मैं हूं। (ओ३म् खम् ब्रह्म) सब से उत्तम नाम परमेश्वर का ओ३म् है, वह (खम्) आकाश के सदृश व्यापक और (ब्रह्म) सब से बड़ा है।

भावार्थ—जो पुरुष धन को प्राप्त हो कर धन को शुभ कामों

में लगाते हैं, पाप कर्मों में कभी नहीं लगाते वे पुरुष धन्यवाद के योग्य हैं। प्रायः सुवर्णादि धन से प्रमादी लोग, पाप करके मोक्ष मार्ग को प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिये मन्त्र में कहा है कि सुवर्णादि धन से मुक्ति का द्वार ढका हुआ है, इसीलिये उपनिषद् में कहा है—"तत्त्वं पूषन् अपावृणु" हे सब के पालन पोषण कर्त्ता प्रभो ! उस विघ्न को दूर कर ताकि मैं मुक्ति का पात्र बन सकूं। 'ओ३म्' यह परमात्मा का सब से उत्तम नाम है। इस नाम की उत्तमता वेद, उपनिषद्, दर्शन और गीता आदि स्मृतियों में वर्णन की गई है। इसमें वेदों को मानने वालों को कभी सन्देह नहीं हो सकता। उसको (खम्) आकाश की न्याईं व्यापक और सबसे बड़ा होने से ब्रह्म वेद ने कहा है।

सामवेद शतक

सामवेद के चुने हुए ईश्वर भक्ति के
१०० मंत्रों का संग्रह

—अर्थ और भावार्थ सहित—

—स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

"जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का ही प्रमाण है, अन्य का नहीं और जैसे सूर्य प्रकाश स्वरूप है, पर्वत से लेके त्रसरेणु पर्यन्त पदार्थों का प्रकाश करता है, वैसे वेद भी स्वयम् प्रकाश हैं और सत्य विद्याओं का भी प्रकाश कर रहे हैं।"

(ऋ० भा० भू०)

—महर्षि दयानन्द

: १ :

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ पू० १।१।१।१॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे स्वप्रकाश सर्वव्यापक सब के नेता परम-पूज्य परमात्मन् ! (बर्हिषि) आप हमारे ज्ञानयज्ञरूप ध्यान में (आयाहि) प्राप्त होओ। (गृणानः) आप स्तुति किये हुए हैं। (होता) आप ही दाता हैं (वीतये) हमारे हृदय में प्रकाश करने के लिये तथा (हव्यदातये) भक्ति, प्रार्थना, उपासना का फल देने के लिये (नि सत्सि) बिराजो।

भावार्थ—परम कृपालु परमात्मा, वेद द्वारा हम अधिकारियों को प्रार्थना करने का प्रकार बताते हैं। हे जगत्पितः ! आप प्रकाशस्वरूप हैं, हमारे हृदय में ज्ञान का प्रकाश कीजिये। आप यज्ञ में विराजते हो, हमारे ज्ञानयज्ञरूप ध्यान में प्राप्त होओ। आपकी वेद और वेददृष्टा ऋषि लोग स्तुति करते हैं हमारी स्तुति को भी कृपा करके श्रवण कर हम पर प्रसन्न होओ। आप ही सब को सब पदार्थ और सुखों के देने वाले हो।

: २ :

त्वमग्ने यज्ञानाꣳहोता विश्वेषाꣳहितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ पू० १।१।१।२॥

शब्दार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप (विश्वेषां यज्ञानाम्) ब्रह्मयज्ञादि सब यज्ञों के (होता) ग्रहण करने वाले स्वामी हैं। आप (देवेभिः) विद्वान् भक्तों से (मानुषे जने) मनुष्यवर्ग में (हितः) धारण किये जाते हैं।

भावार्थ—आप जगत्पिता सब यज्ञों के ग्रहण करने वाले, यज्ञों के स्वामी हैं, अर्थात् श्रद्धा से किये यज्ञ होम, तप, ब्रह्मचर्य, वेद-पठन, सत्यभाषण, ईश्वर भक्ति आदि उत्तम-उत्तम काम आप को

प्यारे हैं। मनुष्य-जन्म में ही यह उत्तम कर्म किये जा सकते हैं और इन श्रेष्ठ कर्मों द्वारा, इस मनुष्य जन्म में आप परमात्मा का यथार्थ ज्ञान भी हो सकता है। पशु-पक्षी आदि अन्य योनियों में तो आहार, निद्रा, भय रागद्वेषादि ही वर्तमान हैं, न इन योनियों में यज्ञादि उत्तम काम वन सकते हैं और न आप का ज्ञान ही हो सकता है।

: ३ :

अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ पू० १।१।१।३

शब्दार्थ—(विश्ववेदसम्) सब को जानने वाले ज्ञानस्वरूप ज्ञान के दाता (होतारम्) व्यापकता से सब के ग्रहण करने वाले (दूतम्) कर्मों का फल पहुंचाने वाले (अस्य यज्ञस्य) इस ज्ञान यज्ञ के (सुक्रतुम) सुधारने वाले (अग्नि वृणीमहे) ऐसे ज्ञानस्वरूप परमात्मा को हम सेवक जन स्वीकार करते हैं।

भावार्थ—आप ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ही वेदों द्वारा सब के ज्ञान प्रदाता हैं। सबके कर्मों के यथायोग्य फल दाता भी आप हैं, सब जगह व्यापक होने से, सब ब्रह्माण्डों को आप ही धारण कर रहे हैं। आप ही हमारी भक्ति उपासना के श्रेष्ठ फल देने वाले हैं, आप इतने वड़े अनन्त श्रेष्ठ गुणों के धाम और पतित पावन परमदयालु सर्बशक्तिमान् हैं, तो हमें भी योग्य है कि, सारी मायिक प्रवृत्तियों से उपराम हो, आप की ही शरण में आवें, आप को ही अपना इष्ट देव परम पूजनीय समझ निशि-दिन आप के ध्यान और आप की आज्ञा पालन में तत्पर रहें।

: ४ :

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ पू० १।१।१।४॥

शब्दार्थ—(विपन्यया) स्तुति से (द्रविणस्युः) अपने प्यारे उपासकों के लिये आत्मिक बल रूप धन का चाहने वाला (समिद्धः) विज्ञात हुआ (शुक्रः) ज्ञान और बल वाला तथा ज्ञान और बल का दाता (आहुतः) अच्छे प्रकार से भक्ति किया हुआ (अग्निः) ज्ञानस्वरूप ईश्वर (वृत्राणि) अविद्यादि अन्धकार दुःखों और दुःख साधनों को (जङ्घनत्) हनन करे।

भावार्थ—हे जगत्पते ! आपकी प्रेम से स्तुति प्रार्थना उपासना करने वालों को आप आत्मिक बल देते हैं, जिससे आपके प्यारे उपासक भक्त, अविद्यादि पञ्च क्लेश और सब प्रकार के दुःख और दुःख साधनों को दूर करते हुए, सदा आपके ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं। कृपासिन्धो भगवन् ! हम पर ऐसी कृपा करो कि, हम भी आपके ध्यान में मग्न हुए, अविद्यादि सब क्लेशों और उनके कार्य दुःखों और दुःख साधनों को दूर कर, आप के स्वरूप-भूत ब्रह्मानन्द को प्राप्त होवें।

: ५ :

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैर मित्रमर्दय ॥ पू० १।१।२।१॥

शब्दार्थ—हे अग्ने ! (ते नमः) आप को हमारा नमस्कार है। (कृष्टयः) आपके प्यारे भक्त मनुष्य (ओजसे गृणन्ति) बल प्राप्ति के लिये आपकी स्तुति करते हैं। (देव) हे प्रकाश-स्वरूप और सब के प्रकाश करने वाले सुखदाता प्रभो ! (अमैः) रोग भयादिकों से (अमित्रम्) पापी शत्रु को (अर्दय) पीड़ित कीजिये।

भावार्थ—हे ज्ञानस्वरूप सर्व सुखदायक देव ! आपकी स्तुति प्रार्थना उपासना हम सदा करें, जिससे हमें आत्मिक बल मिले और ज्ञान का प्रकाश हो। जो लोग आप से विमुख होकर आप की भक्ति और वेदों की आज्ञा से विरुद्ध चलते, नास्तिक बन

संसार की हानि करते हैं, उन पतितों तथा संसार के शत्रुओं को ही बाह्य शत्रु और आभ्यन्तर शत्रु काम, क्रोध, रोग, शोक, भयादि सदा पीड़ित करते रहते हैं।

: ६ :

अग्निमिन्धानो मनसा धियꣳसचेत मर्त्यः।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ पू० १।१।२।६॥

शब्दार्थ—(मर्त्यः) मनुष्य (मनसा) सच्चे मन से श्रद्धापूर्वक (अग्निम् इन्धानः) प्रभु का ध्यान करता हुआ (धियम्) बुद्धि को (सचेत) अच्छे प्रकार प्राप्त हो इसलिये (विवस्वभिः) सूर्य की किरणों के साथ (अग्निम् इन्धे) प्रकाशस्वरूप प्रभु को हृदय में विराजमान करे।

भावार्थ—मनुष्य का नाम मर्त्य अर्थात् मरण धर्मा है। यदि यह मृत्यु से बचना चाहे तो जगत्पिता की उपासना करे।

सबको योग्य है कि दो घण्टा रात्रि रहते उठ कर प्रभु का ध्यान करें। प्रातःकाल सूर्य के निकले कभी सोवें नहीं। प्रभु की भक्ति करें तो लोगों को दिखलाने के लिये दम्भ से नहीं, किन्तु श्रद्धा और प्रेम से ध्यान करते-करते परमात्मा के ज्ञान द्वारा मोक्ष को प्राप्त होकर मृत्यु से तर जावें।

: ७ :

अग्ने मृड महाँ अस्यय आ देवयुं जनम्।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १।१।३।३॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे पूजनीय ईश्वर! हमें (मृड) सुखी करो (महान् असि) आप महान् हो (देवयुं जनम्) ज्ञान यज्ञ से आप देव की पूजा चाहने वाले भक्त को (अयः) प्राप्त होते हो, (बर्हिः) यज्ञ स्थल में (आसदम्) विराजने को (आ इयेथ) प्राप्त होते हो।

भावार्थ—हे परम पूजनीय परमात्मन्! आप श्रद्धा भक्ति

युक्त पुरुषों को सदा सुखी रखते और प्राप्त होते हो। श्रद्धा भक्ति और सत्कर्म हीन नास्तिक और दुराचारियों को तो न आपकी प्राप्ति हो सकती है, न वे सुखी हो सकते हैं। इसलिये हम सब को योग्य है कि, आपकी वेदाज्ञा के अनुसार यज्ञ, होम, तप, स्वाध्याय और श्रद्धा, भक्ति, नम्रता और प्रेम से आपकी उपासना में लग जावें जिस से हमारा कल्याण हो।

: ८ :

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपाँ रेताँ सि जिन्वति ॥ १।१।३।७॥

शब्दार्थ—(अयम् अग्निः) यह प्रकाशमान जगदीश्वर (मूर्द्धा) सर्वोत्तम है (दिवः ककुत्) प्रकाश की टाट है। जैसे बैल की टाट (कोहान सा) ऊँची होती हैं ऐसे ही परमेश्वर का प्रकाश अन्य सब प्रकाशों से श्रेष्ठ है (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी आदि सब लोकों का पालक है। (अपाम्) कर्मों के (रेतांसि) बीजों को (जिन्वति) जानता है।

भावार्थ—आप परमपिताजी सबसे ऊँचे, सबसे श्रेष्ठ प्रकाश-स्वरूप, सबके कर्मों के साक्षी और फल प्रदाता हैं। ऐसे आप जगत्पिता प्रभु को सदा अति समीपवर्ती जान, हम सबको पापों से रहित होना, सदाचार और आपकी भक्ति में सदा तत्पर रहना चाहिये।

: ९ :

तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अंगिरः।
स पावक श्रुधी हवम् ॥ १।१।३।९॥

शब्दार्थ—हे अग्ने ! (तम् त्वा) उस आपको (गोपवनः) वाणी की शुद्धि चाहने वाला और आपकी स्तुति से जिसकी वाणी शुद्ध हो गई है ऐसा भक्त पुरुष (गिरा) अपनी वाणी से (जनिष्ठत्)

आपकी स्तुति करता हुआ आपको ही प्रकट कर रहा है। (अंगिरः) हे ज्ञाननिधे ! (पावक) पवित्र करने वाले ! (स हवम् श्रुधी) ऐसे आप हमारी स्तुति प्रार्थना को सुनकर अंगीकार करो।

भावार्थ—मनुष्य की वाणी, संसार के अनेक पदार्थों के वर्णन और कठोर, कटु, मिथ्या भाषणादिकों से अपवित्र हो जाती है। परमात्मा पतित पावन हैं, जो पुरुष उनके ओंकारादि सर्वोत्तम पवित्र नामों का वाणी से उच्चारण और मन से चिन्तन करते हैं, वे अपनी वाणी और मन को पवित्र करते हुए आप पवित्र होकर, दूसरे सत्संगियों को भी पवित्र करते हैं। धन्य हैं ऐसे सत्पुरुष जो आप भक्त बनकर दूसरों को भी भक्त बनाते हैं, वास्तव में उनका ही जन्म सफल है।

: १० :

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १।१।३।१०॥

शब्दार्थ—(वाजपतिः) अन्नपति, (कविः) सर्वज्ञ (अग्निः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दाशुषे) दानी के लिये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य (रत्नानि) विद्या, मोती, हीरे स्वर्णादि धनों को (दधत्) देता हुआ (परि अक्रमीत्) सर्वत्र व्याप रहा है।

भावार्थ—हे सर्वसुखदातः ! आप दानशील हैं, इसलिये दानशील उदार भक्त पुरुष ही आपको प्यारे हैं। विद्यादाता को विद्या, अन्नदाता को अन्न, धनदाता को धन, आप देते हैं। इसलिये विद्वानों को योग्य है, कि आप की प्रसन्नता के लिये, विद्यार्थियों को विद्या का दान बड़े प्रेम से करें, धनी पुरुषों को भी योग्य है कि योग्य सुपात्रों के प्रति धन, वस्त्रादिकों का दान उत्साह, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से करें। आपके स्वभाव के अनुसार चलने वाले सत्पुरुषों को आप सब सुख देते हैं। इसलिये हम

सबको आपके स्वभाव और आज्ञा के अनुकूल चलना चाहिये, तब ही हम सुखी होंगे अन्यथा कदापि नहीं ।

: ११ :

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम् ।। १।१।१।३।१२।।

शब्दार्थ—(कविम्) सर्वज्ञ (सत्यधर्माणम्) सत्यधर्मी अर्थात् जिनके नियम सदा अटल हैं (देवम्) सदा प्रकाशस्वरूप और सब सुखों के देने वाले (अमीवचातनम्) रोगों के विनाश करने वाले (अग्निम्) तेजोमय परमात्मा की (अध्वरे) ब्रह्मयज्ञादि में (उप-स्तुहि) उपासना और स्तुति कर ।

भावार्थ—हे प्रभो ! जिस आप जगत्पति के नियम से बँधे हुए, पृथिवी, सूर्य्य, चन्द्र, मंगल, शुक्र, शनि, बृहस्पति आदि ग्रह, उपग्रह अपने-अपने नियम में स्थित होकर अपनी-अपनी गति से सदा घूम रहे हैं । आप जगन्नियन्ता के नियम को तोड़ने का किसी का भी सामर्थ्य नहीं । ऐसे अटल नियम वाले सर्वज्ञ, सर्वशक्ति-मान्, स्वप्रकाश, सुखदायक, रोग शोक विनाशक, आप परमात्मा की, मुमुक्षु, पुरुष श्रद्धा भक्ति से प्रेम में मग्न होकर प्रार्थना और उपासना सदा किया करें, जिससे उनका कल्याण हो ।

: १२ :

कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
गोषाता यस्य ते गिरः ।। १।१।३।१४।।

शब्दार्थ—(सत्पते) महात्मा सन्त जनों के रक्षक ! (यस्य गिरः) जिस भक्त की वाणियां (ते) आपके विषय में (गोषातः) अमृतरस से भरी हैं उसके लिये (कस्य) सुख की (परीणसि) बहुत-सी (धियः) बुद्धियों को (नूनम् जिन्वसि) निश्चय से भर-पूर कर देते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभो ! आपके जो परम प्यारे सुपुत्र और अनन्य भक्त हैं, अपनी अतिमनोहर अमृतभरी वाणी से, सदा आप प्रभु के ही गुण गण को गान करते हैं । भक्तवत्सल आप भगवान्, उन भक्तों को श्रेष्ठ बुद्धि से भरपूर कर देते हैं । आपकी अपार कृपा से जिनको उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई है, वे अपने मन से ऐसा चाहते हैं कि, हे दया के भण्डार भगवान् ! जैसी आपने हमको सद्बुद्धि दी है जिससे हम आपके भक्त और आपकी कृपा के पात्र बनें । ऐसी ही कृपा मेरे सब भ्राताओं पर कीजिये, उनको भी सद्बुद्धि प्रदान कीजिये, जिससे सब आपके प्यारे भक्त बन जायें, और सब सुखी होकर संसार भर में शान्ति के फैलाने वाले बनें ।

: १३ :

पाहि नो अग्न एकया पाह्यूश्त द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ।   ११ ४।२।।

शब्दार्थ—(ऊर्जांपते) हे बलपते ! (वसो) हे अन्तर्यामिन् अग्ने ! (एकया) ऋग्वेद रूप वाणी के उपदेशों से (नः पाहि) हमारी रक्षा करो ।(उत द्वितीयया पाहि) और यजुर्वेद की वाणी से रक्षा करो । (तिसृभिः गीर्भिः पाहि) ऋग्यजुः सामरूप त्रयी वाणी से रक्षा करो। (चतसृभिः पाहि) चारों वेदों की वाणी के उपदेशों से हमारी रक्षा करो ।

भावार्थ—हे प्रभो ! जैसे वेदों के पवित्र उपदेशों के संसार भर में फैलाने और धारण करने से सब मनुष्यों की इस लोक और परलोक में रक्षा होती और संसार में शान्ति फैल सकती है ऐसी राजादिकों के पुलिसादि प्रबन्धों से भी नहीं, इसलिये, हे शान्तिवर्धक और सुरक्षक परमात्मन् ! आप अपने वेदों के सत्योपदेशों को संसार भर में फैलाओ और हमें भी बल और बुद्धि दो कि आपकी चार वेद रूपी आज्ञा को संसार में फैला दें जिससे सब नर नारी आपकी प्रेम भक्ति में मग्न हुए सदा सुखी हों ।

: १४ :

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ।
१।२।६।२॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्ड वा वेदपति परमात्मा (नः प्रैतु) हमको प्राप्त हो (देवी सूनृता) वेदवाणी (अच्छा) अच्छी तरह (प्र एतु) हमें प्राप्त हो (वीरं नर्यम्) फैलने वाले मनुष्य के हितकारक (पङ्क्तिराधसम्) १ यजमान २ ब्रह्मा ३ अध्वर्यु ४ होता ५ उद्‌गाता इन पांचों पुरुषों से सेवित (यज्ञम्) यज्ञ को (देवा नयन्तु) अग्नि वायु देवता ले जावें ।

भावार्थ—हे ब्रह्माण्डपते ! हम सबको तीन वस्तुओं की कामना करनी चाहिये—एक आप परब्रह्म की प्राप्ति, दूसरी वेद विद्या, तीसरी यज्ञ, अथवा १. हम यजमानों को मन से ईश्वर का चिन्तन, २. वाणी से वेद-मन्त्रों का उच्चारण, ३. कर्म से अग्नि में आहुति छोड़ना ।

: १५ :

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वꣳहोता नो अध्वरे । त्वम्पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ पू० १।२।६।७॥

शब्दार्थ—हे अग्ने (विश्ववार) सबके पूजन करने योग्य परमात्मन् ! (त्वं नः अध्वरे) आप हमारे ज्ञान यज्ञ में (गृहपतिः) यजमान हैं । (त्वं होता) आप ही होता हैं । (त्वं पोता) आप ही पवित्र करने वाले हैं । (प्रचेता) चेताने वाले भी आप ही हैं । (यक्षि) यज भी आप ही करते हैं । (च) और (वार्यम् यासि) कर्मफल भी आप ही पहुँचाते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभो ! आप यजमान, होता आदि रूप हैं । यद्यपि ज्ञान यज्ञ में भी जीवात्मा, यजमान और वाणी आदि होता,

पोता, प्रचेता, आदि ऋत्विज् हैं, परन्तु आपकी कृपा के बिना कुछ भी कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिए कहा गया है कि आप ही यजमानादि सब कुछ हैं।

: १६ :

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमाविथ॥ पू० २।१।२।२॥

शब्दार्थ—हे अग्ने पूजनीय ईश्वर! (त्वं यस्य सख्यम् आविथ) आप जिस पुरुष की मित्रता को प्राप्त होते हैं, (सः) वह (तव) आपकी (वाजकर्मभिः) बल करने वाली (सुवीराभिः) सुन्दर वीर्य वाली (ऊतिभिः) रक्षाओं से (प्रतरति) पार हो जाता है।

भावार्थ—हे पूजनीय प्रभो! जो पुरुष आपकी भक्ति में लग गये और आपके ही मित्र हो गये हैं, उन भक्तों को आप अपनी अति बल वाली, पुरुषार्थ और पराक्रम वाली रक्षाओं से, सर्वदुःखों से पार करते हैं, अर्थात् उनके सब दुःख नष्ट करते हैं। आपकी अपार कृपा से उन प्रेमियों को आत्मिक बल मिलता है, जिससे कठिन-से-कठिन विपत्ति आने पर भी, सदाचाररूप धर्म और आपकी भक्ति से कभी चलायमान नहीं होते।

: १७ :

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।
भद्रा उत प्रशस्तयः॥ पू० २।१।२।५॥

शब्दार्थ—(सुभग) हे शोभन ऐश्वर्य वाले! (नः) हमारे (आहुतः) सर्व प्रकार से ध्यान किये (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा आप (भद्रः) कल्याणकारी होओ। हमारा (रातिः) दान (भद्रा) श्रेष्ठ हो। (अध्वरः भद्रः) हमारा यज्ञ सफल हो, (उत) और (प्रशस्तयः) स्तुतियें (भद्राः) उत्तम हों।

भावार्थ—हम सबको योग्य है, कि होम, यज्ञ, दान, ध्यान,

स्तुति प्रार्थना आदि जो-जो अच्छे कर्म करें, श्रद्धा अर्थात प्रेम और नम्रता से करें, क्योंकि श्रद्धा और नम्रता के बिना, किये कर्म, हस्ती के स्नान के तुल्य नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अश्रद्धा, अभिमान, नास्तिकता आदि दुर्गुणों को समीप न फटकने दो। वे पुरुष धन्य हैं, जो यज्ञ दान, तप, परोपकार, होम, स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि उत्तम कामों को श्रद्धा, नम्रता और प्रेम से करते हैं। हे प्रभो ! हमें भी श्रद्धा नम्रता आदि गुणयुक्त और दान यज्ञादि उत्तम काम करने वाला बनाओ।

: १८ :

आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत।
सखायः स्तोमवाहसः॥ पू० २।२।७।१०॥

शब्दार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (स्तोमवाहसः) जिनको प्रभु की स्तुतियों का समूह प्राप्त होने योग्य है ऐसे आप लोग (आ निषीदत) मुक्ति प्राप्त के लिए मिलकर बैठो और (इन्द्रम्) परमेश्वर का (प्रगायत) कीर्तन करो (तु) पुनः सब सुखों को (आ इत) चारों ओर से प्राप्त होओ।

भावार्थ—हे मित्रो ! आप एक दूसरे के सहायक बनो और आपस में विरोध न करते हुए मिलकर बैठो। उस जगत्पिता की अनेक प्रकार की स्तुति प्रार्थना उपासना करो। उस प्रभु के अत्यन्त कल्याणकारक गुणों का गान करो, ऐसे उसके गुणों का गान करते हुए, सब सुखों को और मोक्ष को प्राप्त होवोगे, उसकी भक्ति के बिना मोक्ष आदि सुख प्राप्त नहीं हो सकते।

: १९ :

भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो।
यदिन्द्र मृडयासि नः॥ पू० २।२।८।९॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त प्रभो ! (नः) हमारे लिए

(भद्रं भद्रम्) उत्तमोत्तम (इषम्) अन्न और (उर्जम्) रस को (आभर) प्राप्त कराओ, (शतक्रतो) बहु कर्मन् (यत्) जिससे (नः) हमको (मृडयासि) सुखी करें।

भावार्थ—हे जगत्पितः! हमें पुरुषार्थी बनाओ, जिससे हम अन्न, रस आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों को प्राप्त होकर सुखी हों। दूसरों के भरोसे रहते हुए, आलसी, दरिद्री बनकर आप ही अपने को हम दुःखी न बनावें। आपने हमें नेत्र, श्रोत्र, हस्त, पाद आदि इन्द्रियें उद्यमी बनने के लिए दी हैं, न कि आलसी बनने के लिए। आप उनकी ही सहायता करते हो, जो अपने पाँव पर आप खड़े रहते हैं इसलिए पुरुषार्थी बनकर जब हम आपसे सहायता मांगेंगे तब आप हमें अपनी आज्ञा में चलने वाले जानते हुए अवश्य सब सुख देंगे।

: २० :

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्रातिरिच्यते॥ पू० ३।१।१।६॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (इन्दवः) हमारे मन की सब वृत्तियां (त्वा आविशन्तु) आप में अच्छी तरह से लग जावें (सिन्धवः समुद्रमिव) जैसे नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं (त्वाम्) आपसे (न अतिरिच्यते) कोई बढ़कर नहीं है।

भावार्थ—हे दयानिधे परमात्मन्! हमारे मन की सब वृत्तियां आप में लग जावें। जैसे गंगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियाँ बिना यत्न के समुद्र में प्रवेश करती हैं। ऐसे ही हमारे मन की सब वृत्तियां, आपके स्वरूप में लगी रहें। क्योंकि आपसे बढ़कर न कोई ऐश्वर्यवान् है और न सुखदायक दयालु है। हम आपकी शरण में आये हैं, हम पर कृपा करो, हमारा मन इधर-उधर की सब भटकनाओं को छोड़कर, परमानन्द और शान्तिदायक आपके ध्यान में मग्न हो जावे।

: २१ :

इन्द्रा नु पूषणा वयँ सख्याय स्वस्तये ।
हुवेम वाजसातये ॥ पू० ३।१।१।९॥

शब्दार्थ—(वयम्) हम लोग (वाजसातये) धन, अन्न और बल प्राप्ति के लिए और (स्वस्तये) लोक परलोक में अपने कल्याण, के लिए (सख्याय) प्रभु से मित्रता और उसकी अनुकूलता के लिए (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त (नु) और (पूषणम् हुवेम्) पालन-पोषण करने वाले परमेश्वर की उपासना और सत्कार करें।

भावार्थ—हे सर्वपालक पोषक प्रभो। जो श्रेष्ठ पुरुष आपकी उपासना और आपका ही सत्कार करते हैं, आप उनको धन, अन्न, आत्मिक बल कल्याण आदि सब कुछ देते हैं। जो लोग आपसे विमुख होकर दुराचार में फंसे हैं, उनको न तो यहां शान्ति वा सुख प्राप्त होता है, और न मरकर। इसलिए हमें वेदों के अनुसार चलने वाले सदाचारी, अपने भक्त बनाओ, जिससे धन, अन्न, बल और कल्याण सब कुछ प्राप्त हो सके।

: २२ :

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् ॥ पू० ३।१।१।१०॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! (त्वत्) आप से (उत्तरं न कि) कोई उत्तम नहीं; (न ज्यायः) न आपसे कोई बड़ा (अस्ति) है (वृत्रहन्) हे मेघनाशक सूर्य के तुल्य अविद्यादि दोषनाशक प्रभो ! संसारभर में भी दूसरा कोई नहीं।

भावार्थ—हे देव ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप प्रभु के बनाये हुए हैं और उन ब्रह्माण्डों में रहने वाले समस्त प्राणी, आप जगन्नियन्ता की आज्ञा में वर्तमान है, आपकी आज्ञा को जड़ व चेतन कोई नही उल्लंघन कर सकता, इसलिए आपके बराबर भी कोई नहीं तो

आपसे श्रेष्ठ व बड़ा कहां से होगा ? सब ब्रह्माण्डों के और उनमें रहने वाले प्राणिमात्र के पालक, रक्षक, सुखदायक भी आप सदा सुखी रहते हैं।

: २३ :

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पांसुले ॥ ऋ० ३।१।३।१॥

शब्दार्थ—(विष्णुः) व्यापक परमात्मा ने (इदम्) इस जगत् को (त्रेधा) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीन प्रकार से (विचक्रमे) पुरुषार्थयुक्त किया है (अस्य) इस जगत् के (पांसुले) प्रत्येक रज वा परमाणु में (समूढम्) अदृश्य (पदम्) स्वरूप को (निदधे) निरन्तर धारण किया है।

भावार्थ—आप विष्णु ने तीन लोक और लोकान्तर्गत अनन्त पदार्थ तथा सब प्राणियों के शरीर उत्पन्न किए हैं। इन सबको आपने ही धारण किया है और इन सब पदार्थों में अन्तर्यामी होकर व्याप रहे हैं। कोई लोक वा पदार्थ ऐसा नहीं, जहां आप विष्णु व्यापक न हों, तो भी सूक्ष्म होने से हमारे इन चर्ममय नेत्रों से नहीं देखे जाते। कोई महात्मा ही अन्तर्मुख होकर आपको ज्ञान नेत्रों से जान सकता है, बहिर्मुख संसार के भोगों में सदा लम्पट मनुष्य तो हजारों जन्मों में भी आप जगन्नियन्ता परमात्मा को नहीं जान सकते।

: २४ :

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥ ऋ० ३।१।५।२॥

शब्दार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर (अर्वतः नरः) अश्वादि पर चढ़ने वाले वीर नर (वृत्रेषु त्वाम्) शत्रुओं से घेरे जाने पर आपका ही सहारा लेते हैं, (काष्ठासु) सब दिशाओं में (सत्पतिम् त्वाम्)

महात्मा सन्त जनों के पालक और रक्षक, आपको ही भजते हैं इसलिए (कारवः) आपकी स्तुति करने वाले हम भी (वाजस्य सातौ) बल के दान निमित्त (त्वाम् इत् हि) केवल आपको ही (हवामहे) पुकारते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो ! सब दिशाओं में सन्तजनों के रक्षक आप परमेश्वर को जैसे शत्रुओं से घेरे जाने पर बल प्राप्ति के लिए वीर पुरुष पुकारते हैं, ऐसे ही हम आपके सेवक भक्तजन भी काम क्रोधादि शत्रुओं से घेरे जाने पर, उनको जीतने के लिए आपसे ही बल मांगते हैं। दयामय ! जो आपकी शरण आता है खाली नहीं जाता। हम भी आपकी शरण आये हैं हम अपने भक्तों को आपकी आज्ञा रूप वेदों में दृढ़ विश्वासी और जगत् का उपकारक बनाओ, हम नास्तिक और स्वार्थी कभी न बनें, ऐसी कृपा करो।

: २५ :

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवञ्छग्धि तव तं न ऊतये विद्विषो विमृधो जहि ॥ पू० ३।२।४।२॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यतः भयामहे) जिस से हम भय को प्राप्त हों (ततो नो अभयं कृधि) उस से हम को निर्भय कीजिये। (मघवन्) हे ऐश्वर्ययुक्त प्रभो (तव) आप के (नः) हम लोगों की (ऊतये) रक्षा के लिये (तं शग्धि) उसे अभय करने को आप समर्थ हैं। हमारी याचना को पूर्ण कीजिए (मृधः) हिंसक (द्विषो वि जहि) शत्रुओं को नष्ट कीजिये।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् प्रभो ! जहां-जहां से हमें भय प्राप्त होने लगे, वहां २ से हमें निर्भय कीजिये। हमें निर्भय करने को आप महासमर्थ हैं इसलिए आप से ही हमारी प्रार्थना है कि हमारे बाहर के शत्रु और विशेष करके हमारे भीतर के काम क्रोधादि सर्व शत्रुओं का नाश कीजिये जिस से हम निर्विघ्न हो कर आप के ध्यानयोग में प्रवृत्त हुए मुक्ति को प्राप्त होवें।

: २६ :

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥
पू० ४।१।१।८॥

शब्दार्थ—(इन्द्र मघवन्) हे परम धनवान् परमेश्वर । आप (कदाचन स्तरीः न असि) कभी भी हिंसक नहीं हैं, किन्तु (दाशुषे) विद्या धनादि दान करने वाले के लिये (उप उप इत् नु) समीप समीप ही शीघ्र (सश्चसि) कर्मफल पहुँचाते हैं (देवस्य ते) प्रकाश-युक्त आप का (दानं भूत इत्) कर्मानुसारी दान पुनर्जन्म में भी (नु पृच्यंते) निश्चय करके सम्वद्ध होता है ।

भावार्थ—हे प्रभो ! प्राणिमात्र के कर्मों का फल देने वाले आप हैं, कभी किसी के कर्म को निष्फल नहीं करते न किसी निरपराध को दण्ड ही देते हैं । किन्तु इस जन्म और पुनर्जन्म में सब प्राणिवर्ग आप की व्यवस्था से कर्मानुसारी फल को भोगने वाला बनता है ।

: २७ :

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ
शूरमिन्द्रम् । हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदꣳ
हविर्मघवा वेत्विन्द्रः । पू० ४।१।५।२॥

शब्दार्थ—(त्रातारम् इन्द्रम्) पालक परमेश्वर (अवितारम् इन्द्रम्) रक्षक परमेश्वर (हवे हवे सुहवम्) जब-जब पुकारें तब तब सुगमता से पुकारने योग्य (शूरम् इन्द्रम्) शूरवीर परमेश्वर (शक्रम्) शक्तिमान् (पुरुहूतम्) वेदों में सबसे अधिक पुकारे गए (इन्द्रम् हुवे) ऐसे परमेश्वर को में पुकारता हूं । (मघवा इन्द्रः) अनन्त धन वाला परमेश्वर (इदम् हविः) इस पुकार को (नु वेतु) शीघ्र जाने ।

भावार्थ—आप प्रभु सब के रक्षक और पालक हैं आपकी भक्ति बड़ी सुगमता से हो सकती है, वेदों में आप की भक्ति, उपासना करने के लिए बहुत ही उपदेश किए गये हैं। जो भाग्य-शाली आप की भक्ति प्रेम पूर्वक करते हैं, उनकी प्रार्थना पुकार को अति शीघ्र सुन कर उनकी सब कामनाओं को आप पूर्ण करते हैं।

: २८ :

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ ४।२।१।१॥

शब्दार्थ—(शतक्रतो) हे अनन्तकर्म और उत्तम ज्ञानयुक्त प्रभो ! (गायत्रिणः) गाने में कुशल (त्वा गायन्ति) आप का गान करते हैं, (अर्किणः) पूजा में चतुर (अर्कम् अर्चन्ति) पूजनीय आप को ही पूजते हैं (ब्रह्माणः) वेदज्ञाता यज्ञादि क्रिया में कुशल (वंशम् इव) जैसे अपने कुल को (उद् येमिरे) उद्यम वाला करते हैं ऐसे आप की ही प्रशंसा करते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो ! जैसे आप के सच्चे पूजक, वेद विद्या को पढ़ कर अच्छे-गुणों के साथ अपने और औरों के वंश को भी पुरुषार्थी करते हैं, वैसे अपने आप को भी श्रेष्ठ गुणयुक्त और पुरुषार्थी बनाते हैं। जो पुरुष आप से भिन्न पदार्थ की पूजा वा उपासना करते हैं, उन को उत्तम फल कभी प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि आप की ऐसी कोई आज्ञा नहीं है कि, आप के समान कोई दूसरा पदार्थ पूजन किया जावे, इसलिये हम सब को आप की ही पूजा करनी चाहिये।

: २९ :

अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥ ४।२।३।३॥

शब्दार्थ—(नरः प्रियमेधासः) हे यज्ञ महायज्ञादि उत्तम कर्मों से प्यार करने वाले मनुष्यो ! (पुरम्) भक्तजनों के सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले (उत्) और (धृष्णु) सब को दबा सकने और आप किसी से न दबने वाले प्रभु का (अर्चत-अर्चत प्रार्चत) यजन करो, यजन करो, विशेष करके यजन करो। (पुत्रकाः) हे मेरे परम प्यारे पुत्रो ! (अर्चन्तु) अर्चन करो (इत्) अवश्य (अर्चत) यजन करो।

भावार्थ—कृपासिन्धो भगवन्! आप कितने अपार प्यार और कृपा से हमें बारंबार उपदेश अमृत से तृप्त करते हैं कि हे पुत्रो ! तुम यज्ञमहायज्ञादि उत्तम कर्मों से प्यार करो, मैं जो तुम्हारा सदा का सच्चा पिता हूं, उस का सच्चे मन से पूजन करो। मैं समर्थ हूं तुम्हारी सब कामनाओं को पूरा करूंगा इस मेरे सत्य वचन में दृढ़ विश्वास करो, कभी सन्देह न करो।

: ३० :

एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत्॥ पू० ४।२।५।७॥

शब्दार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (एत उ) आओ आओ (य एक इत्) जो परमेश्वर एक ही (विश्वाः कृष्टी) सब मनुष्यों को (अभ्यस्ति) तिरस्कृत (शासित) करने में समर्थ है (स्तोम्यम् नरम्) स्तुति योग्य सब के नायक (इन्द्रम् नु स्तवाम) परमेश्वर की शीघ्र हम स्तुति करें।

भावार्थ—हे प्यारे मित्रो ! आओ, आओ हम सब मिलकर उस सर्वशक्तिमान् सब के नियन्ता एक प्रभु की शीघ्र स्तुति करें, हमारा शरीर क्षणभंगुर है, ऐसा न हो कि हमारे मन-की-मन में रह जाय, इसलिये प्राकृत पदार्थों में अत्यन्तासक्ति न करते हुए, उस स्तुति योग्य सब के स्वामी जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना में अपने मन को लगा कर शान्ति को प्राप्त होवें।

: ३१ :

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ पू० ४।२।५।८॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मकृते विपश्चिते) सब मनुष्यों के लिये वेदों को उत्पन्न करने वाला ज्ञानस्वरूप और ज्ञान प्रदाता (विप्राय बृहते) मेधावी सर्वज्ञ और महान् (पनस्यवे) पूजनीय (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (बृहत् साम गायत) बड़ा साम गान करो ।

भावार्थ—हे सुज्ञ जनो ! जिस दयामय जगत्पिता ने हमारे लिये धर्म आदि चार पुरुषार्थों के साधक वेदों को उत्पन्न किया, ऐसा ज्ञानस्वरूप, ज्ञानदाता, महान् जो परम पूजनीय परमात्मा है, उस प्रभु की हम अनन्य भक्ति करें । उसी जगत्पिता की कपट छलादिकों को त्याग कर वैदिक और लौकिक स्तोत्रों से बड़ी स्तुति करें, जिससे हमारा जीवन पवित्र और जगत् के उपकार करने वाला हो ।

: ३२ :

विश्वतोदावन्विश्वतो न आभर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥
५।२।१।१॥

शब्दार्थ—(विश्वतो दावन्) हे सब ओर से दान करने वाले प्रभो ! (नः विश्वतः आभर) हमारा सब ओर से पालन पोषण करो (यं त्वा शविष्ठम्) जिस आप अत्यन्त बलवान् को (ईमहे) हम याचना करते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभो ! आप ही सबको सब पदार्थ देने वाले हो, आपके द्वार पर सब याचना करने वाले हैं, आप ही सब बलियों में महाबलवान् हो आपके सेवक हम लोग भी आपसे ही मांगते हैं । हमारा सबका हृदय आपके ज्ञान और भक्ति से भरपूर हो, व्यवहार में भी हमारा अन्न वस्त्र आदिकों से पालन पोषण

करो। हमारे सब देशभाई भोजन वस्त्र आदिकों की अप्राप्ति से कभी दुःखी न हों सदा सब सुखी रहें, ऐसी कृपा करो।

: ३३ :

सदा गावः शुचयो विश्वधायसः। सदा देवा अरेपसः॥

५।२।१६॥

शब्दार्थ—हे परमात्मन्! (विश्वधायसः) जो उत्तम पुरुष संसार में सब सुपात्रों को अन्नवस्त्रादि दान से धारण पोषण करते हैं, (अरेपसः) पापाचरण नहीं करते (देवाः) दानादि दिव्यगुणयुक्त पुरुष हैं, वे (सदा शुचयः) सदा पवित्र रहते हैं, जिस प्रकार (गावः) गौएं सदा शुद्ध रहती हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! जो तेरे सच्चे भक्त हैं, वे अपने तन, मन, धन को, सुपात्र, विद्वान्, जितेन्द्रिय, परोपकारी महात्माओं की सेवा में लगा देते हैं। वस्तुतः ऐसे दानशील और पापाचरण रहित सदा पवित्र, आप प्रभु के भक्त ही देव कहलाने के योग्य हैं। जैसे गौ, वा सूर्य की किरणें, वा वेदवाणी वा नदियों के पवित्र जल, ये सब पवित्र हैं और इनको परोउपकार के लिए ही आपने रचा है, ऐसे ही आपके भक्त भी परोउपकार के लिए ही उत्पन्न हुए हैं।

: ३४ :

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

६।१।४।५॥

शब्दार्थ—(सोमः) सकल जगत् उत्पादक, सत्कर्मों में प्रेरक, शान्त स्वरूप अन्तर्यामी परमात्मा जोकि (मतीनां जनिता) बुद्धियों का उत्पादक (दिवो जनिता) द्युलोक का उत्पादक (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का उत्पादक (अग्नेः जनिता) अग्नि का उत्पादक

(सूर्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक (इन्द्रस्य जनिता) विजुली का उत्पादक (उत विष्णोः जनिता जनयिता) और यज्ञ का उत्पादक है (पवते) ऐसा प्रभु धार्मिक विद्वान् महात्माओं को प्राप्त होता है।

भावार्थ—पृथिवी सूर्य आदि सब लोक लोकान्तर और सब ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करने वाला महासमर्थ प्रभु अपने प्यारे धार्मिक और परोपकारी योगी भक्तजनों को प्राप्त होते हैं, अन्य को नहीं।

: ३५ :

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय।
अथादित्य व्रते वयन्तवानागसो अदितये स्याम ।६।३।१।४॥

शब्दार्थ—(आदित्य वरुण) हे सूर्यवत् प्रकाशमान अविनाशी सर्वश्रेष्ठगुण सम्पन्न प्रभो! (अस्मत्) हमसे (उत्तमम् मध्यमम् अधमम् पाशम्) उत्तम मध्यम और निकृष्ट इन तीन प्रकार के बन्धनों को (उत् अव विश्रथाय) शिथिल कर दीजिये, (अथ वयम्) और हम लोग (तव व्रते) आपके नियम पालन में (अदितये) दुःख और नाश रहित होने के लिये (अनागसः स्याम) निरपराध होवें।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप अविनाशी सत्यकामादि दिव्यगुण-युक्त प्रभो! जो तेरी प्राप्ति और तेरी आज्ञा पालन में कठिन से कठिन वा साधारण बन्धन हो उसे दूर करो। आपकी सृष्टि के नियम, जो हमारे कल्याण के लिये ही आपने बनाये हैं, उनके अनुसार हमारा जीवन हो। उन नियमों के पालने में हमें किसी प्रकार का दुःख वा हानि न हो। हम सब अपराधों से रहित हुए तेरी भक्ति और तेरी आज्ञा पालन में समर्थ हों।

: ३६ :

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम। यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ।६।६।१।९॥

शब्दार्थ—(अहं देवेभ्यः प्रथमजाः अस्मि) मैं वायु बिजली आदि देवों से पूर्व ही विद्यमान हूं और (ऋतस्य अमृतस्य नाभ) सच्चे अमृत का टपकाने वाला हूं (यः मा ददाति) जो पुरुष मेरा दान करता है (स इत्) वही (एवम् आवत्) ऐसे प्राणियों की रक्षा करता है और जो किसी को न देकर आप ही खाता है (अन्नम् अदन्तम्) उस अन्न खाते हुए को (अहम् अन्नम् अद्मि) मैं अन्न खा जाता हूं अर्थात् नष्ट कर देता हूं।

भावार्थ—परमेश्वर उपदेश देते हैं कि, हे मनुष्यो ! जब वायु आदि भी नहीं उत्पन्न हुए थे तब भी मैं वर्तमान था, मैं ही मोक्ष का दाता हूं, जो आप ज्ञानी होकर दूसरों को उपदेश करता है, वह अपनी और दूसरे प्राणियों की रक्षा करता हुआ पुरुषार्थ भागी होता है जो अभिमानी होकर दूसरों को उपदेश नहीं करता, उसका मैं नाश कर देता हूं। दूसरे पक्ष में अलंकार की रीति से अन्न कहता है—कि मैं ही सब देवों से प्रथम उत्पन्न हुआ हूं। जो पुरुष महात्मा अतिथि आदिकों को देकर खाता है, वह अपनी रक्षा करता है। जो असुर केवल अपना ही पेट भरता है, अतिथि आदिकों को अन्न नहीं देता, उस कृपण नास्तिक दैत्य का मैं नाश कर देता हूं।

: ३७ :

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ इयक्षते ।। उ० १।१।१।१।।

शब्दार्थ—(नरः) हे मनुष्यो ! (अस्मैपवमानाय) इस पवित्र करने वाले (इन्दवे) परमेश्वर (देवान् अभि इयक्षते) विद्वानों को लक्ष्य करके, अपना यजन करना चाहते हुए के लिए (उपगायत) उपगान करो।

भावार्थ—हे प्रभो ! जैसे कोई धर्मात्मा दयालु पिता, अपने पुत्र के लिए, अनेक उत्तम वस्तुओं का संग्रह करके, मन में चाहता

है कि, मेरा पुत्र योग्य बन जाए, तब मैं इसको उत्तम वस्तुओं को देकर सुखी करूँ। ऐसे ही आप पतित पावन परम दयालु जगत्पिता भी चाहते हैं कि यह मेरे पुत्र, धर्मात्मा होकर मेरा ही पूजन करें, तब मैं अपने प्यारे इन पुत्रों को अपना यथार्थ ज्ञान देकर, मोक्षादि अनन्त सुख का भागी बनाऊं।

: ३८ :

स नः पवस्व शं गवे शं जना शमर्वते ।
शꣳराजन्नोषधीभ्यः ॥ उ० १।१।१।३॥

शब्दार्थ—(राजन्) हे प्रकाशमान प्रभो ! (स नः) वह आप हमारे (गवे शं पवस्व) गौ अश्वादि पशुओं के लिए सुख की वर्षा करें (शं जनाय) हमारे पुत्र भ्राता आदिकों के लिए सुख वर्षा (अर्वते शम्) हमारे प्राण के लिए सुख वर्षा। (ओषधीभ्यः शम्) हमारी गेहूँ, चावल आदि ओषधियों के लिए सुख वर्षा करो।

भावार्थ—हे महाराजाधिराज परमात्मान् ! आप हमारे लिए गौ, अश्वादि उपकारक पशुओं को देकर और उन पशुओं को सुखी करते हुए हमारी रक्षा करें। ऐसे ही हमारी पुत्र पौत्रादि संतान तथा हमारे प्राण सुखी करें, और हमारे लिए गेहूँ चावल आदि उत्तम अन्न उत्पन्न कर हमें सदा सुखी करें।

: ३९ :

तं त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ उ० १।१।४।२॥

शब्दार्थ—(अंगिरः) हे प्रकाशमान (यविष्ठ्य) अति बलयुक्त प्रभो ! (तं त्वा) वेदों में प्रसिद्ध आपको (समिद्भिः) ध्यान आदि साधनों से तथा (घृतेन) आप में स्नेह प्रेमभक्ति से (वर्धयामसि) अपने हृदय में प्रत्यक्ष जानें और आप (बृहत् शोच) बहुत प्रकाश करें !

भावार्थ—हे परमात्मन् ! जो आपके प्यारे भक्त जन, अपने हृदय में आपकी प्रेमपूर्वक भक्ति उपासना में तत्पर हैं, उनको ही आपका यथार्थ ज्ञान होता है, उनके हृदय में ही आप अच्छी तरह से प्रकाशित हुए अविद्यादि अन्धकार को नष्ट कर उन्हें सुखी करते हैं, आपकी भक्ति के बिना तो प्रकृति में फँसकर आपकी वैदिक आज्ञा से विरुद्ध चलते मूर्ख संसारी लोग, अनेक नीच योनियों में भटकते-भटकते सदा दुःखी ही रहते हैं।

: ४० :

त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ उ० १।२।२।३॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वं नः) आप हमारे लिए (वाजयुः) अन्न की इच्छा वाले हो (शतक्रतो) हे अनन्तज्ञान और शोभनीय कर्म वाले प्रभो ! (त्वं गव्युः) आप हमारे लिए गौ आदि उपकारक पशुओं की इच्छा वाले और (वसो) हे सबमें बसने और सबको अपने में वास देने वाले सर्वाधिष्ठान परमात्मन् ! (त्वं हिरण्ययुः) आप हमारे लिए सुवर्णादि धन चाहने वाले हूजिये।

भावार्थ—हे जगत्पते परमेश्वर ! आप हमारे और हमारे देशी सब भ्राताओं के लिए गेहूँ चावल आदि अन्न, गौ-अश्व आदि उपकारक पशु, सुवर्ण-चांदी आदि धन की इच्छा वाले हूजिये। किसी वस्तु की न्यूनता से हम सब दुःखी वा दरिद्री न रहें, किन्तु हमारे सब भ्राता, सब प्रकार के सुखों से सम्पन्न हुए निश्चिन्त होकर आपकी भक्ति में अपने कल्याण के लिए लग जायें।

: ४१ :

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः । उ० १।२।३।३॥

शब्दार्थ—हे प्रभो ! (देवाः) विद्वान् लोग (सुन्वन्तम्) अपना साक्षात् कराते हुए आपकी (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) निद्रा के लिए इच्छा नहीं करते (अतन्द्रा) निरालस होकर (प्रमादम् यन्ति) अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप वेद द्वारा हमें उपदेश दे रहे हैं कि, हे मेरे प्यारे पुत्रो ! आप लोगों को योग्य है कि अति निद्रा, आलस्य, विषयासक्ति आदि मेरी भक्ति और ज्ञान के विघ्नों को जीतकर, मेरी इच्छा करो । क्योंकि, अतिनिद्राशील आलसी और विषयासक्तों को मेरी भक्ति वा ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए इन सब विघ्नों को दूर कर, मेरी वैदिक आज्ञा के अनुकूल अपना जीवन पवित्र बनाते हुए सदा सुखी रहो ।

: ४२ :

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ।। उ० २।१।१६।२।।

शब्दार्थ—हे इन्द्र ! (ते सख्ये) आपकी मैत्री में हम (वाजिनः) अन्न और बल युक्त हुए (मा भेम) किसी से न डरें । (शवसस्पते) हे बलपते ! (जेतारम्) सबको जीतने वाले (अपराजितम्) और किसी से भी न हारने वाले (त्वाम् अभिप्रनोनुमः) आपको हम बारम्बार प्रणाम और आपकी ही स्तुति करते हैं ।

भावार्थ—हे दयासिन्धो भगवन् ! जो आपकी शरण आते हैं, उनको किसी प्रकार का भय नहीं प्राप्त होता क्योंकि आप महाबली और सबको जीतने वाले हैं, तो आपकी शरण में आए भक्तों को डर किसका रहा । इसलिए अभय पद की इच्छा वाले हमको इस लोक और परलोक में अभय कीजिये ।

: ४३ :

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ।। उ० २।२।४।३।।

शब्दार्थ—हे शान्तिदायक प्रभो ! (पुनानः) अपवित्रों को पवित्र करने वाले (द्युतानः) प्रकाश करने वाले (वाजिभिः) प्राणायामों के साथ (हितः) ध्यान किये हुए आप (देववीतये) विद्वान् भक्तों को प्राप्त होने के लिए (इन्द्रस्य) इन्द्रियों में अधिष्ठाता जीव के (निष्कृतम्) शुद्ध किये हुए अन्तःकरण स्थान में (याहि) साक्षात् रूप से प्राप्त हूजिये ।

भावार्थ—हे शुद्ध स्वरूप परमात्मन् ! आप शरणागत अपवित्रों को भी पवित्र करने और अज्ञानियों को भी ज्ञान का प्रकाश देने वाले हो, प्राणायाम, धारणा, ध्यानादि साधनों से जो आपके विद्वान् भक्त आपके साक्षात् करने के लिए प्रयत्न करते हैं, उनके शुद्ध अन्तःकरण में प्रत्यक्ष होते हो ।

: ४४ :

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वꣳसूर्य्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्व-देवो महाँ असि ॥ उ० ३।२।२२।२॥

शब्दार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वम् अभिभूः असि) आप सब [पर शासन करने] को दबा सकने वाले हो, (त्वम् सूर्यम् अरोचयः) आप ही सूर्य को प्रकाश देते हो (विश्वकर्मा) सब जगतों के रचने वाले (विश्वदेवः) सबके प्रकाशक देव और (महान् असि) सर्वव्यापी महादेव हैं ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप सर्वशक्तिमान् होने से सबको दबाने वाले हैं । सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत् आदि सब प्रकाशों के प्रकाशक भी आप हैं, आपके प्रकाश के बिना यह सूर्य आदि कुछ भी प्रकाश नहीं कर सकते, इसलिए आपको ज्योतियों का ज्योति सच्छास्त्रों में वर्णन किया है । सब ब्रह्माण्डों के रचने वाले और सूर्य आदि सब देवों के देव होने से आप महादेव हैं ।

: ४५ :

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व३रगच्छो रोचनन्दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ उ० ३।२।२२।३॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र ! (ज्योतिषा विभ्राजत्) आप अपने ही प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हुए (दिवः रोचनम्) ऊपर के द्युलोक को भी प्रकाशित कर रहे हैं (स्वः अगच्छः) और अपने आनन्द स्वरूप को प्राप्त हो रहे हैं (देवाः ते सख्याय) विद्वान् लोग आपकी मित्रता वा अनुकूलता के लिए (येमिरे) प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! आप अपने ही प्रकाश से ऊपर के द्युलोक आदि तथा नीचे के पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित कर रहे हैं। आप आनन्द स्वरूप हैं, आपके परम प्यारे और आपके ही अनन्यभक्त विद्वान् देव, आपके साथ गाढ़ी मित्रता के लिए सदा प्रयत्न करते हैं, आपके मित्र बनकर मृत्यु से भी न डरते हुए, आपके स्वरूपभूत आनन्द को प्राप्त होते हैं।

: ४६ :

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अथा ते सुम्नमीमहे ॥ उ० ४।२।१३।२॥

शब्दार्थ—हे (वसो) अन्तर्यामी रूप से सब में वास करने वाले प्रभो ! (शतक्रतो) हे जगतों के उत्पति स्थिति प्रलय आदि-कर्तः ! (त्वं हि नः पिता) आप ही हमारे पालक और जनक हैं (त्वं माता) हमारी मान करने वाली सच्ची माता भी आप ही (बभूविथ) थे और अब भी हैं, (अथ) इसलिये आप से ही (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) हम मांगते हैं।

भावार्थ—हमें योग्य है कि जिस वस्तु की इच्छा हो आप से मांगें। आप अवश्य देंगे, क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हमारे लिये ही

आपने बनाये हैं । आप तो आनन्द-स्वरूप हो किसी पदार्थ की भी अपने लिये कामना नहीं करते, यदि कोई वस्तु मांगने पर भी हमें नहीं देते, तो वह वस्तु हमें हानि करने वाली है, इसलिये नहीं देते । हम सब को जो सुख मिले और मिल रहे हैं, वह सब आपकी कृपा है, हम आपकी भक्ति में मग्न रहेंगे तो, कोई ऐसा सुख नहीं जो हमें न मिल सके ।

: ४७ :

त्वाꣳशुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ उ० ४।२।१३।३॥

शब्दार्थ—(शुष्मिन्) हे बलवान् प्रभो ! (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे गये (सहस्कृत) बल देने वाले (वाजयन्तं त्वाम्) बल देते हुए आपकी (उपब्रुवे) मैं स्तुति करता हूं (स नः) वह आप हमारे लिये (सुवीर्यम् रास्व) उत्तम बल का दान करो ।

भावार्थ—हे महाबलिन् बलप्रदातः ! हम आपके भक्त आपकी ही उपासना करते हैं, आप कृपा कर हमें आत्मिक बल दो, जिससे हम लोग, काम क्रोध आदि दुःखदायक शत्रुओं को जीत कर, आपकी शरण में आवें । आपकी शरण में आकर ही हम सुखी हो सकते हैं, आपकी शरण में आये बिना तो, न कभी कोई सुखी हुआ और न होगा ।

: ४८ :

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄं पाहि शृणुही गिरः ।
रक्षा तोकमुतत्मना ॥ उ० ५।१।१८।३॥

शब्दार्थ—(यविष्ठ) हे अत्यन्त बलयुक्त प्रभो ! (दाशुषः) दानशील (नॄन्: पाहि) मनुष्यों की रक्षा कीजिये (गिरः शृणुहि) उनकी प्रार्थना रूपी वाणियों को सुनिये (उत तोकम्) और उन के पुत्रादि सन्तान की (त्मना रक्षा) अपने अनन्त सामर्थ्य से रक्षा कीजिये ।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् जगदीश्वर! आप कृपा कर, दान-शील धर्मात्माओं की और उनके पुत्र-पौत्रादि परिवार की रक्षा कीजिये, जिससे वे दाता धर्मात्मा परम प्रसन्न हुए, सुपात्रों को अनेक पदार्थों का दान देते हुए संसार का उपकार करें और आपकी कृपा के पात्र सच्चे प्रेमी भक्त बन कर दूसरों को भी प्रेमी भक्त बनावें।

: ४९ :

इन्द्रमीशानमोजसा भि स्तोमैरनूषत। सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः॥ उ० ५।१।२०।३॥

शब्दार्थ—हे मनुष्यो! आप लोग (ओजसा ईशानम्) नपने अद्भुत बल से सब पर (शासन)हकूमत करने वाले महा ऐश्वर्य-वान् प्रभु की (स्तोमैः) स्तुति बोधक वेदमन्त्रों से (अभि अनूषत) सब प्रकार से स्तुति करो, (यस्य सहस्रम्) जिस प्रभु के हज़ारों (उत वा भूयसीः) अथवा हज़ारों से भी अधिक (रातयः सन्ति) दिये हुए दान हैं।

भावार्थ—जिस दयालु ईश्वर के दिये हुए शुद्ध वायु,जल, दुग्ध, फल, फूल, वस्त्र, अन्न आदि हज़ारों और लाखों पदार्थ हैं, जिन को हम निशि दिन उपभोग में ले रहे हैं, इसलिये हमें योग्य है कि उस परम पिता जगदीश की, पवित्र वेद के मन्त्रों से सदा स्तुति करें और उसी को अनेक धन्यवाद देवें; जिस से हमारा कल्याण हो।

: ५० :

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते॥ उ० ६।२।१।१॥

शब्दार्थ—(अध्वरम्) हिंसा रहित यज्ञ के (उपप्रयन्तः) समीप जाते हुए हम (आरे) दूरस्थों की (च) और (अस्मे) समीपस्थों की (शृण्वते अग्नये) सुनते हुए ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के लिये

(मन्त्रं वोचेम) स्तुतिरूप मन्त्र को उच्चारण करें।

भावार्थ—हे विभो ! हम से दूरवर्ती और समीपवर्ती सब प्राणिमात्र की पुकार को, आप सदा सुनते हैं, इसलिये हम सब को योग्य है कि आप के रचे वेदों के पवित्र स्तुतिरूप सूक्त और मन्त्रों का, वाणी से पाठ, यज्ञ होमादिकों के आरम्भ में अवश्य किया करें और मन से आप का ही ध्यान और उपासना सदा किया करें।

: ५१ :

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः।
शुद्धो रयिन्निधारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥उ० ६।२।६।२॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! (शुद्धः नः आगहि) सदा पवित्र स्वरूप आप हम को प्राप्त होवें। (शुद्धः शुद्धाभिः ऊतिभिः) पावन आप अपनी पावनी रक्षाओं से हमारी रक्षा करें। (शुद्धः रयिम् निधारय) पावन आप निष्कपट व्यवहार से प्राप्त पवित्र धन को धारण करावें। (सोम्य) हे अमृतस्वरूप प्रभो ! (शुद्धः ममद्धि) पावन आप हम पर प्रसन्न होवें।

भावार्थ—हे दीनदयालो भगवन् ! आप सदा पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाले हो, हम को पवित्र बनाओ। खान-पान आदि व्यवहार के लिये हमें पवित्र धन दो, जिससे हम पवित्र रहते हुए आपके प्यारे सच्चे भक्त बनें और अपने सहवासी भाइयों को भी पवित्र सच्चे भक्त बनाते हुए सदा सुखी रहें।

: ५२ :

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिँशुद्धो रत्नानि दाशुषे। शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजँसिषाससि ॥उ० ६।२।६।३॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र ! (शुद्धः हि) जिस से आप पावन हैं, इसलिये (रयिम् नः) हमें पवित्र धन दो। (शुद्धः) आप पवित्र है, (दाशुषे रत्नानि) दानी पुरुष के लिये पवित्र स्वर्ण, रजत,

मणि, मुक्ता आदि रत्न दो। (शुद्धः) आप शुद्ध हैं, इसलिये (वृत्राणि जिघ्नसे) अशुद्ध दुष्ट राक्षसों को नाश करते हैं, (शुद्धः वाजम् सिपाससि) और पवित्र आप पवित्र अन्न को प्राणी के कर्म अनुसार देना चाहते हैं।

भावार्थ – हे पतित पावन भगवन्! आप पावन हैं हमें पवित्र धन दो, पुण्यात्मा, दानशील, धर्मात्माओं के लिये भी पवित्र मणि, हीरा, मुक्ता आदि रत्न दो। आप सदा पवित्र स्वरूप हैं, अपवित्र दुष्ट पापी राक्षसों का नाश कर जगत् में पवित्रता फैला दो। आप अपने प्यारे भक्तों को पवित्र अन्न आदि दिया चाहते और उनको पवित्रात्मा बनाते हैं।

: ५३ :

अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः। विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥उ० ६।३।७।१॥

शब्दार्थ—(सत्पते) हे सत्पुरुषों के रक्षक और पालक (इन्द्र) परमेश्वर! (नः) हमारी (अद्य-अद्य) आज २ और (श्वःश्वः) कल २ (परे) और परले दिन ऐसे ही (विश्वा अहा) सब दिन (त्रास्व) रक्षा करो (च) और (नः जरितृन्) हमारी आप की स्तुति करने वालों की (दिवा च नक्तं रक्षिषः) दिन में और रात्रि में भी सदा रक्षा कीजिये।

भावार्थ—हे सत्पुरुष महात्माओं के रक्षक और पालक इन्द्र! आप हमें श्रेष्ठ बनाओ, हमारी सब दिन और रात्री में सदा रक्षा करो, आपसे सुरक्षित होकर, आपके भजन स्मरण स्तुति प्रार्थना में और आपके वेद प्रचार में हम लग जावें, जिससे कि हमारा और हमारे सब भ्राताओं का कल्याण हो।

: ५४ :

उत नः प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ उ० ६।३।६।१॥

शब्दार्थ—(उत नः प्रियासु प्रिया) परमेश्वर की स्तुति के लिए हमारी प्यारियों से अति प्यारी मिठी रस-रस युक्त (सप्त-स्वसा) गायत्री आदि सात छन्दों जाति रूप बहनों वाली (सुजुष्टा) अच्छे प्रकार अभ्यास से सेवन की गई (स्तोम्या सरस्वती भूत्) प्रशंसनीय वाणी होवे।

भावार्थ—हे वेदगम्य प्रभो ! हम पर दया करो कि हमारी वाणी अति प्रिय, मधुर और वेदों के गायत्री आदि छन्दों वाले सूक्त तथा मन्त्रों से अभ्यस्त और प्रशंसनीय हो। जब हम सब आपकी स्तुति प्रार्थना करने लगें, तो आपकी महिमा और स्वरूप के निरूपण करने वाले सैकड़ों मन्त्र हमारे कण्ठाग्र हो, उनके पाठ और अर्थ ज्ञानपूर्वक, हम आपकी स्तुति प्रार्थना करें।

: ५५ :

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेष नृम्णः। सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः॥

उ० ६।३।१७।१॥

शब्दार्थ—(तत् भवनेषु ज्येष्ठं इत् आस) वह प्रसिद्ध सब भुवनों में अत्यन्त बड़ा ब्रह्म ही था (यतः उग्रः) जिस ब्रह्म रूप निमित्त कारण से तेजस्वी (त्वेष नृम्णः) प्रकाश बल वाला सूर्य (जज्ञे) उत्पन्न हुआ, (जज्ञानः) उत्पन्न हुआ ही सूर्य (सद्यः) शीघ्र (शत्रुन् निरिणाति) शत्रुओं को नष्ट करता है (यम् अनु) जिस सूर्य के उदय होने के पश्चात् (विश्वे ऊमाः मदन्ति) सब प्राणी हर्ष पाते हैं।

भावार्थ—हे जगत्पितः ! जब यह संसार उत्पन्न भी नहीं हुआ था, तब सृष्टि के पूर्व भी आप वर्तमान थे। आपसे ही यह महातेजस्वी तेजःपुञ्ज सूर्य उत्पन्न हुआ है, मनुष्य के जो शत्रु, सिंह, सर्प, वृश्चिक आदि विषधारी जीव हैं, उनको यह सूर्य अपने

उदय मात्र से भगा देता है। ज्वर आदिकों के कारण जो सूक्ष्म जन्तु हैं, उनको मार भी डालता है। ऐसे सूर्य के उदय होने पर मनुष्य पशु, पक्षी आदि सब प्राणी बहुत ही प्रसन्न होते हैं।

: ५६ :

न ह्यां ३ऽग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत्।
न की राया नैवथा न भन्दना ॥ उ० ७।१।८।३॥

शब्दार्थ—(अंग) हे प्रिय इन्द्र ! (पुरा चन) पूर्वकाल में तथा वर्त्तमान काल में भी (न किः राया) न तो धन से (न एवथा) न रक्षा से (भन्दना) और न स्तुत्यपन से (त्वत् वीरतरः) आपसे अधिक अत्यन्त वीर पुरुष कोई (नहि जज्ञे) नहीं उत्पन्न हुआ।

भावार्थ—हे परम प्यारे जगदीश ! आप जैसा अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी, न कोई पूर्वकाल में हुआ, न अब कोई है, और न होगा। आप सबकी रक्षा करने वाले, सब धन के स्वामी और स्तुति के योग्य हैं। जो भद्र पुरुष, आपको ही महाबली, धन के मालिक और सबके रक्षक जानकर, आपकी स्तुति प्रार्थना करते और आपकी वैदिक आज्ञा अनुसार चलते हैं, उनका ही जन्म सफल है।

: ५७ :

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ उ० ७।२।१।२॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानरूप ज्ञानप्रद प्रभो ! (त्वं जनानाम् जामिः) आप प्रजा जनों के बन्धु (प्रियः मित्रः) सदा प्यारे मित्र (सखा) चेतनता से समान नाम वाले (सखिभ्यः ईड्यः असि) हम जो आपके सखा हैं उनसे आप सदा स्तुति के योग्य हैं।

भावार्थ—हे दयानिधे ! आप हम सबके सच्चे बन्धु और अत्यन्त प्यार करने वाले मित्र हैं। संसार में जितने बन्धु वा मित्र

हैं, ससारी लोग जब स्वार्थ कुछ नहीं पाते, तब इनमें कोई हमारा बन्धु वा मित्र नहीं रहता। केवल एक आप ही हैं जो बिना स्वारथ के हम पर सदा अनुग्रह करते हुए सदा बन्धु वा मित्र बने रहते हैं। इसलिए हम सबसे आप ही सदा स्तुति के योग्य हैं अन्य कोई भी नहीं।

: ५८ :

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तꣳहविष्मन्त ईडते॥ उ० ७।२।२।२॥

शब्दार्थ— (वृषः) प्रभु सुखों की वर्षा करने वाले (उ) निश्चय (देववाहनः) पृथिवी, वायु आदि सबके आधार होने से वाहन (अश्व) प्राण के (न) समान वर्तमान (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (समिध्यते) हृदय में अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है (तम्) आपकी (हविष्मन्त ईडते) भक्ति रूपी भेंट वाले महात्मा लोग स्तुति करते हैं।

भावार्थ—हे सर्वाधार परमात्मन्! आप ही पृथिवी वायु आदि सब देव और सब लोकों के आधार और सबके सुख दाता सबके जीवन के हेतु, प्राणवत् परम प्यारे सबके हृदय में अन्तर्यामी होकर वर्तमान हैं। हम सबको योग्य है कि ऐसे परम पूज्य परम-दयालु जगत्पति आपकी, अति प्रेम से भक्ति करें, जिससे हमारा सबका यह मनुष्य जन्म पवित्र और सफल हो।

: ५९ :

न षणं त्वा वयं वृषनवृषणः समिधीमहि।
अग्ने दीद्यतं बृहत्॥ उ० ७।२।२।३॥

शब्दार्थ—(वृषन्) हे कामना के पूरक अग्ने (वृषणः) तेरी भक्ति से नम्र और आर्द्रचित्त (वयम्) हम आपके सेवक (बृहत् दीद्यतम्) बहुत ही प्रकाशमान (वृषणम्) कामनाओं के पूरक

(त्वाम् समिधीमहि) आपका अपने हृदय में ध्यान धरते हैं।

भावार्थ—हे ज्ञान स्वरूप ज्ञान-प्रदातः! आप अपने भक्तों की सब योग्य कामनाओं को पूर्ण करते हैं। हम आपके प्यारे बच्चे, नम्रता से आपकी भक्ति करने के लिए, उपस्थित हुए हैं, आपका ही अपने हृदय में ध्यान धरते हैं। आप हम पर कृपा करें कि, हमारा मन सब कल्पना को छोड़ आपके ही ध्यान में, अच्छी प्रकार लग जावे, जिससे हमको शान्ति और आनन्द प्राप्त हो।

: ६० :

मन्द्रँ होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीडे स उ श्रवत्॥ उ० ७।२।३।३॥

शब्दार्थ—(मन्द्रम्) हर्षदायक (होतारम्) कर्म फल प्रदाता (ऋत्विजम्) सब ऋतुओं में यजनीय पूजनीय (चित्रभानुम्) विचित्र प्रकाशों वाले (विभावसुम्) अनेक प्रकार के प्रकाश के धनी ऐसे (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर की (ईडे) मैं स्तुति करता हूँ (सः) वह प्रभु (उ) अवश्य (श्रवत्) मेरी की हुई स्तुति को सुने।

भावार्थ—मनुष्य मात्र को परमात्मा का यह उपदेश है कि तुम लोग मेरी स्तुति प्रार्थना उपासना किया करो। जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को उपदेश करते हैं कि तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि किया करो, वैसे सबके पिता और परम गुरु ईश्वर ने भी, हमको अपनी अपार कृपा और प्यार से सब व्यवहार और परमार्थ का वेद द्वारा उपदेश किया है, जिससे हम सदा सुखी होवें। इसलिए हम, उस आनन्ददायक और कर्मफल प्रदाता सदा पूजनीय स्वप्रकाश परमात्मा की स्तुति करते हैं।

: ६१ :

इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके॥ ७।३।६।१॥

शब्दार्थ—(वरुण) हे सबसे श्रेष्ठ परमात्मन् ! आप (अद्य) अब (अवस्युः) अपनी रक्षा और आपके यथार्थ ज्ञान की इच्छा वाला मैं (त्वाम् आचके) आपकी सर्वत्र स्तुति करता हूँ (मे इमं हवम् श्रुधी) आप मेरी इस स्तुति समूह को सुनकर स्वीकार करो और (मृडय) हमें सुख दो।

भावार्थ—हे प्रभो ! जो आपके सच्चे प्रेमी भक्त हैं, उनकी प्रेमपूर्वक की हुई प्रार्थना को, आप सर्वान्तर्यामी; अपनी सर्वज्ञता से ठीक-ठीक सुनते हैं। अपने प्यारे भक्तों पर प्रसन्न हुए, उनको अपना यथार्थ ज्ञान और सर्व सुख प्रदान करते हैं। हम भी आपकी प्रार्थना उपासना करते हैं इसलिए हमें भी अपना यथार्थ ज्ञान देकर सदा सुखी करो।

: ६२ :

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः॥ ७।३।१३।१॥

शब्दार्थ—(ये अमृतस्य सूनवः) जो अमर परमेश्वर के पुत्र हैं (नः गिरः उपशृवन्तु) हमारी वाणियों को सुनें (नः) हमारे लिए (सुमृडीका भवन्तु) सदा सुखदायक हों।

भावार्थ—हे सज्जन सुखद ! आपकी कृपा के बिना, आप अजर अमर प्रभु के प्यारे पुत्र महात्मा सन्त जन नहीं मिलते। दयामय ! हम पर दया करें, कि आपके प्यारे सन्त जनों का समागम हमें मिले, उन महात्माओं की श्रद्धा भक्ति से सेवा करते हुए, उनसे ही सदुपदेश सुन अपने संदेहों को दूर कर सदा सुखी रहें।

: ६३ :

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥ उ० ७।३।१७।१॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर ! (उग्रस्य तव सख्ये) अति बलवान्

आपकी मित्रता में (मा भेम) हम किसी से न डरें (मा अमिष्म) न थकें (ते वृष्णः) कामना पूरक आपका (महत्) बड़ा (अभि-चक्ष्यम्) सर्वतःस्तुति योग्य (कृतन) कर्म है आपकी मित्रता से (तुर्वशम्) समीप स्थित (यदुम् पश्येम) मनुष्य को हम देखें।

भावार्थ—हे परमात्मन्! संसार में यह प्रसिद्ध है, कि जिसका कोई राजा आदि बलवान् मित्र बन जाता है, तब वह मनुष्य साधारण मनुष्य से नहीं डरता, प्रायः उसके अधीन सब मनुष्य हो जाते हैं। ऐसे ही जो पुरुष, प्रबल प्रतापी आप प्रभु की शरण में आ गये और आपको ही अपना मित्र बनाते हैं, वे किसी से भी नहीं डरते उलटा सबको अपना भाई जान, सबके हित में लगे रहते हैं, ऐसे सच्चे भक्तों की सब कामनाओं को आप पूर्ण करते हैं।

: ६४ :

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवी तुभ्येत्सो अज्यते रयिः॥

उ० ७।३।१६।१॥

शब्दार्थ—(यस्य अयं विश्वः आर्यः दासः) जिस परमेश्वर का यह सब आर्यगण सेवक भक्त (शेवधिपा) वेद निधि का रक्षक और (अरिः) प्रापक है उस (अर्ये) स्वामी (रुशमे) नियन्ता (पवी-रवी) वेदवाणी के पिता परमेश्वर में (तिरः) छिपा हुआ (चित्) भी (सः रयिः) वह वेद का धन (तुभ्य) तुझ भक्त के लिये (इत् अज्यते) अवश्य प्रकट किया जाता है।

भावार्थ—संसार में दो प्रकार के मनुष्य हैं, एक अनार्य अर्थात् अनाड़ी, वेद विरुद्ध सिद्धान्त को कहने और मानने वाले। दूसरे आर्य जो वेदानुसार सिद्धान्त को मानने वाले हैं। जो आर्य हैं वे वेदनिधि के रक्षक और प्रभु के सेवक भक्त हैं, वेदरूपी गुप्त महाधन, को उपयोग में लाकर आर्य लोग सदा सुखी रहते हैं।

: ६५ :

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ उ० ८।१।२।१॥

शब्दार्थ—(विश्वतः) सब पदार्थों वा (जनेभ्यः) सब प्राणियों से (परि) उत्तम गुणों के कारण श्रेष्ठतर (इन्द्रं हवामहे) परमेश्वर को बारम्बार अपने हृदय में हम स्मरण करते हैं । (वः) आपके (अस्माकम्) और हमारे सब लोगों के (केवलः) चेतन मात्र स्वरूप ही इष्ट देव और पूजनीय हैं ।

भावार्थ—हे चेतन स्वरूप प्रभो ! आप परमैश्वर्य वाले चेतन मात्र प्रभु की ही हम उपासना करते हैं । आप से भिन्न किसी जड़ वा चेतन मनुष्य, वा किसी प्राणी को अपना इष्टदेव और पूजनीय नहीं मानते, क्योंकि आप ही सब देवों के देव चेतना-स्वरूप अधिपति हैं । आपकी ही उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं, आप को छोड़ इधर-उधर भटकने से तो, हमारा दुर्लभ यह मनुष्य देह व्यर्थ चला जायगा, इसलिये हम सब, आपको ही अपना पूज्य और उपासनीय इष्ट-देव जान आप की उपासना और आपकी वेदोक्त आज्ञा पालने में मन को लगा कर मनुष्य देह को सफल करते हैं ।

: ६६ :

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ उ० ८।२।५।२॥

शब्दार्थ—जिस कारण यह परमेश्वर (अदाभ्यः) किसी से मारा नहीं जा सकता, (गोपा) सब ब्रह्माण्डों की रक्षा करने वाले सब जगतों को (धारयन्) धारण करने वाले (विष्णु) सर्वत्र व्यापक ईश्वर ने (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीनों पृथिवी, अन्तरिक्ष द्युलोकों का विधान किया हुआ है । (अतो धर्माणि धारयान्) इस कारण

सब धर्मों को वेद द्वारा धारण कर रहा है।

भावार्थ—हे विष्णो ! आपने ही वेद द्वारा अग्निहोत्रादि धर्मों को तथा सृष्टि के सब पदार्थों को धारण कर रखा है, आप के धारण वा रक्षण के बिना, किसी धर्म वा पदार्थ का धारण वा रक्षण नहीं हो सकता। आप ही सब लोकों, धर्मों और जगत् व्यवहारों के उत्पादक, धारक और रक्षक हैं। ऐसे सर्वशक्तिमान् आप को, जान और ध्यान करके ही हम सुखी हो सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं।

: ६७ :

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ उ० १।२।३।१॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमात्मन्। (सखायः) मित्र वर्ग (कण्वाः) मेधावी (त्वा) आपका (उक्थेभिः) वेद मन्त्रों से (जरन्ते) पूजन करते हैं और (त्वा यन्तः) आप को चाहते हुए (तदिदर्थाः) अनन्य भक्त (वयम्) हम (उ) भी आप को ही पूजते हैं।

भावार्थ—हे परम पूजनीय परमेश्वर ! संसार में महाज्ञानी, सब के मित्र, महानुभाव महात्मा लोग, वेदों के पवित्र मन्त्रों से आप का पूजन करते हैं। दयामय ! हम भी सांसारिक भोगों से उपराम हो कर आपको ही चाहते हुए आपकी शरण में आते हैं और आपको अपना इष्ट देव जानकर आपकी भक्ति में अपने मन को लगाते हैं।

: ६८ :

इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्ट पूर्व्यस्तुतिम्।
उदानँश शवसा न भन्दना ॥ उ० ८।२।१०।२॥

शब्दार्थ—(हरीणां स्थातः) हे सूर्यकिरणादि तेजों के स्थापक इन्द्र परमेश्वर ! (ते पूर्व्य स्तुतिम्) आपकी सनातन वेदोक्तस्तुति

को कोई (नकिः उदानश) नहीं पाता (शवसा न भन्दना) न तो बल से, और न तेज से।

भावार्थ—हे परमेश्वर! आप सूर्य चन्द्रादि सब ज्योतियों के उत्पादक और सब प्राणियों के सुख के लिये इन सूर्यादिकों को अपने २ स्थानों में स्थापन करने वाले हैं। आपकी महिमा अपार है और अपार ही आप की स्तुति है, उस का पार जानने का किस का बल वा शक्ति है, अर्थात् कोई पार नहीं पा सकता।

: ६६ :

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति। यो जागार तमयँसोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥ उ० ६।२।५।१॥

शब्दार्थ—(यो जागार) जो मनुष्य जागता है (तम् ऋचः कामयन्ते) उस को ऋग्वेद के मन्त्र चाहते हैं (यो जागार) जो जागता है (तम् उ) उसको ही (सामानि यन्ति) सामवेद के मन्त्र प्राप्त होते हैं, (यो जागार) जो जागता है (तम्) उसको (अयम् सोमःआह) यह सोमादि ओषधिगण कहता है कि (अहम् न्योकः) मैं नियत स्थान वाला (तव सख्ये अस्मि) तेरी मित्रता और अनुकूलता में वर्तमान हूं।

भावार्थ—जो पुरुषार्थी जागरणशील हैं, उन को ही ऋक् साम आदि वेद फलीभूत होते हैं और सोम आदि ओषधियें हाथ जोड़े उसके सामने खड़ी रहती हैं कि हम सब आप के लिये प्रस्तुत हैं। जो पुरुष निद्रा से बहुत प्यार करने वाले आलसी और उद्यम-हीन हैं, उनको न तो वेदों का ज्ञान प्राप्त होता है न ओषधियें ही काम देती हैं। इसलिये हम सब को जागरणशील और उद्योगी बनाना चाहिये।

: ७० :

नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकं निषेभ्यः ।
युञ्जे वाचँ शतपदीम् ॥ उ० ६।२।७॥

शब्दार्थ—(पूर्व सद्भ्यः) प्रथम से विराजमान हुए (सखिभ्यः नमः) मित्रों को नमस्कार करता हूँ (साकं निषेभ्यः नमः) साथ-साथ आकर बैठे मित्रों को नमस्कार करता हूँ (शतपदीम् वाचम् युञ्जे) सैकड़ों पदों वाली वाणी का मैं प्रयोग करता हूं ।

भावार्थ—सभा समाज वा यज्ञ आदि स्थलों में जब पुरुष जावे, तब हाथ जोड़ कर सब को नमस्कार करे । यदि बोलने का अवसर मिले, तब भी हाथ जोड़, सब मित्रों को नमस्कार करे, पीछे व्याख्यान आदि देवे । कभी भी विद्या वा धन वा जाति वा कुलीनता आदिकों का अभिमान न करे । इस वेद के पवित्र, मधुर और सुखदायक उपदेश को मानने वाला निरभिमान उत्तम पुरुष ही सदा सुखी हो सकता है ।

: ७१ :

शिक्षेयमस्मै दित्सेयँ शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ उ० ६।२।६॥

शब्दार्थ—(शचीपते) हे बुद्धि के स्वामिन् परमात्मन् ! (यत्) यदि (अहं गोपतिः स्याम्) मैं जितेन्द्रिय वाणी वा पृथिवी का स्वामी हो जाऊँ तो (अस्मै मनीषिणे) इस उपस्थित बुद्धिमान् जिज्ञासु को (शक्षेयम्) शिक्षा दूं और (दित्सेयम्) दान देने की इच्छा करूँ ।

भावार्थ—हे वेदविद्याऽधिपते अन्तर्यामिन् ! आप हम पर कृपा करें कि, हम जितेन्द्रिय होकर आपकी वेदरूपी वाणी के ज्ञाता होवें और वेदों का पाठ वा उनके अर्थ जानने की इच्छा वाले अधिकारियों को सिखलावें । आपकी कृपा से यदि हम

पृथ्वी वा धन के मालिक बन जायें तो अनाथों का रक्षण क
और विद्वान् महात्मा पुरुष सुपात्रों को दान देवें।

: ७२ :

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे॥ उ० ६।२।६॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर! (ते धेनुः) आपकी वेद वाणी रूप गौ (सूनृता) सच्ची (पिप्युषी) वृद्धि करने वाली (सुन्वते) सोमयाजी (यजमानाय) यजमान के लिये (गाम् अश्वम् दुहे) गौ अश्वादि धन को भरपूर करती है।

भावार्थ—हे परमेश्वर! आपकी वेद रूपी वाणी को जो पुरुष श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से पढ़ते-पढ़ाते और वेदोक्त महायज्ञादि उत्तम कर्मों को करते-कराते हैं। उनको ब्रह्मविद्या और गौ-घोड़ा आदि उपकारक पशु तथा धन प्राप्त होता है। वे धर्मात्मा पुरुष ही परमात्मा की उपासना में सदा सुखी रहते हैं।

: ७३ :

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि॥ उ० ६।२।११॥

शब्दार्थ—(उत वात नः पिता) और हे महाशक्ति वाले वायो! आप हमारे पालक (उत भ्राता) और सहायक (उत नः सखा) और हमारे मित्र (असि) हैं (सः) वह आप (नः जीवातवे कृधि) हमको जीवन के लिये समर्थ करो।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आप महासमर्थ और हमारे पिता, भ्राता, सखा आदि रूप हैं। हम पर कृपा करो कि हम ब्रह्मचर्यादि साधन सम्पन्न होकर, पवित्र और बहुत काल तक जीवन वाले बनें, जिससे हम अपना कल्याण कर सकें। आप महापवित्र और पतित पावन हैं, हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार

कर, हमें पवित्र, दीर्घजीवी बनावें, जिससे आपकी भक्ति और पर उपकार आदि उत्तम काम करते हुए हम अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकें।

: ७४ :

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
उ० ६।३।६॥

शब्दार्थ—(यजत्राः देवाः) हे यजनीय पूजनीय देवेश्वर प्रभो वा विद्वानो! हम लोग (कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम) कानों से सदा कल्याण को सुनें, (अक्षभिः भद्रं पश्येम) आंखों से कल्याण को देखें, (स्थिरैः अंगैः) दृढ़ हस्त, पाद, वाणी आदि अंगों से और (तनूभिः) देहों से (तुष्टुवांसाः) आपकी स्तुति करते हुए (यत्) जितनी (आयुःव्यशेमहि) आयु को प्राप्त होवें वह सब (देवहितम्) आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों की हितकारक हो।

भावार्थ—हे पूजनीय परमात्मन्! वा विद्वानो! हम पर ऐसी कृपा करो कि, हम कानों से सदा कल्याण कारक वेद मन्त्र और उनके व्याख्यान रूप सदुपदेशों को सुनें, आंखों से कल्याण-कारक अच्छे दृश्य को ही हम देखें, हम अपनी वाणी से आपके ओंकारादि पवित्र नामों को और सबके उपकारक प्रिय व सत्य शब्दों को कहें, ऐसे ही हमारे हस्त-पाद आदि अङ्ग और शरीर, आपकी सेवा रूप संसार के उपकार में लगें, कभी अपने शरीर और अंगों से किसी की हानि न करें। हम सम्पूर्ण आयु को प्राप्त हों वह आयु, आपकी सेवा वा विद्वान् धर्मात्मा महात्मा सन्त जनों की सेवा के लिये हो।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवेदिव इड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः॥

पू० १।२।८।७॥

शब्दार्थ—(जातवेदाः अग्निः) वेद के प्रकाशक, ज्ञानस्वरूप परमात्मा (अरण्योः) हृदय रूपी काष्ठों में (निहितः) अदृश्य रूप से वर्तमान है (गर्भ इव, इत्, सुभृतो, गर्भिणीभिः) जैसे गर्भवती स्त्रियों से गर्भाशय में अदृश्य भाव से गर्भ रहता है। वह जगदीश (जागृवद्भिः) सावधान (हविष्मद्भिः) भक्ति वाले प्रेमी (मनुष्येभिः) मनुष्यों से (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुति के योग्य है।

भावार्थ—हम मुमुक्ष पुरुषों के कल्याण के लिये वेदों का प्रकट करने वाला परमात्मा हमारे हृदयों में अन्तर्यामी रूप से सदा वर्तमान है। जैसे यज्ञ में अरणी रूप काष्ठों में अग्नि वर्तमान रहता है, ऐसे हम सबके हृदय में वह अदृश्य रूप से सदा वर्तमान है ऐसा सर्वगत परमात्मा, जागरणशील, सावधान, प्रेम-भक्ति वाले मनुष्यों से प्रतिदिन स्तुति के योग्य है। जो पुरुष सावधान होकर उस परमात्मा की प्रेम से भक्ति करेगा उसी का जन्म सफल होगा।

: ७६ :

सोमꣳराजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे।
आदित्यं विष्णुꣳसूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्॥

पू० १।२।१०।१॥

शब्दार्थ—हम (सोमम्) शांत स्वरूप, शान्तिदायक, सारे जगत् के जनक (राजानम्) सबके प्रकाशक (वरुणम्) श्रेष्ठ (अग्निम्) सर्वत्र व्यापक, पूज्य, ज्ञानस्वरूप, सन्मार्ग-प्रदर्शक, परमात्मा को (अनु आरभामहे) प्रतिदिन स्मरण करते हैं (च)

और (आदित्यम्) अखण्ड (विष्णुम्) सर्वत्र व्यापक (सूर्यम्) सब चराचर के आत्मा (ब्रह्माणम्) सबसे बड़े (बृहस्पतिम्) वेदवाणी के स्वामी को हम सदा स्मरण करते हैं।

भावार्थ—जिस परमेश्वर के यह नाम हैं, सोम, राजा, वरुण, अग्नि, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति ऐसे अनन्त नामों वाले परमात्मा को हम सदा स्मरण करते हैं। क्योंकि वह जगत्पति, परमेश्वर ही इस लोक और परलोक में हमें सुखी करने वाला है।

: ७७ :

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यꣳ सोम विश्वतः।
आपवस्व सहस्रिणः॥ उ० २।२।१४॥

शब्दार्थ—(सोम) परमात्मन्! (सहस्रिणः) बहुत संख्या वाले (रायः) मणि, मुक्ता, हीरे, स्वर्ण, रजत आदि धन के भरे (चतुरः) चारों दिशास्थ (समुद्रान्) समुद्रों को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (विश्वतः) सब ओर से (आ पवस्व) प्राप्त कराइये!

भावार्थ—हे परमात्मन्! हीरे, मोती, मणि आदि से पूर्ण जो चार दिशाओं में स्थित समुद्र हैं, हम उपासकों के लिये वह प्राप्त कराइये। किसी वस्तु की अप्राप्ति से हम कभी दुःखी न हों। आपकी कृपा से प्राप्त धन को, वेदविद्या की वृद्धि और आपकी भक्ति और धर्म प्रचार के लिये ही लगावें।

: ७८ :

यो अग्नि देव वीतये हविष्मां आविवासति।
तस्मै पावकमृडय॥ उ० २।२।५॥

शब्दार्थ—(यः) जो (हविष्मान्) प्रेम भक्ति रूपी हवि वाला उपासक पुरुष (देववीतये) अपनी दिव्य गति के लिये (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमात्मा का (आविवासति) उपासना रूपी पूजन

करता है (तस्मै) उसके लिये (पावक) हे अपवित्रों को भी पवित्र करने वाले परमात्मन्! (मृडय) आनन्द दीजिये।

भावार्थ—हे पावक! पवित्र स्वरूप, पवित्र करने वाले परमेश्वर! जो उपासक पुरुष सत्कर्मों को करता हुआ आपका प्रेमपूर्वक उपासनारूप पूजन करता है ऐसे अपने प्यारे उपासक को आप, दिव्यगति मुक्ति देकर सदा आनन्द दीजिए।

: ७६ :

त्वमित्सप्रथो अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः।
त्वां विप्रासः समिधानं दीदिव आविवासन्ति वेधसः॥

पू० १।१।४।८।

शब्दार्थ—(समिधानं) ध्यान किये हुए (दीदिवः) तेजोमय (त्रातः) रक्षक (अग्ने) परमात्मन्! (त्वं सप्रथः) आप सर्वतो-व्याप्त (ऋतः) सत्य और (कविः) ज्ञानी (असि) हैं। (त्वाम् इत्) आपको ही (वेधसः) मेधावी (विप्रासः) ज्ञानी लोग (आविवासन्ति) सर्व प्रकार से भजते हैं।

भावार्थ—हे परम प्यारे परमात्मन्! आप सबके रक्षक, तेजोमय, सत्य, सर्वव्यापक और ज्ञानी हैं। आपको ही ज्ञानी महात्मा लोग, भजन करते हुए अपने जन्म को सफल करके, अपने सत्संगी पुरुषों को भी आपकी भक्ति और ज्ञान का उपदेश करते हुए उनका भी कल्याण करते हैं।

: ८० :

त्वमिमा ओषधिः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वङ्गाः।
त्वमातनोरुर्वाऽन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥

पू० ६।३।१२।३॥

शब्दार्थ—(सोम) हे परमात्मन्! (त्वम्) आपने (इमाः) इन (विश्वाः) सब (ओषधिः) ओषधियों को (अजनयः) उत्पन्न

किया है (त्वम्) आपने ही (अप:) जलों को (त्वम्) और आपने ही (गा:) गौ आदि पशुओं को उत्पन्न किया है। (त्वम्) आपने ही (उरु) बड़े (अंतरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक और उसके पदार्थों को (आतनो:) फैलाया है (त्वम्) आपने ही (ज्योतिषा) ज्योति से (तम:) अन्धकार को (विववर्थ) छिन्न-भिन्न किया है।

भावार्थ—हे परम दयालु परमात्मन्! आपने हमारे कल्याण के लिए गेहूँ, चना, चावल आदि ओषधियों को उत्पन्न किया और आपने ही जलों को, गौ आदि उपकारक पशुओं को, और बड़े अन्तरिक्ष लोक और उसके पदार्थों को बनाया है। और सूर्य आदि ज्योतियों से अन्धाकार का भी नाश किया है। यह सब काम हम जो आपके प्यारे पुत्र हैं उनके लिए ही आपने किये हैं।

: ८१ :

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥ पू० ३।१।५।१॥

शब्दार्थ—(शूर) विक्रमी (इन्द्र) परमेश्वर (अस्य) इस (जगत:) जंगम के (ईशानम्) प्रभु और (तस्थुषः) स्थावर के भी (ईशानम्) स्वामी (स्वर्दृशम्) सूर्य के भी प्रकाश करने वाले (त्वा) आपको (अदुग्धा इव धेनवः) विना दुही हुई गौओं के समान अर्थात् जैसे बिना दुही हुई गौएँ अपने बच्छे (सन्तान) के लिए भागी आती हैं, ऐसे ही भक्ति से नम्र हुए हम आपके प्यारे पुत्र (अभिनोनुम:) चारों ओर से बारम्बार प्रणाम करते हैं।

भावार्थ—हे महाबली परमेश्वर! चराचर संसार के स्वामिन्, सूर्य आदि सब ज्योतियों के प्रकाशक! जैसे जंगल में अनेक प्रकार के घास आदि तृणों को खाकर गौएँ अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए भागी चली आती हैं, ऐसे ही प्रेम और भक्ति से नम्र हुए हम आपको बार-बार प्रणाम करते हुए आपकी शरण में आते हैं।

: ८२ :

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।

अग्मन्नृतस्य योनिम् ॥ उ० १।१।३॥

शब्दार्थ—(इन्दवः) शान्त स्वभाव परमेश्वर के उपासक लोग (ऋतस्य योनिम्) सत्यवेद-वेद के कर्ता (समुद्रम्) समुद्र के सदृश परम गम्भीर परमात्मा को (अच्छा) भली प्रकार, सानन्द (आ अग्मन्) प्राप्त होते हैं, (न) जैसे (धेनव गावः) दूध देने वाली गौएँ (अस्तम्) घर को प्राप्त होती हैं ।

भावार्थ—शान्त स्वभाव परमेश्वर के प्यारे, भगवद्भक्त उपासक लोग, वेद को प्रकट करने वाले परमात्मा को भली प्रकार प्राप्त होकर आनन्द को पाते हैं । जैसे दूध देने वाली गौएँ वन में घास आदि तृणों को खाकर अपने घरों में आकर सुखी होती हैं, ऐसे ही भगवद्भक्त, परमात्मा की उपासना करते हुए, उसी भगवान् को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहते हैं ।

: ८३ :

मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदाचनादभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥

उ० ८।३।५॥

शब्दार्थ—(मानुष) हे मनुष्यों के हितकारक ! (वसो) सबको अपने में बसाने वाले वा सबमें बसने वाले अन्तर्यामिन् प्रभो ! (ते) आपके (राधांसि) उत्पन्न किये गेहूँ, चना, चावल आदि अन्न (अस्मान्) हमको (कदाचन) कभी (मा आदभन्) दुःख न दें, न मारें । (ते) आपकी की हुई (ऊतयः) रक्षायें (मा) दुःख न देवें, (च) और (विश्व) सब (वसूनि) विद्या और सुवर्ण, रजतादि धन (नः) हम (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के लिए (आ उप मिमीहि) सर्वतः दीजिये ।

भावार्थ—हे सबके हितकारक सबके स्वामी अन्तर्यामी प्रभो ! आपके दिये अनेक प्रकार के अन्न आदि उत्तम पदार्थ हमको कभी कष्टदायक न हों। आपकी की हुई रक्षायें हमें सदा सुखदायक हों। भगवन् ! अनेक प्रकार के पापों का फल जो निर्धनता, दरिद्रता है, वह हमें कभी प्राप्त न हो। किन्तु हमारे देशवासी भ्राताओं को अनेक प्रकार के धन-धान्य से पूर्ण कीजिये और सबको धर्मात्मा बनाकर सदा सुखी बनाइये।

: ८४ :

अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः।
अरं शक्र परेमणि ॥ पू० ३।१।२।६॥

शब्दार्थ—(शक्र) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! (शूर) अनन्त सामर्थ्य युक्त (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावतः) आपके ही तुल्य (ते श्रवसे) आपके यश के लिए (अरम गमेम) सदा सर्वथा प्राप्त होवें और (परेमणि) मोक्षदायक समाधि में (अरम्) हम सर्वथा प्राप्त होवें।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप सर्वशक्तिमान् और अनन्त सामर्थ्य युक्त हैं। आप ही अपने तुल्य हैं। कृपया हमको ऐसा सामर्थ्य दीजिये, जिससे आपके यश और ध्यान में मग्न होकर हम मोक्ष को प्राप्त हो सकें।

: ८५ :

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ पू० २।२।१०।६॥

शब्दार्थ—(विश्वाः) सब (कृष्टयः) मनुष्य रूप (विशः) प्रजायें (अस्य) इस परमेश्वर के (मन्यवे) तेज के आगे (सम् नमन्त) इस तरह से झुकती हैं (समुद्राय इव सिन्धवः) जैसे समुद्र के लिए नदियें।

भावार्थ—जैसे सब नदियें समुद्र के सामने जाकर नम्र हो जाती हैं, ऐसे ही सब मनुष्य उस महातेजस्वी परमात्मा के सन्मुख नम्र हो जाते हैं, उस परमात्मा का तेज सबको दबा देने वाला है।

: ८६ :

त्वावतः पुरुवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ पू०२।२।१०।६॥

शब्दार्थ—(हरीणाम्) मनुष्य आदि सकल प्राणियों के (स्थातः) अधिष्ठाता ! (पुरुवसो) पुष्कल वास देने वाले । (प्रणेतः) उत्तम मार्ग दर्शक ! (इन्द्र) परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (त्वावतः) आप सदृश ही के (स्मसि) हैं ।

भावार्थ—दयामय परमात्मन् ! आप जैसा न कोई है, न हुआ, और न होगा इसलिए आपके सदृश आप ही हैं । भगवन् ! आप मनुष्य आदि सब प्राणियों के आश्रय देने वाले, सबके पथ प्रदर्शक हैं । सबको जानने वाले सबके अधिष्ठाता हैं । आपकी ही हम शरण में आए हैं ।

: ८७ :

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् ।
सुवीरमग्न आहुत ॥ पू० १।१।३।६॥

शब्दार्थ—(नक्ष्य) हे सेवनीय (विश्पते) प्रजापालक ! (आहुत) हे भक्तों से आह्वान किये हुए (अग्ने) परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (सुवीरम्) उत्तम भक्त पुरुषों वाले (द्युमन्तम्) प्रकाश स्वरूप (त्वा) आपका (नि धीमहे) निरन्तर ध्यान करते हैं ।

भावार्थ—हे सेवनीय प्रजा पालक भक्तवत्सल परमात्मन् ! हम आपके सेवक, आप महात्मा सन्तजनों के सेवनीय प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर का, सदा अपने हृदय में बड़े प्रेम से ध्यान करते हैं । आप दया के भण्डार अपने भक्तों का सदा कल्याण करते हैं ।

: ८८ :

वात आवातु भेषजꣳशम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ।। पू० २।१।६।१०।।

शब्दार्थ—हे इन्द्र परमात्मन् ! (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिए (शम्भु) रोगनिवारक (मयोभु) सुखदायक (भेषजम्) औषध को (वातः) वायु (आवातु) प्राप्त करावे और (नः) हमारी (आयूंषि) आयु को (प्रतारिषत्) विशेषकर बढ़ावे ।

भावार्थ—हे दयामय जगदीश ! आपकी कृपा से ही वायु की शुद्धि द्वारा और औषध के सेवन से बल, नीरोगता प्राप्त होकर आयु की वृद्धि और सुख की प्राप्ती होती है ।

: ८९ :

इन्द्र वयं महाधने इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजे वृत्रेषु वज्रिणम् ।। पू० २।१।४।६।।

शब्दार्थ—(वयम्) हम लोग (महाधने) बड़े युद्ध में (इन्द्रम्) परमात्मा को (हवामहे) पुकारें और (अर्भे) छोटे युद्ध में भी (वृत्रेषु वज्रिणम्) रोकने वाले शत्रुओं में दण्डधारी (युजम्) जो सावधान है उसी जगत्पति को पुकारें ।

भावार्थ—हम सबको योग्य है कि छोटे-बड़े बाह्य और आभ्यन्तर सब युद्धों में, उस परम पिता जगदीश की अपनी सहायता के लिए सदा प्रार्थना करें । वह पापियों के पाप कर्म का फल कष्ट देने के लिए सदा सावधान है । इसलिए हम उस प्रभु की शरण में आकर ही सब विघ्नों को दूर कर सुखी हो सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं ।

: ९० :

आपवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्ववत्सोम वीरवत् ।। पू० ३।१।३।।

शब्दार्थ—(इन्दो) करुणामृत सागर (सोम) परमात्मा ! आप अपनी कृपा से (गोमत्) गौओं से युक्त (अश्वत्) घोड़ों से युक्त (हिरण्यवत्) सुवर्णादि धन से युक्त (वीरवत्) पुत्र आदि सन्तान सहित (महीम् इषम्) बहुत अन्न को (आपवस्व) प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हे कृपासिन्धो भगवन् ! आप अपनी अपार कृपा से गौ, घोड़े सुवर्ण, रजत आदि धन और पुत्र, पौत्र आदि से युक्त अनेक प्रकार का बहुत अन्न हमें प्राप्त करावें। हमारे गृहों में गौ, घोड़े बकरी आदि उपकारक पशु हों, तथा अन्न, वस्त्र आदि उपयोग आने वाले अनेक पदार्थ हों, सुवर्ण चांदी हीरे मोती आदि धन बहुत हों, उस धन को हम सदा धार्मिक कामों में खर्च करते हुए लोक-परलोक में कल्याण के भागी बनें।

: ९१ :

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।
शं यद्गवे न शाकिने॥ पू० २।१।३।१॥

शब्दार्थ—हे प्रभु के प्रेमी जन ! (यत्) जो (गवे) पृथिवी के (न) समान (वः) तुम (सुते) स्तोता के लिए (शम्) सुखदायक हो (तत्) उसको (सत्वने) शत्रुओं के नाश करने वाले (शाकिने) शक्तिमान् (पुरुहूताय) वेदों में बहुत स्तुति किये गए इन्द्र के लिए (सचा) मिलकर (गाय) गायन कर।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि बाह्य आभ्यन्तर सब शत्रु विनाशक परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए उसके गुणों का बखान मिल-जुलकर करें। जैसे पृथिवी सबका आधार होने से सबको सुख दे रही है। ऐसे ही परमात्म देव सबका आधार और सबके सुखदायक है, उनकी सदा प्रेम से भक्ति करनी चाहिए।

: ९२ :

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ पू० १।१।३।१३॥

शब्दार्थ—(देवीः) परमेश्वर की दिव्य शक्तियें (नः) हमारे (अभिष्टये) मनोवाञ्छित पदार्थ की प्राप्ति के लिये (शम्) सुख-दायक (भवन्तु) होवें (नः) हमारी (पीतये) तृप्ति के लिये (शम्) सुखदायक होवें और (नः) हमारे लिये (शंयो) सब सुख की (अभिस्रवन्तु) सब ओर से वर्षा करें।

भावार्थ—सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की दिव्य शक्तियें, हमें मनोवाञ्छित सुख की दात्री होवें। वे ही प्रभु की अचिन्त्य दिव्य शक्तियें, हमें तृप्तिदायक होवें और हम पर सुख की वर्षा करें। इस संसार में हमें सदा सुखी रख कर मुक्ति धाम में सर्व दुःख निवृत्ति पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति करावें। ऐसी दयामय जगत्पति परमात्मा से नम्रता पूर्वक हमारी प्रार्थना है कि परम पिता जी ऐसी प्रार्थना को स्वीकार कर हमें सदा सुखी बनावें।

: ६३ :

पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति॥

उ० ५।२।८॥

शब्दार्थ—(पावमानीः) पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाली वेद की ऋचायें (स्वस्त्ययनीः) कल्याण करने हारी (ताभिः) उन के अध्ययन और मनन करने से मनुष्य (नान्दनम्) आनन्द को (गच्छति) प्राप्त होता है (च) और (पुण्यान्) पवित्र (भक्षान्) भोज्यों को (भक्षयति) भोजन करता है (च) तथा (अमृतत्वं) अमर भाव को अर्थात् मुक्ति के आनन्द को (गच्छति) प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—वेद की पवित्र ऋचायें, स्वाध्यायशील धार्मिक पुरुष को पवित्र करती और शरीर को नीरोग रख कर अनेक सुन्दर भोज्य पदार्थों को प्राप्त करती है और मुक्ति धाम तक पहुंचाती

है। क्योंकि वेदवाणी परमात्मा की दिव्यवाणी है उसका श्रवण, मनन, और निदिध्यासन करने से परमात्मा का ज्ञान और सब दुःखों को भञ्जन करने वाली परमात्मा की परा-भक्ति प्राप्त होती है। इसी से अधिकारी मुमुक्षु मोक्ष धाम को प्राप्त होता है।

: ९४ :

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः॥ उ० ५।२।८॥

शब्दार्थ—(येन पवित्रेण) पवित्र करने वाले जिस कर्म से (देवाः) विद्वान् (आत्मानम्) अपने आत्मा को (सदा पुनते) सदा पवित्र करते हैं (तेन सहस्रधारेण) उस अनन्त धाराओं वाले कर्म से (पावमानीः) पवित्र करने वाली वेदकी ऋचायें (नः पुनन्तु) हमें पवित्र करें।

भावार्थ—जिस प्रणव जप और वेदों के पवित्र मन्त्रों के स्वाध्याय रूप पवित्र कर्म से, प्रभु के उपासक, स्वाध्यायशील विद्वान् महात्मा लोग, अपने आत्मा को सदा पवित्र करते हैं, उस अनन्त धारण शक्तियों से सम्पन्न, ईश्वर प्रणिधान और वेद स्वाध्याय रूप कर्म से, सारे संसार को पवित्र करने वाली वेदों की ऋचाएं हम को पवित्र करें।

: ९५ :

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतꣳ सधस्थेषु।
महो दिवः चारुꣳसुकृत्ययेमहे॥ ऊ० २।२।३॥

शब्दार्थ—हे परमात्मन्! (महोदिवः) अनन्त आकाश के (सधस्थेषु) साथ वाले सब लोकों में और उनसे भी बाहिर व्यापक (नृम्णानि) धनों व बलों को (बिभ्रतम्) धारते हुए (चारुम्) आनन्द स्वरूप (तम् त्वा) उस अनेक वैदिक सूक्तों से स्तुति किये हुए आप को (सुकृत्यया) सुकर्म से (ईमहे) हम पाते हैं।

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! इस बड़े आकाश में और इससे बाहिर भी आप व्यापक होकर, सब धन और बल को धारण करने वाले आनन्द स्वरूप हो । ऐसे आप को उत्तम वैदिक कर्म करते हुए और वैदिक स्तोत्रों से ही आप की स्तुति करते हुए हम प्राप्त होते हैं ।

: ६६ :

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥ उ० २।१।१॥

शब्दार्थ—(सोम) हे शान्त स्वरूप परमात्मन् ! (अग्रियः) सबमें मुख्य आप (विश्वानि काव्या) सब स्तोत्रों और (वाचः) प्रार्थनाओं को (चित्राभिः) अनेक प्रकार की (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अभि) सब ओर से (पवस्व) पवित्र कीजिए ।

भावार्थ—हे शान्तिदायक शान्तस्वरूप परमात्मन् ! आप अपनी कृपा से आप के प्यारे पुत्र जो हम हैं उनसे अनेक वेद के पवित्र मन्त्रों से की हुई प्रार्थना को सुन कर, हम पर प्रसन्न हुए हमें शान्त और पवित्र कीजिए और हमारी सदा रक्षा कीजिये ।

: ६७ :

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उपब्रह्माणि नः शृणु ॥ उ० १।१।६॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) परमात्मन् ! (केशिना) वृत्ति रूप केशों वाले (ब्रह्मयुजा) ब्रह्म में योग करने वाले (हरी) आत्मा और मन दोनों (त्वा) आप को (आवहताम्) प्राप्त हों (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदोक्त स्तोत्रों को (उपशृणु) स्वीकार कीजिये ।

भावार्थ—हे दयामय परमेश्वर ! हम सब का जीव और मन जिनकी वृत्तियां ही केश के तुल्य हैं, ऐसे दोनों आप के ब्रह्मानन्द को प्राप्त होवें और हमारी यह भी प्रार्थना है कि, जब हम लोग

वेद के पवित्र मन्त्रों को प्रेम से पढ़ें, तब आप कृपा करके स्वीकार करें। जैसे दयालु पिता अपने पुत्र की तोतली वाणी से की हुई प्रार्थना को सुन कर बड़ा प्रसन्न होता है, ऐसे ही परम प्यारे पिताजी ! आप हमारी प्रार्थना को सुन कर परम प्रसन्न होवें।

: ९८ :

त्वं समुद्रिया अपोग्रियो वाच ईरयन।
पवस्व विश्वचर्षणे ॥ उ० २।१।२॥

शब्दार्थ—(विश्वचर्षणे) हे सर्वसाक्षिन् (अग्रियः) मुख्य (त्वम्) आप (समुद्रियाः) आकाशस्थ मेघ के (अपः) जलों और (वाचः) वेद वाणियों को (ईरयन्) प्रेरित करते हैं, वह आप (पवस्व) हमें पवित्र कीजिये।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमन्, जगदीश ! आप सबके पूज्य और सबके अग्रणी हैं। आप आकाश में स्थित बादलों के प्रेरक हैं। अपनी इच्छा से ही जहां-तहां वर्षा करते हैं। पवित्र वेदवाणी को आपने ही हमारे कल्याण के लिये प्रकट किया है। आप कृपा करें कि हम सब मनुष्यों के हृदय में उस वेदवाणी का प्रकाश हो। उसी में श्रद्धा हो, उसी से हमारा जीवन पवित्र हो।

: ९९ :

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ उ० ३।२।२॥

शब्दार्थ—(विश्ववित्) हे सर्वज्ञेश्वर ! (पवमानस्य) पवित्र करते हुये (ते) आप की (सर्गाः) वैदिक ऋचा रूपिणी धारायें (प्र असृक्षत) ऐसी छूटती हैं (न) जैसे (सूर्यस्य इव रश्मयः) सूर्य से किरणें निकलती हैं।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमन् जगदीश्वर ! पवित्र करते हुए आपसे वेद की पवित्र ऋचायें प्रकट होती हैं, जो ऋचायें

यथार्थ ज्ञान का उपदेश करती हुई मुक्ति धाम तक पहुँचाने वाली हैं। भगवन् ! जैसे सूर्य से प्रकट हुई किरणें सारे संसार का अन्धकार दूर करती हुई सब का उपकार कर रही हैं, ऐसे ही महा तेजस्वी प्रकाशस्वरूप आप से वेद की ऋचारूपी किरणें प्रकट होकर, सब संसार का अज्ञान रूपी अन्धकार दूर करती हुई उपकार कर रही है। यह आपकी सर्व संसार पर बड़ी कृपा है।

: १०० :

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
उ० ६।३।६॥

शब्दार्थ— (वृद्धश्रवाः इन्द्रः) सबसे बढ़ कर यश वाला वा सुनने वाला परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमारे लिए कल्याण को धारण करे। (विश्ववेदाः पूषा) सबको जानने और पालन करने वाला प्रभु (नः स्वस्ति) हमारे लिये सुख वा कल्याण को धारण करे। (अरिष्टनेमिः) अरिष्ट जो दुःख उसको (नेमिः) वज्र के तुल्य काटने वाला ईश्वर (तार्क्ष्यः) जानने व प्राप्त होने योग्य (नः स्वस्ति) हमारे लिये कल्याण को धारण करें। (बृहस्पतिः) बड़े २ सूर्य, चन्द्र, शुक्र, बुध, मंगल आदि ग्रह, उपग्रह, लोक, लोकान्तरों का धारक, पालक, मालिक, पोषक, प्रभु वा वेद चतुष्टयरूपी बड़ी वाणी का उत्पादक, रक्षक वा स्वामी (नः स्वस्ति) हम सब के लिये कल्याण को धारण करे।

भावार्थ—सबसे बढ़कर यशस्वी, सर्वज्ञ, सब का पालक इन्द्र, भक्तों के दुःखों को काटने वाला, जानने योग्य, सूर्यादि सब बड़े २ पदार्थों का जनक और हम सब के कल्याण के लिये वेदों का उत्पादक परमात्मा हम सब का कल्याण करे।

●

अथर्ववेद शतक

अथर्ववेद के चुने हुए ईश्वर भक्ति के
१०० मंत्रों का संग्रह

—अर्थ और भावार्थ सहित—

—स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

"वेद की विशेषता यही है कि यह सत्य विद्या है। वेद में कोई बात झूठ नहीं है वेद का एक एक वाक्य बुद्धि पूर्वक है और जो जो बात बुद्धि पूर्वक होती है, वह वह सत्य होती है।"

—आत्माराम अमृतसरी

: १ :

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ।।का० १।सू० १।म० १।।

शब्दार्थ—(ये त्रिपप्ताः) जो प्रसिद्ध इक्कीस देव (विश्वा रूपाणि) सब आकारों को (बिभ्रतः) धारण-पोषण करने वाले (परियन्ति) प्रति शरीर में यथायोग्य वर्तमान रहते हैं (तेषां बला) उन देवों के बलों को (वाचस्पतिः) वेद वाणी का रक्षक और स्वामी (मे तन्वः) मेरे शरीर के लिए (अद्य दधातु) अब धारण करे।

भावार्थ—हे वेद वाणी के पालक और मालिक परमात्मन् ! मेरे शरीर में जो ५ महाभूत, ५ प्राण, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण ये इक्कीस दिव्य शक्ति वाले देव वर्तमान हैं, जोकि सब शरीरों में सब आकार और रूपों को धारण करने वाले हैं, आप कृपा करके इन सबके बल को मेरे लिए धारण करें, जिससे मैं आपका सेवक, आत्मिक शारीरिक आदि बलयुक्त होकर, आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करता हुआ, मोक्ष आदि उत्तम सुख का भागी बनूं।

: २ :

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ।। १। १। २।।

शब्दार्थ—(वाचस्पते) हे वेदवाणी के स्वामिन् देव ! (देवेन मनसा सह) प्रकाश-स्वरूप और अनुग्रह वाली बुद्धि से युक्त आप (पुनः एहि) वाञ्छित फल देने के लिए बारम्बार हमारे समीप आवें (वसोः पते) हे धनपते ! हमें इष्ट फल देकर (नि रमय) सदा रमण कराओ आप जो फल देवें वह (मयि एव अस्तु) हमारे में बना रहे (मयि श्रुतम्) जो हम वेद, सच्छास्त्र पढ़ें, सुनें वे हमारे में बनें रहें।

भावार्थ—हे वाचस्पते ! धनपते ! आप हम सब पर कृपा करो, जो-जो हमें वांछित फल हैं उनका दान करो, हमारे हृदय में सदा अभिव्यक्त होकर हमें आनन्द में मग्न करो। जैसे कृपालु पिता अपने प्यारे बालक को वांछित फल-फूल देकर क्रीड़ा कराता हुआ प्रसन्न रखता है। ऐसे ही आप हमें अभिलषित फल देकर, हमारी यह प्रार्थना अवश्य स्वीकार करें कि, जो वेद, शास्त्र और महात्माओं के सदुपदेशों को हम सुनें वे कभी विस्मरण न हों।

: ३ :

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्। यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥ २०।३४।१॥

शब्दार्थ—(यः) जो (जातः एव) प्रकट होते ही (प्रथमः) सबसे मुख्य होता है (मनस्वान्) विशाल मन वाला (देवः) प्रकाशमान (क्रतुना) अपने स्वाभाविक ज्ञान बल से (देवान्) सूर्य चन्द्रादि दिव्य शक्ति वाले देवों को (परि अभूषत्) जिसने सब ओर से सजाया है (यस्य) और जिसके (शुष्मात्) बल से (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अभ्यसेताम्) कांपते है (नृम्णस्य मह्ना) जो अपने बल के महत्त्व से युक्त है (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्र) वह बड़े ऐश्वर्य और बल वाला इन्द्र है।

भावार्थ—जिस अनादि सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने अपने अनन्त ज्ञान और बल से सूर्य चन्द्रादि दिव्य देवों को रचा, सजाया और उन सबको अपने-अपने नियम में रक्खा है वह इन्द्र है।

: ४ :

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा। यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः॥ ३४।१७॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (सोमकामः) सोम-ब्रह्मानन्द रस की कामना करने वाले योगिजनों के अति प्रिय (हर्यश्वः) मनुष्यों में व्यापक (सूरिः) प्रेरक विद्वान् है (यस्मात्) जिस परमात्मा से (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (रेजन्ते) कांपते हैं (यः) जो (शम्बरम्) बादल में (च) और (यः) जो (शुष्णम्) सूर्य में (जघान) व्याप रहा है (यः एकवीरः) जो अकेला शूर वीर है (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वह बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर है।

भावार्थ—जो परमेश्वर सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमैश्वर्यवान् सब ऐश्वर्य का उत्पादक, ऐश्वर्य का दाता है और जो प्रभु आप एक-वीर होकर सारे संसार को अपने नियम में चला रहा है, उस महासमर्थ जगत्पिता की कृपा से ही पुरुष ऐश्वर्य और सुख को प्राप्त हो सकता है।

: ५ :

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥
१३।१५।५॥

शब्दार्थ—(अन्तरिक्षम् नः अभयम् करति) मध्य लोक हमारे लिए भय राहित्य करे (इमे उभे द्यावापृथिवी अभयम्) सब प्राणियों के निवास स्थान, यह दोनों द्युलोक पृथिवी लोक भय राहित्य को करें। (पश्चात् अभयम्) पश्चिम दिशा में हमको अभय हो। (पुरस्तात् अभयम्) पूर्व दिशा में अभय (उत्तरात्) उत्तर दिशा में (अधरात्) उत्तर दिशा से उलटी दक्षिण दिशा में (नः अभयम् अस्तु) हमें अभय हो।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! अन्तरिक्ष द्युलोक, पृथिवी, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा आदि यह सब आपकी कृपा से सदा

भय-राहित्य को करने वाले हों। हम सब निर्भय होकर आपकी प्रेम भक्ति में लग जावें।

: ६ :

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ १६।१५।६॥

शब्दार्थ—(मित्रात् अभयं) मित्र से अभय हो (अमित्रात् अभयम्) शत्रु से अभय (ज्ञातात् अभयम्) द्वेष्टा रूप से ज्ञात शत्रु से अभय (यः पुरः) ज्ञात से अन्य जो अज्ञात शत्रु उससे भी अभय हो (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) अभय हो (दिवा नः अभयम्) दिन में हमको भय-राहित्य हो (सर्वा आशाः) सब दिशायें (मम मित्रं भवन्तु) मेरी हितकारिणी होवें।

भावार्थ—हे सर्व भयहर्ता परमात्मन्। मित्र से हमें अभय, अर्थात् भय से अन्य हितफल, सर्वदा प्राप्त हो। शत्रु से अभय हो, जो ज्ञात शत्रु है उससे तथा अज्ञात शत्रु से भी भय-राहित्य हो, रात्रि में तथा दिन में अभय हो। पूर्व पश्चिम आदि सब दिशा, हमारे हित के करने वाली हों। यह सब फल आपकी कृपा से प्राप्त हो सकते हैं, आपकी कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।

: ७ :

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्। शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १६।६।१॥

शब्दार्थ—(शान्ता द्यौः) हमारे लिए द्युलोक सुखकारक हो, (शान्ता पृथिवी) भूमि सुखकारक हो, (शान्तम् इदम् उरु अन्तरिक्षम्) यह विस्तीर्ण मध्य लोक सुखकारक हो, (शान्ता उदन्वती आपः) समुद्र और सब जल सुखकारक हों (शान्ता नः सन्तु

ओषधीः) हमारे लिए गेहूँ, चना, चावल आदि सब परिपक्व अन्न सुखकारक हों ।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन् ! आपकी कृपा से द्युलोक, भूमि, अन्तरिक्ष, समुद्र, जल और सब प्रकार के अन्न, हमें सुखकारक हों । सब स्थानों में हम सुखी रहकर आपके अनन्त उपकारों को स्मरण करते हुए, आपके ध्यान में मग्न रहें आपसे कभी विमुख न होवें ऐसी हम सब पर कृपा करो ।

: ८ :

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ११।४।१॥

शब्दार्थ—(प्राणाय नमः) चेतनस्वरूप प्राणतुल्य सर्वप्रिय और सबको प्राण देने वाले परमेश्वर को हमारा नमस्कार है, (यस्य सर्वमिदं वशे) जिस प्रभु के वश में यह सब जगत् वर्तमान है, (यः भूतः) जो सत्य एक रस परमार्थ स्वरूप और (सर्वस्य ईश्वरः) सबका स्वामी है (यस्मिन्) जिस आधार स्वरूप प्रभु में (सर्वं प्रतिष्ठितम्) यह सब चराचर जगत् स्थिर हो रहा है ।

भावार्थ—हे परम पूजनीय चैतन्यमय परमप्रिय परमात्मन् ! आपको हमारा नमस्कार है । अनेक ब्रह्माण्ड रूप जगत् के स्वामी आप ही हैं, आपके ही अधीन यह सब कुछ है और आप ही इसके अधिष्ठान् हैं, क्षण-भर भी आपके बिना यह जगत् नहीं ठहर सकता ।

: ९ :

या ते प्राण प्रिया तनूर्या ते प्राण प्रेयसी । अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ११।४।९॥

शब्दार्थ—(या ते प्राण प्रिया तनूः) हे प्राणप्रिय परमात्मन् ! जो आपका स्वरूप प्यारा है (या उ ते प्राण प्रेयसी) और जो

आपका स्वरूप अति प्रिय है (अथो यद् भेषजम् तव) और आपका अमृतत्व प्रापक जो औषध है (तस्य नो धेहि जीवसे) वह हमें जीवन के लिए दो।

भावार्थ—हे परम प्यारे परमात्मन्! संसार-भर में आप जैसा कोई प्यारा नहीं है, प्यारे से भी प्यारे आप हैं। जो महा-पुरुष आपसे प्यार करते हैं, उनको अमृतत्व नाम मोक्ष का साधन अपनी अनन्य भक्ति और ज्ञान रूप औषध का दान आप करते हैं, जिसको प्राप्त होकर वे महात्मा सदा आनन्द में मग्न रहते हैं।

: १० :

प्राणः प्रजाः अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥११।४।१०॥

शब्दार्थ—(पिता पुत्रम् इव प्रियम्) जैसे दयालु पिता अपने प्यारे पुत्र को वस्त्र से आच्छादन करता है, वैसे ही (प्राणः) चेतन स्वरूप प्राण देव प्रभु (प्रजा अनुवस्ते) मनुष्य पशु, पक्षी आदि प्रजाओं के शरीरों में व्याप्त हो कर बस रहा है, (यत् च प्राणति) और जो जङ्गम वस्तु चलन आदि व्यापार कर रही है (यत् च न) और जो स्थावर वस्तु वह व्यापार नहीं करती, (प्राणः ह सर्वस्य ईश्वरः) उस चर-अचर स्वरूप सब जगत् का चेतन स्वरूप प्राण ही ईश्वर है, अर्थात् सब का प्रेरक स्वामी है।

भावार्थ—हे परमेश्वर! आप चराचर सब जगत् में व्याप रहे हैं, ऐसी कोई वस्तु वा स्थान नहीं, जहां आप की व्याप्ति न हो, आप ही सारे संसार के कर्ता, हर्ता और स्वामी हैं, सब की क्षण २ चेष्टाओं को देख रहे हैं, आप से किसी की कोई बात भी छिपी नहीं, इसलिये हमें सदाचारी और अपना प्रेमी भक्त बनावें, जिन को देख कर आप प्रसन्न होवें।

: ११ :

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते । प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ ११।४।१२॥

शब्दार्थ—(प्राणः विराट्) प्राण ही सर्वत्र विशेष रूप से प्रकाशमान है। (प्राणः देष्ट्री) प्राण सब प्राणियों को अपने २ व्यापार में प्रेरणा कर रहा है, (प्राणं सर्वे उपासते) ऐसे प्राण परमात्मा की सब लोग उपासना करते हैं, (प्राणः ह सूर्यः) प्राण ही सब जगत् का प्रकाशक और प्रेरक सूर्य है, (चन्द्रमाः) सब को आनन्द देने वाला प्राण ही चन्द्रमा है (प्राणम् आहुः प्रजापतिम्) वेद और वेदज्ञाता महापुरुष इस प्राण को ही सब प्रजाओं का जनक और स्वामी कहते हैं।

भावार्थ—हे चेतन देव जगत्पते प्रभो! आप सब स्थानों में प्रकाशमान हो रहे हैं, आप ही सब प्राणियों को अपने २ व्यापारों में प्रेर रहे हैं, आप की ही सब विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं, आप ही सब जगत् के प्रकाशक और प्रेरक होने से सूर्य, और आनन्द दायक होने से चन्द्रमा कहलाते हैं, सब महात्मा लोग, आप को ही सब प्रजाओं का कर्ता और स्वामी कहते हैं।

: १२ :

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११।४।११

शब्दार्थ—(प्राणो मृत्युः) प्राण ही मृत्यु है। (प्राणः तक्मा) प्राण ही आनन्द करने वाला है। (देवाः प्राणं उपासते) विद्वान् लोग सब के जीवन हेतु ईश्वर की उपासना करते हैं। (प्राणः ह) प्राण ही निश्चय से (सत्यवादिनम्) सत्यवादी मनुष्य को (उत्तमे लोके) उत्तम शरीर में अथवा श्रेष्ठ स्थान में (आ दधत्) धारण कराता है।

भावार्थ—वेदान्त शास्त्र निर्माता व्यास जी महाराज लिखते हैं, 'अत एव प्राणः,' जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि कर्ता होने से प्राण शब्द का अर्थ परमात्मा जानना चाहिये न कि प्राण वायु। इसलिये सब चेष्टाओं का कारण होने से परमात्मा का नाम प्राण है। ऐसा परमेश्वर ही हमारे जन्म मृत्यु का कर्ता और अनेकविध सुख का दाता है। प्राणरूप परमेश्वर ही सत्यवादी, सत्यकर्ता, सत्यमानी, और सच्चाई के ही प्रचार करने वाले पुरुष को उत्तम लोक प्राप्त कराता है। लोक शब्द का अर्थ उत्तम शरीर, उत्तम ज्ञान, और उत्तम स्थान है। यह बात निश्चित है कि ऐसे पुरुष को परमात्मा उत्तम लोक आदि प्राप्त कराता है।

: १३ :

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥ ४।१६।१॥

शब्दार्थ—(बृहन्) महान् वरुण श्रेष्ठ (एषाम् अधिष्ठाता) इन सब प्राणियों का नियन्ता प्रभु सब प्राणियों के कर्मों को (अन्तिकादिव पश्यति) समीपता से ही जानता है (यः तायन् मन्यते) जो वरुण स्थिर वस्तु को जानता है वही (चरन्) चरणशील को भी जानता है (सर्वं देवा इदं विदुः) चर-अचर, स्थूल-सूक्ष्म सब वस्तु मात्र को वरुण देव प्रभु जानते हैं।

भावार्थ—हे सर्वत्र व्यापक वरुण श्रेष्ठ प्रभो ! आप प्राणिमात्र के नियन्ता और उन सब के कर्मों को सब प्रकार से जानने वाले जिन से किसी का कोई काम भी छिपा नहीं है, दूरस्थ समीपस्थ चर-अचर स्थूल-सूक्ष्म इन सब ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ मात्र को जानने वाले सर्वत्र व्यापक महान् सब से श्रेष्ठ सब के उपासनीय भी आप ही हैं।

: १४ :

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् । द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥ ४।१६।२॥

शब्दार्थ—(यः तिष्ठति) जो खड़ा है (चरति) जो चलता है (यः वञ्चति) और जो ठगता है (यो निलायं चरति) जो निलीन अर्थात् अदृश्य हो कर चलता है (यः प्रतङ्कम्) जो कष्ट से वर्त्तता है इन सब को वरुण प्रभु जानते हैं (द्वौ संनिषद्य) दो पुरुष बैठ कर (यत् मन्त्रयेते) जो अच्छा वा बुरा गुप्त मन्त्रण करते हैं (तृतीयः वरुणः राजा) उन में तीसरे वरुण श्रेष्ठ राजा प्रभु (तद् वेद) अपनी सर्वज्ञता से उस सब को जानते हैं।

भावार्थ—हे वरुण राजन् ! जो खड़ा वा चलता वा ठगता वा छिप कर चलता वा दुःख से जीता है, इन सब को आप जानते हैं, जो दो पुरुष मिलकर, अच्छी वा बुरी गुप्त सलाह करते हैं, उन दोनों में तीसरे हो कर आप वरुण राजा उस सब को जानते हैं।

: १५ :

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता । उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥ ४।१६।३॥

शब्दार्थ—(उत् इयं भूमिः) और यह सम्पूर्ण पृथिवी (वरुणस्य राज्ञः) वरुण राजा के वश में वर्त्तमान है (दूरे अन्ता) जिस के किनारे बहुत दूर हैं (उत असौ बृहती द्यौः) ऐसा यह बड़ा द्युलोक भी उस वरुण राजा के वश में है (उतो समुद्रौ) पूर्व और पश्चिम दिशाओं के दोनों समुद्र (वरुणस्य कुक्षी) वरुण राजा का उदर

रूप हैं (उत अस्मिन् अल्पे उदके) इस थोड़े से जल में भी (निलीनः) वह वरुण राजा अन्तर स्थित हो कर वर्तमान है ।

भावार्थ—हे अनन्त वरुण राजन् ! यह सम्पूर्ण पृथिवी और जिस का अन्त नहीं ऐसा बड़ा यह द्युलोक तथा पूर्व पश्चिम के दोनों समुद्र, आप वरुण राजा के वश में वर्त्तमान हैं । हे प्रभो ! आप ही वापी, कूपादि थोड़े जलों में भी वर्त्तमान है, ऐसे सर्व-व्यापक आप को जान कर ही हम सुखी हो सकते हैं ।

: १६ :

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः । दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४।१६।४॥

शब्दार्थ—(उत यो द्याम् अतिसर्पात् परस्तात्) जो पुरुष द्युलोक से भी परे चला जाए (न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः) वह भी वरुण राजा से छूट नहीं सकता । (दिवः स्पशः प्रचरन्ति इदम् अस्य) इस वरुण के गुप्तचर दूत द्युलोक से निकल, इस पार्थिव स्थान को प्राप्त होकर (सहस्राक्षाः) हजारों आँखों वाले (भूमिम् अति पश्यन्ति) पृथिवी को अत्यन्त देखते हैं अर्थात् पृथिवी के सब वृत्तान्त को जानते हैं ।

भावार्थ—हे वरुण श्रेष्ठ प्रभो ! यदि कोई पुरुष द्युलोक से भी परे चला जाए, तो भी आपसे कभी छूट नहीं सकता, आपके गुप्तचर दूत अर्थात् आपकी दिव्य शक्तियें, द्युलोक और पृथ्वी-लोक में सर्वत्र व्यापक हो रही हैं, उन शक्तियों द्वारा आप सबको जानते है, आपसे अज्ञात कुछ भी नहीं है ।

: १७ :

सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् । संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमिनोति तानि ॥ ४।१६।५॥

शब्दार्थ—(रोदसी अन्तरा यत्) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में जो प्राणिमात्र वर्तमान हैं (यत् परस्तात्) और जो हमारे सम्मुख वा हमसे परे वर्तमान हैं (सर्वं तद्) उन सबको (विचष्टे) वरुण राजा भली प्रकार देखते हैं, (जनानाम् निमिषः) प्राणियों के नेत्रस्पन्दादि सर्व व्यवहार (अस्य संख्याताः) इस वरुण के गिने हुए हैं (श्वघ्नी अक्षान् इव तानि निमिनोति) जैसे जुआरी अपनी जय के लिए जुए के पासों को फैंकता है, ऐसे ही सब प्राणियों के पुण्य पाप कर्मों के फलों को वरुण राजा देते हैं।

भावार्थ—हे श्रेष्ठ प्रभो ! ऊपर का द्युलोक, नीचे का पृथिवी लोक और इन दोनों में जो प्राणिमात्र वर्तमान हैं और जो हमारे सम्मुख वा हमसे परे वर्तमान हैं इन सबको आप अपनी सर्वज्ञता से देख रहे हैं। जैसे कोई जुआरी पासों को जानकर फैंकता है ऐसे आप ही प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्मों के फल-प्रदाता है।

: १८ :

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् । त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥ ५।११।४॥

शब्दार्थ—(स्वधावन् वरुण) हे प्रकृति के स्वामिन् वरुण ! (न त्वत् अन्यः कवितरः) आपसे बढ़कर कोई सर्वज्ञ नहीं है (न मेधया धीरतरः) न बुद्धि में आपसे बढ़कर कोई बुद्धिमान् है (त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ) आप उन सब ब्रह्माण्डों को भली प्रकार जानते हैं (सः चित् नु त्वत् जनः मायी बिभाय) वह जो अनेक प्रकार की प्रज्ञा वाला है वह भी आपसे डरता है।

भावार्थ—हे स्वामिन् वरुण ! आपसे बढ़कर कोई बुद्धिमान् नहीं है, आप उन सब ब्रह्माण्डों और उनमें रहने वाले सब प्राणियों को ठीक-ठीक जानने वाले हैं। कोई पुरुष कैसा ही बुद्धिमान् चालाक वा छली, कपटी क्यों न हो, वह भी आपसे डरता है।

: १६ :

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्च नोनः । तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ १०।८।४४॥

शब्दार्थ—(अकामः) प्रभु सब कामनाओं से रहित हैं, (धीरः) धीर, बुद्धि के प्रेरक हैं (अमृतः) अमर हैं, ('स्वयं भवतीति' स्वयंभूः) आप ही होते हैं किसी से उत्पन्न होकर सत्ता को नहीं प्राप्त होते अर्थात् अजन्मा हैं (रसेन तृप्तः) आनन्द से तृप्त है (न कुतः च न ऊनः) किसी से भी न्यून नहीं हैं। (तम् धीरम् अजरम् युदानम् आत्मानम्) उस धीर जरा रहित युवा आत्मा आप प्रभु को (विद्वान् एव) जानने वाला ही (मृत्योः न विभाय) मृत्यु से नहीं डरता।

भावार्थ—हे भवहारिन् परमात्मन्! आप अकाम, धीर, अमर और अजन्मा हैं सदा आनन्द से तृप्त हैं, आप में कोई न्यूनता नहीं हैं। आप जो कि धीर, अजर, युवा, अर्थात् सदा एक रस आत्मा को जानने वाला महात्मा ही, मृत्यु से कभी नहीं डरता। आप निर्भय हैं, आपको जानने वा मानने वाला महापुरुष भी निर्भय हो जाता है।

: २० :

भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः। भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः॥ ६।१२८।२॥

शब्दार्थ—(नः) हमारे लिए (मध्यं दिने) मध्याह्न काल में (भद्राहम्) शोभन दिन अर्थात् सुखद दिन हो तथा (नः) हमारे लिए (सायम्) सूर्य के अस्तकाल में भी (भद्राहम् अस्तु) पवित्र दिन हो तथा (अह्नाम् प्रातः) दिनों के प्रातःकाल में भी (नः) हमारे लिए (भद्राहम्) पवित्र दिन हो तथा (रात्री) सब रात्रि (नः)

हमारे लिए (अहाहम्) शुभ समय वाली हों।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन् ! आपकी कृपा से हमारे लिए प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल और रात्रिकाल शुभ हों, अर्थात् सब काल में हम सुखी हों और आपको सदा स्मरण करते तथा आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करते हुए पवित्रात्मा बनें, कभी आपको भूलकर आपकी आज्ञा के विरुद्ध चलने वाले न बनें और अपने समय को व्यर्थ न खोवें। ऐसी हमारी प्रार्थना को आप कृपा कर स्वीकार करें।

: २१ :

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः।
स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ ७।१७।१॥

शब्दार्थ—(धाता) सारे संसार का धारण करने वाला परमात्मा (नः) हमारे लिए (रयिम्) विद्या, सुवर्णादि धन को (दधातु) धारण करे अर्थात् देवे, वही प्रभु (ईशानः) सबके मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ और (जगतस्पतिः) जगत् का पालक है (सः) वह (नः) हमें (पूर्णेन) वृद्धि को प्राप्त हुए धन से (यच्छतु) जोड़ देवे अर्थात् हमको पूर्ण धनी बनावे।

भावार्थ—हे सर्वजगत् धारक परमात्मन् ! हम आर्य लोग जो आपकी सदा से कृपा के पात्र रहे हैं जिन पर आपकी सदा कृपा बनी रही है ऐसे आपके प्यारे पुत्रों को विद्या, स्वर्ण, रजत, हीरे, मोती आदि धन प्रदान करें, क्योंकि आप महा समर्थ और शरणागतों के सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं, हम भी आपकी शरण में आये हैं, इसलिए आप सबके स्वामी हमको पूर्ण धनी बनाओ, जिससे हम किसी पदार्थ की न्यूनता से कभी दुःखी वा पराधीन न होवें, किन्तु सदा सुखी हुए आपके ध्यान में तत्पर रहें।

: २२ :

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश । इ इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ ७।८७।१॥

शब्दार्थ—(यः रुद्रः अग्नौ) जो दुष्टों को रुदन कराने वाला रुद्र भगवान्, अग्नि में (यः अप्सु अन्तः) जो जलों के मध्य में (यः वीरुध ओषधीः) जो अनेक प्रकार से उत्पन्न होने वाली ओषधियों में (आविवेश) प्रविष्ट हो रहा है, (यः इमा विश्वा भुनानि) जो रुद्र इन दृश्यमान सर्व भूतों के उत्पन्न करने में (चाक्लृपे) समर्थ है (तस्मै रुद्राय नमो अस्तु अग्नये) उस सर्व जगत् में प्रविष्ट ज्ञान स्वरूप रुद्र के प्रति हमारा वारम्वार नमस्कार हो ।

भावार्थ—हे दुष्टों को रुलाने वाले रुद्र प्रभो ! आप अग्नि जल और अनेक प्रकार की ओषधियों में प्रविष्ट हो रहे हैं और आप चराचर सब भूतों के उत्पन्न करने में महा समर्थ हैं, इसलिए सर्वजगत् के स्रष्टा और सब में प्रविष्ट ज्ञान स्वरूप ज्ञान प्रद आप रुद्र भगवान् को हम वारम्बार सविनय प्रणाम करते हैं, कृपा करके इस प्रणाम को स्वीकार करें।

: २३ :

पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने । सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ता अमर्त्य-स्त्वं नः ॥ ८।३।२०॥

शब्दार्थ—हे अग्ने ! (पश्चात्) पश्चिम (पुरस्तात्) पूर्व (अधरात्) नीचे वा दक्षिण (उत्तरात्) उत्तर दिशा से (कविः) सर्वज्ञ आप (काव्येन) अपनी सर्वज्ञता और रक्षण व्यापार करके (परिपाहि) सर्वथा रक्षा करें (सखा) हमारे सखा रूप आप (सखा-यम्) और आपके सखा रूप जो हम उनकी रक्षा कीजिये (अजरः)

जरा वृद्धावस्था से रहित आप (जरिम्णे) अत्यन्त जीर्ण जो हम उनकी रक्षा कीजिये (अमर्त्यः त्वम्) अमर आप (मर्तान् नः) मरण-धर्मा जो हम उनकी रक्षा कीजिये।

भावार्थ—हे ज्ञानमय ज्ञानप्रद परमात्मन्! आप अपनी सर्व-ज्ञता और रक्षा से पूर्व आदि सब दिशाओं में हमारी रक्षा करें। आप ही हमारे सच्चे मित्र हैं, आप जरा-मरण से रहित अजर-अमर हैं, हम तो जरा-मरण युक्त हैं आप के विना हमारा कोई रक्षक नहीं, हम आप की शरण में आये हैं आप ही रक्षा करें।

: २४ :

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृनुतां संविदाने। यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापा-नाभ्यां गुपितः शतं हिमाः॥ २।२८।४॥

शब्दार्थ—हे मनुष्य! (त्वा) तुमको (द्यौः पिता) द्यु लोकपिता (पृथिवी माता) माता रूप पृथिवी (संविदाने) आपस में एकता को प्राप्त हुए (जरा मृत्युं कृणुताम्) वृद्धावस्था पूर्वक मृत्यु को करें अर्थात् दीर्घ आयु वाला करें (अदितेः) अखण्डनीय पृथिवी की (उपस्थे) गोद में (प्राणापानाभ्यां गुपितः) प्राण-अपान से रक्षित हुआ (शतं हिमाः) सौ वर्ष पर्यन्त (यथा जीवाः) जिस प्रकार से तू जीवन धारण करे वैसे तुझे द्युलोक और पृथिवी दीर्घ आयु वाला करें।

भावार्थ—परमेश्वर मनुष्य को आशीर्वाद देते हैं कि, हे मनुष्य! जैसे पुरुष अपनी माता से उत्पन्न हो कर उस माता की गोद में स्थित रहता है और अपने पिता से पालन पोषण को प्राप्त होता है, ऐसे ही पृथिवी रूपी माता से उत्पन्न हो कर, उस पृथिवी की गोद में रहता हुआ तू मनुष्य, द्युलोक रूप पिता से पालन पोषण को प्राप्त हो रहा है। द्युलोक और पृथिवी तेरे अनुकूल हुए, सौ वर्ष पर्यन्त जीने में सहायता करें। तू सारी आयु में अच्छे २

कर्म करता हुआ, ब्रह्मज्ञान और प्रभु-भक्ति द्वारा मोक्ष-सुख को प्राप्त हो।

: २५ :

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः।
शुचिः पावक ईड्यः॥ ८।३।२६॥

शब्दार्थ—(अग्निः) वह ज्ञान स्वरूप परमात्मा (रक्षांसि) नाना प्रकार से दुःखदायक जो दुष्ट पापी राक्षस उन को (सेवति) विनाश करता है। कैसा है वह प्रभु जो (शुक्रशोचिः) प्रज्वलित प्रकाश स्वरूप और (अमर्त्यः) मरण से रहित (शुचिः) शुद्ध (पावकः) शुद्ध करने वाला (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है।

भावार्थ—हे दुष्ट विनाशक पतित पावन ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! दुष्ट राक्षसों के नाश करने वाले, अमर, शुद्ध स्वरूप, शरणागत पतितों के भी पावन करने वाले, संसार में आप ही स्तुति करने योग्य हैं। धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष यह चार पुरुपार्थ आप की स्तुति प्रार्थना उपासना से ही प्राप्त होते हैं अन्य की स्तुति से नहीं, इसलिये हम लोग आपको ही मोक्ष आदि सब सुख दाता जानकर, आपकी ही शरणागत हुए, आप की स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं।

: २६ :

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ ३।३०।१॥

शब्दार्थ—हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारा (सहृदम्) जैसे अपने लिये सुख चाहते हो ऐसे दूसरों के लिये भी समान हृदय रहो (सांमनस्यम्) मन से सम्यक् प्रसन्नता और (अविद्वेषम्) वैर-विरोध आदि रहित व्यवहार को आप लोगों के लिये (कृणोमि) स्थिर करता हूँ तुम (अघ्न्या) हनन न करने योग्य गाय (वत्सं

जातमिव) उत्पन्न हुए बछड़े पर प्रेम से जैसे वर्तती है वैसे (अन्योऽन्यम्) एक दूसरे से (अभिहर्यत) प्रेमपूर्वक कामना से वर्ता करो।

भावार्थ—परमकृपालु परमात्मा हमें उपदेश देते हैं, कि हे मेरे प्यारे पुत्रो ! तुम लोग आपस में एक दूसरे के सहायक और आपस में प्रेम करने वाले बनो, आपस में वैर विरोध आदि कभी मत करो, जैसे गौ अपने नवीन उत्पन्न हुए बछड़े से अत्यन्त प्रेम करती और उसकी सर्वथा रक्षा करती है, ऐसे आप लोग आपस में परम प्रेम करते हुए एक दूसरे की रक्षा करो, कभी आपस में वैर-विरोध आदि न किया करो, तभी आप लोगों का कल्याण होगा अन्यथा कभी नहीं। यह उपदेश आप का कल्याण करने वाला है इसको हमें कभी नहीं भूलना चाहिये।

: २७ :

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तराहिता। ब्रह्मेद-मूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम्॥ १०।२।२५॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मणा) परमात्मा ने (भूमिः) पृथिवी (विहिता) बनाई (ब्रह्म) परमेश्वर ने (द्यौः) द्युलोक को (उत्तरा) ऊपर (हिता) स्थापित किया (ब्रह्म) परमात्मा ने ही (इदम्) यह (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक (ऊर्ध्वम्) ऊपर (तिर्यक्) तिरछा और नीचे (व्यचो-हितम्) व्यापा हुआ रक्खा है।

भावार्थ—एशिया, यूरुप, अमरीका और अफ्रीका आदि खण्डों से युक्त सारी पृथिवी और पृथिवी में रहने वाले सारे प्राणी परमात्मा ने रचे हैं। उस परमात्मा ने ही सूर्य से ऊपर का हिस्सा जिसको द्युलोक कहते हैं वह भी ऊपर स्थापित किया और मध्य-का यह अन्तरिक्ष लोक जो ऊपर और नीचे तिरछा सर्वत्र फैला हुआ है उस परमात्मा ने बनाया।

: २८ :

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ १०।८।२९॥

शब्दार्थ—(पूर्णात्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा से (पूर्णम्) सम्पूर्ण यह जगत् (उदचति) उदय होता है (पूर्णम्) यह पूर्ण जगत् (पूर्णेन) पूर्ण परमात्मा से (सिच्यते) सींचा जाता है। (उतो तदद्य विद्याम) नियम से आज हम जानेंगे (यत:) जिस परमात्मा से (तत्) वह जगत् (परिषिच्यते) सींचा जाता है।

भावार्थ—सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा से यह संसार सर्वत्र पूर्णतया उत्पन्न हुआ। उस पूर्ण परमात्मा ने ही इस जगत् रूपी वृक्ष का सिचन किया है, उस परमात्मा के जानने में हमें विलम्ब नहीं करना चाहिये क्योंकि हमारे सब के शरीर क्षणभंगुर हैं। ऐसा न हो कि हमारी मन-की-मन में रह जाय और हमारा शरीर नष्ट हो जाय। इसलिये वेद ने कहा 'तदद्य विद्याम्', उस परमात्मा को हम आज ही जान लेवें।

: २९ :

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति। तदेव मन्येहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥ १०।८।१६॥

शब्दार्थ—(यत:) जिस परमात्मा की प्रेरणा से (सूर्य:) सूर्य (उदेति) उदय होता है (अस्तम्) अस्त को (यत्र) जिस में (गच्छति) प्राप्त होता है। (तत् एव्) उसको ही (ज्येष्ठम्) सब से बड़ा (अहम् मन्ये) मैं मानता हूं (तत् उ) उस को (किंचन) कोई भी (नात्येति), उल्लंघन नहीं कर सकता :

भावार्थ—जिस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने यह तेज:पुंज सूर्य उत्पन्न किया, जिस जगदीश्वर की प्रेरणा से यही सूर्य अस्त होता है, उस परमात्मा को ही मैं सब से श्रेष्ठ और सब से बड़ा मानता

हूं। ऐसे समर्थ प्रभु को कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। उसकी आज्ञा में ही सारे सूर्य चन्द्र आदि सब लोक लोकान्तर वर्तमान हैं। उस परमात्मा को उल्लंघन करने की किसी की भी शक्ति नहीं है।

: ३० :

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति। देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥ १०।८।३२॥

शब्दार्थ—ईश्वर (अन्ति सन्तम्) पास रहने वाले उपासक को (न जहाति) छोड़ता नहीं (अन्ति सन्तम्) पास रहने वाले भगवान् को जीव (न पश्यति) देखता नहीं। (देवस्य) परमात्मा के (काव्यम्) वेदरूप काव्य को (पश्य) देख (न ममार) मरता नहीं और (न जीर्यति) न ही बूढ़ा होता है।

भावार्थ—जो ईश्वर का भक्त ईश्वर की भक्ति करता है वह परमेश्वर के समीप है। उस पर परमात्मा सदा कृपादृष्टि रखते हैं यही उनका न छोड़ना है। अज्ञानी नास्तिक लोग जो ईश्वर की भक्ति से हीन हैं वे, परमात्मा के सर्वव्यापक होने से सदा समीप वर्तमान को भी नहीं जान सकते। यह परमात्मा अजर-अमर है उसका काव्य वेद भी सदा अजर-अमर है। मुमुक्षु जनों को चाहिये कि उस अजर-अमर परमात्मा के अजर-अमर काव्य को सदा विचारा करें जिससे लोक-परलोक सुधर सकें।

: ३१ :

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्। वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत्॥ १०।८।३३॥

शब्दार्थ— (अपूर्वेण) जिससे पूर्व कोई नहीं है सब का मूल कारण जो परमात्मा उससे (इषिताः) प्रेरित (वाचः) वेदवाणी है (यथायथम्) यथायोग्य अर्थात् यथार्थ बात को (ताः) वे (वदन्ति) कहती हैं। (वदन्तीः) निरूपण करने वाली वेदवाणियां

(यत्र गच्छन्ति) जो २ निरूपण करती हैं (तत् महत्) उस बड़े (ब्राह्म-णम्) ब्रह्म को (आहुः) निरूपण करती हैं ।

भावार्थ—परमात्मा सब का कारण और अनादि है । उस पहले कोई भी न था । उस दयामय परमात्मा ने हम पर कृपा करके यथार्थ अर्थ के निरूपण करने वाले वेद प्रकट किये । वह वैदिक ज्ञान जहां २ प्रचार को प्राप्त हुआ उस २ देश के पुरुषों को आस्तिक धार्मिक और ज्ञानी बना दिया । उन ज्ञानी पुरुषों ने ही यथाशक्ति वैदिक सभ्यता फैलाई । जिस सभ्यता का कुछ २ प्रतिभास योरुप, अमरीका, भारत आदि देशों में दिखाई देता है । यदि उन देशों में वैदिक ज्ञान पूरा २ फैल जावे तो वे सब मनुष्य पूरे धार्मिक, आस्तिक और ज्ञानी बन कर अपने देशों का उद्धार कर सकें ।

: ३२ :

देवा पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये । उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः । ११।१।२७॥

शब्दार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग (पितरः) ज्ञानी लोग (मनुष्याः) साधारण मनुष्य (च) और (गन्धर्वाः) गाने वाले (अप्सरसः) आकाश में चलने वाले पुरुष हैं, ये सब (दिवि) आकाश में वर्तमान (दिवि-श्रितः) सूर्य के आकर्षण में ठहरे हुए (सर्वे देवाः) सब गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) परमात्मा से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ।

भावार्थ—बड़े-बड़े भारी विद्वान् और पृथिवी आदि लोक ज्ञानी और मननशील मनुष्य, गाने बजाने वाले और आकाश में विचरने वाले पुरुष जो हैं ये सब, उस जगदीश्वर से उत्पन्न होकर सूर्य के आकर्षण में ठहरे हुए उस परमात्मा के आश्रय में वर्तमान हैं ।

: ३३ :

यच्च श्वसिति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा । उच्छिष्टा-
ज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः । ११।७।२३॥

शब्दार्थ—(यत् च) जो प्राणी (प्राणेन) प्राणवायु से (प्राणति) श्वासों का ऊपर नीचे आना जाना रूप व्यापार को करता है अथवा घ्राण इन्द्रिय से गन्ध को सूंघता है (यत् च पश्यति चक्षुषा) और जो प्राणी नेत्र से नील पीत आदि रूप को देखता है (सर्वे) वे सब प्राणी (उत शिष्टात्) प्रलय काल में जगत् के नाश हो जाने पर भी शेष रहा जो ब्रह्म उसी से सृष्टिकाल में (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए तथा (दिवि देवा दिवि श्रितः) द्युलोक में स्थित द्युलोक में रहने वाले सब देव उसी से उत्पन्न हुए हैं।

भावार्थ—हे सर्वदा अचल जगदीश्वर ! जो प्राणी, प्राणों से श्वास-निश्वास लेते और जो घ्राण से गन्ध को सूंघते तथा नेत्र से नील पीत आदि रूप को देखते हैं और जो द्युलोकादि में स्थिर हो कर वर्तमान देव हैं, वे सब आप से ही उत्पन्न हुए हैं; प्रलयकाल में सब कार्य जगत् के नाश हो जाने पर भी आप वर्तमान रहते और उत्पत्तिकाल में आप ही सारे संसार को उत्पन्न करते हैं।

: ३४ :

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः । उच्छिष्ट
इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् । ११।७।१॥

शब्दार्थ—(उच्छिष्टे) बाकी रहे परमात्मा में (नाम) पदार्थों का नाम (रूपम्) और आकार (आहितः) स्थित है। (च) और (उच्छिष्टे लोक आहितः) उसी में पृथिवी आदि लोक स्थित हैं। (उच्छिष्टे) उसी ईश्वर में ही (इन्द्रः च अग्निः) बिजली और अग्नि भी और (विश्वमन्तः समाहितम्) सारा संसार स्थित है।

भावार्थ—प्रभु का नाम उच्छिष्ट इसलिये है कि प्रलयकाल में

सब प्राणी और लोक-लोकान्तर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, परन्तु परमात्मा एक रस वर्तमान रहते हैं। ऐसे सर्वाधार परमात्मा में सब संसार के शब्द रूप नाम, आकार और लोकान्तर भी स्थित हैं। उस भगवान् के आश्रय ही इन्द्र अर्थात् बिजली, वायु जीव, और भौतिक अग्नि स्थित है। इस सर्वाधार परमात्मा के आश्रय ही सारा संसार स्थित है।

: ३५ :

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्। आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः। ११।७।२॥

शब्दार्थ—(उच्छिष्टे) उस परमात्मा में (द्यावापृथिवी) द्युलोक, पृथिवी (विश्वम् भूतम्) सब वस्तुमात्र (समाहितम्) स्थित हैं। (आपः) जल (समुद्र) समुद्र (चन्द्रमा) चन्द्रमा (वातः) वायु (उच्छिष्टे) उस परमात्मा में (आहिताः) स्थित हैं।

भावार्थ—उस परमेश्वर के आश्रय ही सब वस्तुमात्र ठहरी हुई हैं। उस परमात्मा के आश्रय जल, समुद्र, चन्द्र और वायु ठहरा हुआ है, अर्थात् भूत भौतिक सारा संसार उस परमात्मा के आश्रय ही ठहरा हुआ है।

: ३६ :

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम्। ब्रह्मेममग्निं पुरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे॥ १०।२।२१॥

शब्दार्थ—(पुरुषः) मनुष्य (ब्रह्म) ज्ञान द्वारा (श्रोत्रियम्) वेद ज्ञानी आचार्य को (आप्नोति) प्राप्त होता है। (ब्रह्म) उस ज्ञान से ही (इमम्) इस (परमेष्ठिनम्) सबसे ऊपर ठहरने वाले परमात्मा को प्राप्त होता है। (ब्रह्म) ज्ञान द्वारा (इमम् अग्निम्) इस भौतिक अग्नि को और (ब्रह्म) ज्ञान द्वारा ही (संवत्सरम्) वर्ष को (ममे) गिनता है।

भावार्थ—इस संसार में चतुर जिज्ञासु पुरुष वेदवेत्ता आचार्य को प्राप्त करता है। उस आचार्य के उपदेश से परम ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। उस वेद द्वारा ही पुरुष भौतिक अग्नि, सूर्य, बिजली आदि दिव्य ज्योतियों को और उनके कार्यों को जानकर महाविद्वान् हो जाता है।

: ३७ :

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ १०।८।१॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (भूतम् च भव्यम् च) अतीत-काल, भविष्य काल और वर्तमान काल इन तीनों कालों और इनमें होने होने वाले सब पदार्थों को यथावत् जानता है (सर्वं यः च अधितिष्ठति) सब जगत् का जो अपने विज्ञान से उत्पन्न पालन और प्रलय कर्ता, सबका अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है (स्वः यस्य च केवलम्) जिसका सुख ही स्वरूप है। (तस्मै ज्येष्ठाय) उस सबसे उत्कृष्ट, सबसे बड़े (ब्रह्मणे नमः) परमात्मा को हमारा नमस्कार हो।

भावार्थ—हे विज्ञानानन्द स्वरूप परमात्मन्! आप तीनों कालों और इनमें होने वाले सब पदार्थों के ज्ञाता, अधिष्ठाता, उत्पादक, पालक, प्रलयकर्ता, सुखस्वरूप और सुखदायक हो, ऐसे जगद्वन्द्य जगत् पिता आप परमेश्वर को प्रेम से हमारा बारम्बार प्रणाम हो।

: ३८ :

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ १०।७।३२॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिस परमेश्वर के (भूमिः) पृथिवी आदि पदार्थ (प्रमा) यथार्थ ज्ञान की सिद्धि होने में साधन हैं तथा जिसके

भूमि पाद के समान है। (उत) और (अन्तरिक्षम्) जो सूर्य और पृथिवी के बीच का मध्य आकाश है (उदरम्) उदर स्थानीय है। (दिवम्) द्युलोक को (यः चक्रे मूर्धानम्) जिस परमात्मा ने मस्तक स्थानीय बनाया है। (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) बड़े (ब्रह्मणे नमः) परमात्मा को हमारा नमस्कार हो।

भावार्थ—हमारे पूज्य गौतमादिक ऋषियों ने अनुमान लिखा है 'क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं, कार्यत्वात्, घटवत्।' पृथिवी और पृथिवी के बीच वृक्षादिक जितने उत्पत्तिमान् पदार्थ हैं, ये सब किसी कर्ता से उत्पन्न हुए हैं, कार्य होने से, घट की तरह। जैसे घट को कुम्हार बनाता है वैसे सारे संसार का निमित्त कारण परमात्मा है। उसी भगवान् का बनाया हुआ अन्तरिक्ष लोक उदर स्थानीय है। उसी परमात्मा ने मस्तक रूप द्युलोक को बनाया है। ऐसे महान् ईश्वर को हमारा नमस्कार है।

: ३६ :

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ १०।७।३३।

शब्दार्थ—(पुनर्णवः) सृष्टि के आदि में वारम्बार नवीन होने वाला सूर्य और चन्द्रमा (यस्य) जिस परमात्मा के (चक्षुः) नेत्र समान हैं (यः) जिस भगवान् ने (अग्निम्) अग्नि को (आस्यम्) मुख समान (चक्रे) रचा है। (तस्मै ज्येष्ठाय) उस सबसे बड़े वा सबसे श्रेष्ठ (ब्रह्मणे नमः) परमात्मा को हमारा नमस्कार है।

भावार्थ—यहां सूर्य और चांद को जो वेद भगवान् ने परमात्मा की आँख बताया है, इसका यह अर्थ कभी नहीं कि वह जीव के तुल्य चर्ममय आँखों वाला है, किन्तु जीव की आँखें जैसे जीव के अधीन हैं ऐसे ही उस परमात्मा के सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, दिशा उपदिशा आदि अधीन हैं इस कहने से यह तात्पर्य है।

यदि कोई आग्रह से परमेश्वर को साकार मानता हुआ सूर्य चांद उसकी आँखें बनावे तो अमावस की रात्री में न सूर्य है न चांद है, इसलिए उपर्युक्त कथन ही सच्चा है।

: ४० :

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोभवन्। दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १०।७।३४॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिस भगवान् ने (वातः) ब्रह्माण्ड की वायु को (प्राणापानौ) प्राणापान के तुल्य बनाया। (अङ्गिरसः) प्रकाश करने वाली जो किरणें हैं वह (चक्षुः अभवन्) आँख की न्याईं बनाईं। (यः) जो परमेश्वर (दिशः) दिशाओं को (प्रज्ञानीः) व्यवहार के साधन सिद्ध करने वाली बसाता है, (तस्मै ज्येष्ठाय) ऐसे बड़े अनन्त (ब्रह्मणे) परमात्मा को (नमः) हमारा बारम्बार नमस्कार है।

भावार्थ—जिस जगदीश्वर प्रभु ने समष्टि वायु को प्राणापान के समान बनाया, प्रकाश करने वाली किरणें जिसकी चक्षु की न्याईं हैं अर्थात् उनसे ही रूप का ग्रहण होता है। उस परमात्मा ने ही सब व्यवहार को सिद्ध करने वाली दश दिशाओं को बनाया है। ऐसे अनन्त परमात्मा को हमारा बारम्बार प्रणाम है।

: ४१ :

यः श्रमात् तपसो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे। सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १०।७।३६॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (श्रमात्) अपने श्रम अर्थात् प्रयत्न से और (तपसः) अपने ज्ञान वा सामर्थ्य से (जातः) प्रसिद्ध होकर (सर्वान् लोकान्) सब लोकों में (समानशे) सम्यक् व्याप रहा है। (यः) जिसने (सोमम्) ऐश्वर्य को (केवलम्) अपना ही (चक्रे) बनाया (तस्मै ज्येष्ठाय) उस सबसे श्रेष्ठ वा बड़े (ब्रह्मणे

नमः) परमात्मा को हमारा नमस्कार है ।

भावार्थ—परमात्मा परम पुरुषार्थी, पराक्रमी और परमश्वर्य-वान् हुआ सब जगत् का अधिष्ठाता है । कई लोग जो परमात्मा को निष्क्रिय अर्थात् कुछ कर्ताधर्ता नहीं है, ऐसा मानते हैं । उनको इन मन्त्रों की तरफ ध्यान देना चाहिए, जो स्पष्ट कह रहे हैं कि परमात्मा बड़ा पुरुषार्थी, पराक्रमी, बड़ा बलवान् और परमैश्वर्य-वान् होकर सब जगत् को बनाता है । परमात्मा अपने बल से ही अनन्त ब्रह्माण्डों को बनाते, पालते, पोषते और प्रलय काल में प्रलय भी कर देते हैं, ऐसे समर्थ प्रभु को वारंवार हमारा प्रणाम है ।

: ४२ :

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे । तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥ १०।७।३८॥

शब्दार्थ—(महत्) बड़ा (यक्षम्) पूजनीय ब्रह्म (भुवनस्य मध्ये) जगत् के बीच (तपसि) अपने सामर्थ्य में (क्रान्तम्) परा-क्रमयुक्त हो कर (सलिलस्य) अन्तरिक्ष की (पृष्ठे) पीठ पर वर्त-मान है । (तस्मिन्) उस ब्रह्म में (य उ के च देवाः) जो कोई भी दिव्य लोक हैं वे (श्रयन्ते) ठहरते हैं । (इव) जैसे (वृक्षस्य शाखाः) वृक्ष की शाखाएँ (स्कन्धः परित) घड़ और पीठ के चारों ओर होती हैं ।

भावार्थ—अनन्त आकाश के बीच परमेश्वर की महिमा में पृथिवी आदि अनन्त लोक ठहरे हुए हैं । जैसे वृक्ष की शाखाएँ वृक्ष के धड़ में लगी होती हैं ऐसे ही उस परमेश्वर के आश्रय सब लोक लोकान्तर वर्तमान हैं ।

: ४३ :

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु । यो देवमुत्तरावन्त-
मुपासातै सनातनम् ।। १०।८।२२।।

शब्दार्थ—(यः) जो ज्ञानी पुरुष (उत्तरावन्तम्) अत्युत्तम गुण वाले (सनातनम्) सदा एक रस (देवम्) स्तुति के योग्य परमेश्वर को (उपासाते) उपासना करता है वह (भोग्यः) भाग्यशील (भवत्) है (अथ) और (अन्नम्) जीवन के साधन अन्नादि पदार्थों को (अदत्) उपयोग में (बहु) बहुत प्राप्त करता है।

भावार्थ—जो महानुभाव, उस परम प्यारे सर्वगुणालंकृत सनातन परमात्मा की प्रेम से भक्ति करता है वही भाग्यवान् है, उसी को परमात्मा, अन्नादि भोग्य पदार्थ प्राप्त कराता है, वह महापुरुष अन्नादि पदार्थों को अतिथि आदि के सत्कार रूप परोपकार में लगाता हुआ और आप भी उन पदार्थों को भोगता हुआ सुखी होता है।

: ४४ :

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ।। १०।८।२३।।

शब्दार्थ—(एनम्) इस परमात्मा को (सनातनम्) विद्वान् पुरुष सनातन (आहुः) कहते हैं। (उत्) और (अद्य) आज (पुनर्णवः) नित्य नया (स्यात्) होता जाता है। (अहोरात्रे) दिन और रात्रि दोनों (अन्यो अन्यस्य) एक दूसरे के (रूपयोः) दो रूपों में से (प्रजायेते) उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ—उस परमप्यारे प्रभु के उपासक महानुभावों को नित्य नये-से-नये प्रभु के अनन्त गुण प्रतीत होते हैं, जैसे दिन से रात और रात से दिन, नये-से-नये प्रतीत होते हैं।

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुः यावदग्निः । ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै काम नम इत् कृणोमि ॥ ९।२।२०॥

शब्दार्थ—(यावती) जितने कुछ (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूलोक (वरिम्णा) अपने फैलाव से फैले हुए हैं, (यावत) जहां तक (आपः) जल धाराएं (सिष्यदुः) बहती हैं और (यावत्) जितना कुछ (अग्निः) अग्नि वा विजली है (तत्) उस से (त्वम्) आप (ज्यायान्) अधिक बड़े (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) बड़े पूजनीय (असि) हैं, (तस्मै ते) उस आप को (इत्) ही (काम) हे कामना करने योग्य परमेश्वर ! (नमः कृणोमि) नमस्कार करता हूं ।

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य, पृथिवी आदि पदार्थों का उत्पन्न करने वाला और जानने वाला है । आकाशादि सबसे बड़ा है । उसी को हम प्रणाम करें और उसी की उपासना करें ।

: ४६ :

ज्यायन् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो । ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ ९।२।२३॥

शब्दार्थ—(काम) हे कामनायोग्य (मन्यो) पूजनीय प्रभो ! (निमिषतः) पलकें मारने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि से और (तिष्ठतः) स्थावर वृक्ष पर्वतादि से (ज्यायन्) आप अधिक बड़े (असि) हैं और (समुद्रात्) आकाश व जलनिधि से (ज्यायान्) अधिक बड़े (असि) हैं । (शेष ४५वें मन्त्र की नाईं ।)

भावार्थ—परमेश्वर ! आप चर-अचर संसार से और आकाश

और जलनिधि से बहुत बड़े हैं। ऐसे आपको ही मैं बार-बार नमस्कार करता हूं।

: ४७ :

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि॥ ६।२।२४॥

शब्दार्थ—(न वै चन) न तो कोई (वातः) वायु (कामम्) कामनायोग्य परमेश्वर को (आप्नोति) प्राप्त होता है (न अग्निः) न ही अग्नि (सूर्यः) और सूर्य (उत) और (न चन्द्रमाः) न ही चन्द्रमा प्राप्त हो सकता है। (ततः) उन सब से आप बड़े और पूजनीय हो। उस आपको ही मैं बार २ प्रणाम करता हूं।

भावार्थ—उस महान् सर्वव्यापक परमात्मा को वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि नहीं पहुंच सकते। इन सब को अपने शासन में चलाने वाला वह प्रभु ही बड़ा है। उस आपको ही हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

: ४८ :

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथा वयं भगवन्तः स्याम। अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥ ६।१०।२०॥

शब्दार्थ—(सूयवसात्) सुन्दर अन्न भोगने वाली प्रजा (भगवती) बहुत ऐश्वर्य वाली (हि) ही (भूयाः) होवो। (अथा) फिर (वयम्) हम लोग (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्य वाले होवें (अघ्न्ये) हे हिंसा न करने वाली प्रजा! (विश्वदानीं) समस्त दानों की क्रिया का (आचरन्ती) आचरण करती हुई तू हिंसा न करने वाली गौ के समान (तृणम्) घास व अल्प मूल्य वाले पदार्थों को (अद्धि) खाओ (शुद्धम् उदकं पिब) शुद्ध जल पान करो।

भावार्थ—परमात्मा वेद द्वारा हमें उपदेश देते हैं—हे मेरी प्रजाओ ! जैसे गौ साधारण घास खाकर और शुद्ध जल पी कर दुग्ध घृतादिकों को देकर उपकार करती है। ऐसे तुम भी थोड़े खर्च से आहार-व्यवहार करते हुए संसार का उपकार करो। आपका सादा जीवन हो।

: ४६ :

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्। पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति। ११।४।५॥

शब्दार्थ—(यदा) जब (प्राणः) जीवन दाता परमेश्वर ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) बड़ी (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्ययर्षीत्) सींच दिया (तत्) तब (पशवः) 'पश्यन्तीति पशवः' आंखों से देखने वाले जीवमात्र (प्रमोदन्ते) बड़ा हर्ष मनाते हैं। (नः) हमारी (महः) बढ़ती (वै) अवश्य (भविष्यति) होगी।

भावार्थ—प्राणिमात्र का जीवनदाता परमेश्वर जब वर्षा द्वारा पृथिवी को पानी से तर कर देते हैं, तो मनुष्यादि प्राणी बड़े हर्ष को प्राप्त होते हैं कि इस वर्षा से अनेक प्रकार के सुन्दर अन्न, फल व फूल उत्पन्न होकर हमें लाभदायक होंगे।

: ५० :

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते। नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः॥ ११।४।७॥

शब्दार्थ—हे (प्राण) जीवनदाता परमेश्वर (आयते) आते हुए पुरुष के हित के लिऐ (ते नमः) आपको नमस्कार (अस्तु) हो। (परायते) बाहिर जाते हुए पुरुष के लिये (ते नमः) आपको नमस्कार हो। (तिष्ठते) खड़े हुए पुरुष के हित के लिये (नमः) आपको नमस्कार हो। (उत) और (आसीनाय) बैठे हुए पुरुष के हित के लिये (ते नमः) आपको नमस्कार हो।

भावार्थ—मनुष्यमात्र को चाहिये कि अपने किसी बन्धुवर्ग व मित्र के आने-जाने में परमात्मा से प्रार्थना करे और अपने लिये भी उस परमात्मा से हर एक चेष्टा में प्रार्थना करे, जिससे अपने मित्रों के और अपने काम निर्विघ्नता से सम्पूर्ण हों।

: ५१ :

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो माऽनुतिष्ठतु ॥ ११।४।२४॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (अस्य) इस (सर्वजन्मनः) अनेक जन्म और (सर्वस्य चेष्टताः) सब चेष्टा करने वाले कार्य जगत् का (ईशे) ईश्वर है, वह परमेश्वर (अतन्द्रः) आलस्य रहित (धीरः) बुद्धिमान् (प्राणः) जीवनदाता (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान द्वारा (मा अनु) मेरे साथ २ (तिष्ठतु) ठहरा रहे।

भावार्थ—परमेश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ, जीवनदाता, जगदीश से हमारी प्रार्थना है कि हे भगवन्, हमें वैदिक ज्ञान में प्रवीण करते हुए सदा सुखी करें और सदा शुभ कामों में प्रेरणा करते रहें।

: ५२ :

उर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते।
न सुप्त-मस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ ११।४।२५॥

शब्दार्थ—(सुप्तेषु) सोते हुए प्राणियों पर वह प्राण नामक परमात्मा (ऊर्ध्वः) ऊपर रह कर (जागार) जागता है। (न नु) कभी नहीं (तिर्यक्) तिरछा (निपद्यते) गिरता। (सुप्तेषु) सोते हुओं में (अस्य सुप्तम्) इस परमात्मा का सोना (कश्चन) किसी ने भी (न अनु शुश्राव) परम्परा से नहीं सुना।

भावार्थ—सब प्राणी निद्रा आने पर सो जाते हैं परन्तु जीवनदाता परमेश्वर कभी सोते नहीं। कभी टेढ़े गिरते भी नहीं।

कभी किसी मनुष्य ने इस परमात्मा को सोते हुए सुना भी नहीं ।

: ५३ :

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्र स महादेवः । सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।। १३ ४।३,४,५।।

शब्दार्थ— (सः) वह परमेश्वर (धाता) पोषण करने वाला और (स विधर्ता) वही परमेश्वर विविध प्रकार से धारण करने वाला है । (स वायुः) वह परमात्मा महाबली है । (उच्छ्रितम्) और ऊंचा वर्तमान (नभः) प्रबन्ध कर्ता व नायक है (सः) वह परमेश्वर (अर्यमा) सब से श्रेष्ठ और श्रेष्ठों का मान करता है । (स वरुणः) वह श्रेष्ठ (स रुद्रः) वह भगवान् ज्ञानवान् है । (स महादेवः) वह महादानी है । (सः) वह परमात्मा (अग्निः) व्यापक (स उ सूर्यः) वही प्रेरक है । (स उ) वही (एव) निश्चय करके (महायमः) बड़ा न्यायकारी है ।

भावार्थ—इस परमेश्वर के अनन्त नाम जैसे ऋग्वेदादि में कहे हैं, वैसे इस अथर्व में भी अनेक नाम कहे हैं । जैसे कि धाता, विधर्ता, नभः, अर्यमा, वरुण, महादेव, अग्नि, सूर्य, महायम इत्यादि ।

: ५४ :

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।। नाऽष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।। १३।४।१६,१७,१८।।

शब्दार्थ—(न द्वितीयः) न दूसरा (न तृतीयः) न तीसरा (न चतुर्थः) न चौथा (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है । (न पञ्चमः) न पाँचवां (न षष्ठः) न छटा (न सप्तमः) न सातवां (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है । (न अष्टमः) न आठवां

(न नवमः) न नवां (न दशमः) न दसवां (अपि उच्यते) ही कहा जाता है ।

भावार्थ—परमात्मा एक है । उस से भिन्न कोई भी दूसरा तीसरा चौथा आदि नहीं है । उस एक की ही उपासना करनी चाहिए । वही परमात्मा सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, एक रस है । उसकी उपासना करने से ही मुक्ति धाम को पुरुष प्राप्त हो सकता है ।

: ५५ :

स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणति यच्च न । तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव । सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । १३।४।१६, २०, २१॥

शब्दार्थ—(सः) वह परमेश्वर (सर्वस्मै) सब संसार को (विपश्यति) विविध प्रकार से देखता है । (यत् प्राणति) जो श्वास लेता है (यत् च न) और जो सांस नहीं लेता (तम् इदम्) उस परमात्मा को यह सब (सहः) सामर्थ्य (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है । (स एषः) वह आप (एकः) एक (एकवृत्) अकेला वर्तमान (एक । एव) एक ही है । (अस्मिन्) इस परमेश्वर में (सर्वे देवाः) पृथिवी आदि सब लोक (एकवृतः भवन्ति) एक परमात्मा में वर्तमान रहते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा प्राणी-अप्राणी सबको देख रहे हैं । वह परमेश्वर अपनी सामर्थ्य से सब लोकों का आधार हो कर सदा एक रस, एक रूप वर्तमान हैं । वेद ने कैसे सुन्दर स्पष्ट शब्दों में बार-बार परमेश्वर की एकता का निरूपण किया है ।

: ५६ :

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥ ७।५०।८॥

शब्दार्थ—(मे) मेरे (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में (कृतम्) कर्म है। (मे सव्ये) मेरे बाएँ हाथ में (जय) जीत (आहितः) स्थित है। मैं (गोजिद्) भूमि को जीतने वाला (अश्वजित्) घोड़े जीतने वाला (धनं जयः) धन को जीतने वाला और (हिरण्यजित्) सुवर्ण जीतने वाला (भूयासम्) होऊँ।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मेरे दाहिने हाथ में कर्म या उद्यम दे। बाएं हाथ में विजय दे। आप की कृपा से मैं भूमि को जीतने वाला और घोड़े, धन तथा सुवर्ण जीतने वाला होऊँ। परमात्मन् ! अगर मैं आप की कृपा से उद्यमी बन जाऊँ, तब पृथिवी, अश्व गौ आदि पशु, सुवर्ण, धन आदि की प्राप्ति कोई कठिन नहीं। इसलिये आप मुझे उद्यमी बनाएँ। धनी हो कर आप सुखी और संसार को भी लाभ पहुँचाऊँ।

: ५७ :

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ १३।१।४५॥

शब्दार्थ—(सूर्यः) सबका चलाने वाला परमात्मा (द्याम्) प्रकाशमान इस सूर्य को (सूर्यः) वह सर्वप्रेरक (पृथिवीम्) पृथिवी को (सूर्यः) वह सर्वनियामक (आपः) प्रत्येक काम को (अतिपश्यति) देख रहा है। (सूर्यः) वह सर्वनियता (भूतस्य) संसार का (एकम्) एक (चक्षुः) नेत्ररूप जगदीश्वर (दिवम्) आकाश पर और (महीम्) पृथिवी पर (आरुरोह) ऊँचा स्थित है।

भावार्थ—वह समदर्शी परमेश्वर सूर्य, पृथिवी, जल और प्राणिमात्र संसार को देखता हुआ सबको अपने नियम में चला रहा है। ऊँचा होने का अभिप्राय उच्च और उदार भावों में अधिक होने से है।

: ५८ :

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि । महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ २०।५८।३॥

शब्दार्थ—(सूर्य) हे चराचर के प्रेरक परमात्मन् आप (बण्) निश्चय करके (महान्) महान् हैं (आदित्य) हे अविनाशी परमात्मन् ! आप (बट्) ठीक-ठीक (महान्) पूजनीय (असि) हैं (ते सतः) सत्यस्वरूप आप का (महिमा) प्रभाव (महः) बड़ा (पनस्यते) बखाण किया जाता है (देव) हे दिव्य गुण युक्त प्रभो ! (अद्धा) निश्चय कर के (महान् असि) आप बड़ों से भी बड़े हैं ।

भावार्थ—परमेश्वर को बड़े-से-बड़ा सब महानुभाव ऋषियों ने और सब बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं ने माना है । उस महाप्रभु की उपासना करके हम सब को अपने उद्यम से बढ़ना चाहिए ।

: ५९ :

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ १४।२।४६॥

शब्दार्थ—(सूर्यायै) सूरि अर्थात् विद्वानों के सदा हित करने वाली ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये (देवेभ्यः) उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये (च) और (वरुणाय मित्राय) श्रेष्ठ मित्र की प्राप्ति के लिये (ये) जो पुरुष (भूतस्य) उचित कर्म के (प्रचेतसः) जानने वाले हैं (तेभ्यः) उनके लिये (इदं नमः अकरम्) यह मैं नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुष सब का हित करने वाली विद्या को प्राप्त करते हैं वे संसार में प्रशंसनीय और सुखी होते हैं ।

: ६० :

यो अस्य विश्व जन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः । अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ ११।४।२३॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (अस्य) इस (विश्वजन्मनः) विविध जन्म वाले और (त्रिस्वस्य चेष्टतः)सब चेष्टा करने वाले जगत् का (ईशे) ईश्वर है। इन से (अन्येषु) भिन्न कारणरूप परमाणुओं पर (क्षिप्रधन्वने) व्यापक होने वाले (तस्मै) उस (ते) आप को (प्राण) जीवनदाता परमेश्वर (नमो अस्तु) नमस्कार हो।

भावार्थ—जो परमात्मा सब कार्य रूप जगत् और कारण रूप जगत् का स्वामी है उस परमेश्वर को हमारा नमस्कार है।

: ६१ :

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये। १९।६२।१॥

शब्दार्थ—हे परमात्मन्! (मा) मुझे (देवेषु) ब्रह्मज्ञानी विद्वानों में (प्रियम्) प्रिय (कणु) कर, (मा) मुझे (राजसु) राजाओं में (प्रियम्) प्यारा (कृणु) कर (उत) और (अर्ये) वैश्य में (उत) और (शूद्रे) शूद्र मैं और (सर्वस्य पश्यतः) सब देखने वाले जीव का (प्रयम्) प्यारा बना।

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सब ब्राह्मणादिकों में निष्पक्ष होकर प्रीति करते हैं और उन्होंने ही वेदवाणी मनुष्यमात्र के लिए रची है। ऐसे ही सब विद्वानों को चाहिये कि, आप वेदवाणी का अभ्यास करके निष्पक्ष होकर मनुष्यमात्र को वेदवाणी का अभ्यास करावें और सब से प्रेम करते हुए सबको धार्मिक पवित्रात्मा बना कर सबका कल्याण करें।

: ६२ :

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनू बलम्।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने॥ ९।५।२०॥

शब्दार्थ—(ऋषभदायिने) सर्वदर्शक परमात्मा के ज्ञान के देने वाले के लिये (गावः सन्तु) विद्याएं होवें (प्रजाः सन्तु) पुत्र, पौत्रादि

प्रजाएँ होवें। (अथो) और भी (तनू बलम्) शरीर बल (अस्तु) होवे (देवाः) विद्वान् लोग (तत्सर्वम्) वह सब वस्तुएं (अनुमन्यन्ताम्) स्वीकार करें।

भावार्थ—जो ब्रह्मचारी महात्मा लोग परमात्मा का वेद द्वारा उपदेश करते हैं उनके स्थानों में वेद विद्याओं का प्रचार और पुत्र-पौत्र तथा शिष्यादि वर्ग और उन उपदेशक महानुभावों का शारीरिक बल भी अवश्य होना चाहिये। संसार के बुद्धिमान् विद्वानों का कर्तव्य है कि ऐसे वेद द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने वाले महानुभावों के लिये सब उत्तम पदार्थ प्राप्त करावें। जिससे किसी बात की न्यूनता न होकर वेदों का तथा ईश्वर-भक्ति का प्रचार सदा होता रहे।

: ६३ :

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥ १०।१।२४॥

शब्दार्थ—(यत्र) जहाँ पर (ब्रह्मविदः देवाः) ब्रह्मज्ञानी देव (ज्येष्ठम् ब्रह्म) सबसे बड़े और श्रेष्ठ ब्रह्म को (उपासते) भजते हैं वहां (यो वै) जो ही (तान् प्रत्यक्षम्) उन ब्रह्मज्ञानियों को प्रत्यक्ष करके (विद्यात्) जान लेवे (सः) वह (ब्रह्मा) महापण्डित (वेदिता) ज्ञाता (स्यात्) होवे।

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष ब्रह्मज्ञानियों से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं वे ही संसार में तत्वदर्शी महापण्डित विद्वान् होते हैं। बिना गुरु परम्परा के कोई भी वेद व परमात्मा के जानने वाला नहीं हो सकता।

: ६४ :

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत।
गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि॥ ६।६५।३॥

शब्दार्थ—हे परमेश्वर ! आप (ओषधीनाम्) ताप रखने वाले सूर्यादि लोकों का (गर्भः) स्तुति योग्य आश्रय (उत्) और (हिमवताम्) शीत स्पर्श वाले जल मेघादि का (गर्भः) ग्रहण करने वाले (विश्वस्य भूतस्य) सब प्राणी समूह का (गर्भः) आधार (असि) हैं (मे) मेरे लिये (इमम्) इस संसार को (अगदम्) नीरोग (कृधि) कर दो ।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर से उत्पन्न हुए पदार्थों का गुण जान कर प्रयोग करते हैं वे संसार में सुख भोगते हैं । इसलिये हम सबको चाहिये कि सूर्यादि उष्ण और जल, मेघ आदि शीत पदार्थों के आश्रय परमात्मा की भक्ति करते और ईश्वर रचित पदार्थों से अपना काम लेते हुए सुख को भोगें ।

: ६५ :

शास इत्था महां अस्यमित्रसाहो अस्तृतः । न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥ १।२०।४॥

शब्दार्थ—हे परमात्मन् ! आप (इत्था) सत्य-सत्य (महान्) बड़े (शासः) शासक (अमित्रसाहः) शत्रुओं को दबा देने वाले (अस्तृतः) कभी न हारने वाले (असि) हैं । (यस्य सखा) जिस आपका सखा (कदाचन) कभी भी (न हन्यते) नहीं मारा जाता और (न जीयते) हारता भी नहीं ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप ही सच्चे शासक, शत्रुओं को हराने वाले, कभी नहीं हारने वाले हो । आपके साथ सच्चा प्रेम करने से जो आपका मित्र बन गया है वह न कभी किसी से मारा जाता है और न किसी से दबाया जा सकता है ।

: ६६ :

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिकुष्त इन्द्रो अङ्ग ॥ २०।६३।४।

शब्दार्थ—(यः एकः इत्) जो अकेला ही परमेश्वर (दाशुषे) दाता (मर्ताय) मनुष्य के लिए (वसु) धन (विदयते) बहुत प्रकार से देता है। (अङ्ग) हे मित्र ! वह (ईशानः) समर्थ (अप्रतिष्कुतः) बे रोक गति वाला (इन्द्रः) सबसे बढ़ कर ऐश्वर्य वाला है।

भावार्थ—सारी विभूति के स्वामी इन्द्र परमेश्वर दानशील धर्मात्मा पुरुष को बहुत प्रकार का धन देते हैं। वह अन्तर्यामी प्रभु उस दाता पुरुष को जानते हैं कि यह पुरुष दान द्वारा अनेकों लाभ पहुँचायेगा, इसलिये इसको बहुत ही धन देना ठीक है। प्यारे मित्रो ! ऐसे समर्थ प्रभु की उपासना करने से हमारा दारिद्र दूर होकर इस लोक में तथा परलोक में हम सुखी हो सकते हैं।

: ६७ :

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति। दिव-मन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥ ४।२०।१॥

शब्दार्थ—(देवि) हे दिव्यशक्ति वाले परमेश्वर ! आप (तत्) विस्तार करने वाले वा सब जगह में पूर्ण हो। (आपश्यति) सबके सम्मुख देख रहे हो। (प्रतिपश्यति) पीछे से देखते हो। (परापश्यति) दूर से देख लेते हो (पश्यति) समान से देखते हो। (दिवम्) सूर्यलोक (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (आत्) और भी (भूमिम्) भूमि और (सर्वम् पश्यति) सबको देखते हो।

भावार्थ—दिव्यशक्ति वाले, सर्वत्र व्यापक सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी, परमात्मा अपने सम्मुख, पीछे से, दूर से और समान से देख रहे हैं। सूर्यलोक, अन्तरिक्षलोक और भूमि तथा सब पदार्थमात्र को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। ऐसे दिव्यशक्ति वाले, सर्वज्ञ सर्वव्यापक, अन्तर्यामी परमात्मा को सदा समीप द्रष्टा जानते हुए सब पापों से बच कर सदा उसकी उपासना करनी चाहिये।

: ६८ :

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥ ७।५५।१॥

शब्दार्थ—(वसो) हे श्रेष्ठ परमेश्वर ! (ये) जो (ते) आपके (दिवः पन्थानः) प्रकाश के मार्ग (अव) निश्चय करके हैं (येभिः) जिनके द्वारा (विश्वम्) संसार को (ऐरयः) आप ने चलाया है। (तेभिः) उन से ही (सुम्नया) सुख के साथ (नः) हमें (आधेहि) सब ओर से पुष्ट करो।

भावार्थ—जिज्ञासु पुरुषों को चाहिये कि परमात्मा के बताये वेदमार्ग पर चल कर अपनी और अपने देशवासियों की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति करें।

: ६९ :

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥
७।६।२॥

शब्दार्थ—(पूषा) पोषण कर्ता परमेश्वर (इमाः सर्वाः आशाः) इन सब दिशाओं को (अनुवेद) निरन्तर जानता है। (सः) वह (अस्मान्) हमें (अभयतमेन) अत्यन्त निर्भय मार्ग से (नेषत्) ले चलें। (स्वस्तिदाः) मंगलदाता (आघृणिः) बड़ा प्रकाशमान (सर्ववीरः) सब में वीर (प्रजानन्) अति विद्वान् (अप्रयुच्छन्) बिना चूक किए हुए (पुरः एतु) हमारे आगे २ चले।

भावार्थ—सर्वव्यापक, मंगलप्रद, सर्ववीर, बड़े विद्वान्, परमेश्वर को सदा सहायक जान कर मनुष्य उत्तम कर्मों में आगे बढ़े। उस प्रभु को सहायक जानता हुआ उसकी भक्ति में सदा लगा रहे।

: ७० :

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्योः वरीयः कृणोतु। ७।५१।१॥

शब्दार्थ—(बृहस्पतिः) सब का बड़ा स्वामी परमेश्वर (नः) हमें (पश्चात्) पीछे (उत्तरस्मात्) ऊपर (उत) और (अधरात्) नीचे से (अघायोः) पापेच्छु दुराचारी शत्रु से (परिपातु) सब प्रकार बचावे। (इन्द्रः) परमेश्वर (पुरस्तात्) आगे से (उत मध्यतः) और मध्य से (नः) हमारे लिये (वरीयः) विस्तीर्ण स्थान (कृणोतु) करे (सखा सखिभ्यः) जैसे मित्र मित्र के लिये करता है।

भावार्थ—परमात्मा आगे, पीछे, ऊपर नीचे से सब शत्रुओं से हमारी रक्षा करे। वह परमेश्वर हमारे लिये आगे से और मध्य से विस्तीर्ण स्थान, निर्माण करे, जैसे एक मित्र अपने मित्रों के लिये स्थान बनाता है।

: ७१ :

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः। विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्। १।३१।४॥

शब्दार्थ—(नः) हमारी (मात्रे) माता के लिये (उत पित्रे) और पिता के लिये (स्वस्ति अस्तु) कल्याण होवे। (गोभ्यः) गौओं के लिये (पूरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये और (जगते) जगत् के लिये (स्वस्ति) कल्याण होवे। (विश्वम्) सम्पूर्ण (सुभूतत्) उत्तमैश्वर्य और (सुविदत्रम्) उत्तम ज्ञान और कुल (नः अस्तु) हमारे लिये हो। (ज्यो[illegible] तक (सूर्यम् एव दृशेम) हम सूर्य को देखने [illegible]

भावार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुष अपनी माता-पिता आदि कटुम्बियों और अन्य माननीय पुरुषों का सत्कार करते और गौ अश्व आदि पशुओं से लेकर सब जीवों तथा संसार के साथ उपकार करते हैं वे पुरुषार्थी उत्तम धन उत्तम ज्ञान और उत्तम कुल पाते और सूर्य के समान होकर बड़ी आयु को प्राप्त होते हैं ।

: ७२ :

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति । न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १।३२।१॥

शब्दार्थ—(जनासः) हे मनुष्यो ! (इदम् विदथ) इस बात को तुम जानते हो कि ब्रह्मवेत्ता पुरुष (महद् ब्रह्म वदिष्यति) पूजनीय परब्रह्म का उपदेश करेगा (तत्) वह ब्रह्म (न पृथिव्याम्) न तो पृथिवी में है और (न दिवि) न सूर्यलोक में है । (येन) जिसके सहारे से (वीरुधः) यह जड़ी-बूटियां सृष्टि के पदार्थ (प्राणन्ति) श्वास लेते हैं ।

भावार्थ—सर्वव्यापक ब्रह्म भूमि और सूर्यादि किसी विशेष स्थान में वर्तमान नहीं है तो भी वह अपनी सत्ता मात्र से ओषधि, अन्नादि सब सृष्टि का नियम पूर्वक प्राणदाता है । ब्रह्मज्ञानी लोग ऐसे ब्रह्म का उपदेश करते हैं ।

: ७३ :

अनड्वान दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम् । अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमाविवेश । ४।११।१॥

शब्दार्थ—(अनड्वान्) प्राण, जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (पृथिवीम् उत् द्याम्) पृ[illegible] हुआ उसको [illegible] को (दाधार) धारण किया है । (अनड्वान्) उसी [illegible] न्तरिक्षम्)

विस्तृत मध्य लोक को (दाधार) धारण किया है (अनड्वान्) उसी परमेश्वर ने (षट्) पूर्वादि नीचे ऊपर की छः दिशायें (उर्वी) बड़ी चौड़ी (प्रदिशः) महा दिशाओं को (दाधार) धारण किया है (अन-ड्वान् विश्वम् भुवनम्) परमात्मा सब जगत् में (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है।

भावार्थ—परमात्मा सब प्राणिमात्र को जीवन के साधन देकर और पृथिवी, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक को रचकर पूर्वादि सब दिशाओं में और सारे जगत् में प्रवेश कर रहा है।

: ७४ :

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥

४।३०।१॥

शब्दार्थ—(अहम्) मैं परमेश्वर (रुद्रेभिः) ज्ञानदाता व दुःख-नाशकों (वसुभिः) निवास कराने वाले पुरुषों के साथ (उत) और (अहम्) मैं ही (विश्वदेवैः) सब दिव्यगुण वाले (आदित्यैः) सूर्यादि लोकों के साथ (चरामि) चलता हूं। अर्थात् वर्तमान (अहम्) मैं (उभौ) दोनों (मित्रावरुणौ) दिन रात को (अहम्) मैं (इन्द्र अग्नि) पवन और अग्नि को (अहम्) मैं ही (उभौ अश्विनौ) दोनों सूर्य, पृथिवी को (बिभर्मि) धारण करता हूं।

भावार्थ—परमात्मा कृपासिन्धु हम पर कृपा करते हुए उप-देश करते हैं कि मैं दुःख दूर करने वालों और दूसरों को ज्ञान दे कर लाभ पहुंचाने वालों के साथ रहता हूं और मैं ही दिव्यगुण-युक्त सूर्यादि लोकलोकान्तरों के साथ और दिन, रात्रि में पवन और अग्नि, [illegible] पृथिवी को धारण कर रहा हूं। ऐसे परमात्म[illegible] [illegible]नी चाहिये।

: ७५ :

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् । अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥ ४।३०.४॥

शब्दार्थ—(मया) मेरे द्वारा ही (सः अन्नम् अत्ति) वह अन्न को खाता है (यः विपश्यति) जो कोई विशेष कर देखता है (यः प्राणति) जो सांस लेता है और (यः) जो (ईम्) यह (उक्तम्) वचन को सुनता है । (माम्) मुझे (अमन्तवः) न मानने वाले, न जानने वाले (ते) वे पुरुष (उपक्षियन्ति) हीन होकर नष्ट हो जाते हैं (श्रुत) हे सुनने में समर्थ जीव तू (श्रुधि) सुन (ते) तुझसे (श्रद्धेयम्) आदर के योग्य वचन को (वदामि) कहता हूँ ।

भावार्थ—कृपालु भगवान् हमें उपदेश देते हैं कि संसार के सब प्राणी मेरी कृपा से ही देखते, प्राण लेते और सुनते हैं, अन्नादि खाते हैं । जो नास्तिक सब के पोषक मुझ को नहीं मानते वे सब सुख-साधनों से हीन हो कर नष्ट हो जाते हैं । मैं यह सत्य वचन आपको कहता हूँ ।

: ७६ :

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥
४।३०।५॥

शब्दार्थ—(अहम्) मैं (रुद्राय) ज्ञान दाता व दुःख के नाशक पुरुष के हित के लिये और (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्मज्ञानी, वेदपाठी, विद्वानों के द्वेषी (शरवे) हिंसक के (हन्तवे) मारने को (उ) ही (धनुः) धनुष (आतनोमि) तानता हूं (अहम्) [illegible] भक्त जन के लिये (समदम् कृणोमि) आनन्द स[illegible] हुआ उसको [illegible] को करता हूं ।

(अहम् द्यावा पृथिवी) मैंने सूर्य और पृथिवी लोक में (आविवेश) सब ओर से प्रवेश किया है ।

भावार्थ—परमेश्वर, उत्तमज्ञानी पुरुषों की रक्षा के लिए, श्रेष्ठों के दुःखदायक पुरुषों के नाश के लिए, सदा उद्यत रहता है और अपने भक्तों को सदा सब स्थानों में आनन्द देता है ।

: ७७ :

नमः सायं नमः प्रातर्नमो राञ्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाम्यामकरं नमः ।। ११।२।१६।।

शब्दार्थ—(सायम् नमः) सायंकाल में उस प्रभु को नमस्कार हैं (प्रातः नमः) प्रातःकाल में नमस्कार है (राञ्या नमः दिवा नमः) दिन और रात्रि में बार-बार नमस्कार है (भवाय) सुख करने वाले (च) और (शर्वाय) दुःख के नाश करने वाले को (उभाम्याम्) दोनों हाथ जोड़ कर (नमः अकरम्) नमस्कार करता हूं ।

भावार्थ—पुरुष सब कामों के आरम्भ और अन्त में उस परमात्मा जगत्पति का ध्यान धरते हुए दोनों हाथ जोड़ कर और शिर को झुका कर सदा प्रणाम करे । जिससे अपना जन्म सफल हो । क्योंकि प्रभु की भक्ति से विमुख होकर विषयों में सदा फंसे रहने से अपना जन्म निष्फल ही है ।

: ७८ :

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ।। ११।२।२७।।

शब्दार्थ—(भवः) सुख उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (दिवः) सूर्य का (भवः) वही परमेश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी का (ईशे) राजा है । [illegible] उसी परमेश्वर ने (उरु अन्तरिक्षम्) विस्तृत प्रकाश [illegible] ओर से पूर्ण कर रक्खा है । (इतः) यहाँ

स (यतमस्या दिशि) चाहे जौन-सी दिशा हो उसमें व्याप्त है (तस्मै नमः) उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है।

भावार्थ—जो परमेश्वर सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्षादि लोकों का स्वामी होकर उन पर शासन कर रहा है उस सर्व दिशाओं में परिपूर्ण सुखप्रद परमेश्वर को हमारा बार-बार प्रणाम हो।

: ७९ :

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः। यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः॥ २०।३४।७॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिसकी (प्रदिशि) आज्ञा वा कृपा में (अश्वासः) घोड़े (यस्य) जिसकी आज्ञा व कृपा में (गावः) गाय, बैल आदि पशु (यस्य ग्रामाः) जिसकी आज्ञा में ग्राम और (यस्य विश्वे रथासः) जिसकी आज्ञा में सब विहार कराने हारे पदार्थ हैं (यः सूर्यम्) जो भगवान् सूर्य को (यः उषसम्) और प्रभात वेला को (जजान) उत्पन्न करता है (यः अपाम् नेता) जो प्रभु जलों का सर्वत्र पहुंचाने वाला है (जनासः) हे मनुष्यो! (स इन्द्रः) वह बड़े ऐश्वर्य वाला इन्द्र है।

भावार्थ—जिस परमात्मा ने घोड़े, गौएं, रथ, ग्राम उत्पन्न किये और अपने प्रेमी पुत्रों को ये सब चीजें प्रदान की और जो प्रभु सूर्य और प्रभात वेला को बनाने वाला और जलों को जहां कहीं भी पहुंचाने वाला है हे मनुष्यो! वह परमात्मा इन्द्र है।

: ८० :

शक्रं वाचाभिष्टुहि धामन्धामन् विराजति।
विमदन् बर्हिरासदन्॥ २०।४९।३॥

शब्दार्थ—(शक्रम्) शक्तिमान् [illegible] हुआ उसको [illegible] (अभिष्टुहि) वाणी से सब ओर स्तुति कर [illegible] स्थानों में

(विराजति) विराजमान है (विमदन्) विशेष रीति से आनन्द करता हुआ (बर्हिः आसदन्) पवित्र हृदय रूपी आसन पर ही विराजमान है।

भावार्थ—विवेकी पुरुष को चाहिये कि परमात्मा को घट-घट व्यापक जानकर वेद के पवित्र मन्त्रों से सदा स्तुति किया करे। वह परमात्मा ही इस लोक और परलोक में सुख देने वाला है।

: ८१ :

तम्वभि प्रगायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ २०।६१।४॥

शब्दार्थ—(तम् उ) उस ही (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुए (पुरुष्टुतम्) बहुत बड़ाई किये हुए (तविषम्) महान् (इन्द्रम्) परमात्मा को (अभि) सब ओर से (प्रगायत) भली प्रकार गाओ और (गीर्भिः) वाणियों से (आ) सब प्रकार (विवासत) सत्कार करो।

भावार्थ—हे मनुष्यो! वह परमात्मा सबसे बड़ा है। उसको जान कर उसी की प्रार्थना, उपासना करो, और अपनी वाणियों से भी ईश्वर की महिमा को निरूपण करने वाले वेद मन्त्रों से प्रभु का सत्कार करो।

: ८२ :

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ २०।६८।६॥

शब्दार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्य पदार्थों में बुद्धि वाले और जगत् निर्माण आदि अनन्त कर्मों के करने वाले (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य के स्वामी (वाजेषु) संग्रामों के बीच (वाजिनम्) महाबलवान् (तम् त्वा) [illegible] (धनानाम्) धनों के (सातये) लाभ के लिये [illegible]प्त होते हैं।

भावार्थ—परमात्मा महाज्ञानी और महा-उद्योगी हैं। अनेक प्रकार के संग्रामों में विजयशाली हैं। ऐसे परमात्मा की भक्ति करने वाले पुरुष को चाहिए कि वाह्याभ्यन्तर संग्राम को जीत कर अनेक प्रकार के धन को प्राप्त हो कर सुखी हो। स्मरण रहे कि प्रभु की भक्ति के बिना कोई ज्ञान व कर्म हमारा सफल नहीं हो सकता है। इस लिए उस प्रभु की शरण में आ कर उद्योगी बनते हुए धन प्राप्त करें।

: ८३ :

यो रायो वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २०।६८।१०॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (रायः) धन का (अवनिः) रक्षक व स्वामी (महान्) अपने गुणों व बलों से बड़ा है। (सुपारः) भली प्रकार पार लगाने वाला (सुन्वतः) तत्व रस को निकालने वाले पुरुष का (सखा) प्यारा मित्र है (तस्मै) ऐसे (इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्य वाले प्रभु के लिये आप लोग (गायत) गान किया करो।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि उस धन और सुख के रक्षक महाबली, संसार समुद्र से पार लगाने वाले, ज्ञानी पुरुष के परम सहायक, परमेश्वर की ही सदा प्रार्थना, उपासना से तत्व का ग्रहण करके पुरुषार्थ से धर्म का सेवन किया करें।

: ८४ :

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे। यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः॥ १०।८।२६॥

शब्दार्थ—(इयं कल्याणी) यह कल्याण करने वाली देवता परमात्मा (अजरा) जरा रहित (अमृता) [illegible] (मर्त्यस्य गृहे) मर्त्य के हृदय रूपी घर में निवास कर [illegible] हुआ उसको [illegible] उसके लिये (कृता) कार्य करता है (सः चकार) [illegible] होता

है और (यः शये) जो सोता है (सः जजार) वह जीर्ण हो जाता है।

भावार्थ—परमात्मदेव सदा अजर-अमर हैं सब का कल्याण करने वाले हैं वे मरणधर्मा मनुष्य के हृदय रूपी घर में निवास करते हैं जिसके ऊपर इस प्रभु की कृपा होती है वह कृतकार्य और यशस्वी होता है, परन्तु जो सोता है अर्थात् परमात्मा के ध्यान और भक्ति आदि साधनों से विमुख होता है वह शीघ्र जीर्ण हो कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

: ८५ :

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः। प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ ११।५।१६॥

शब्दार्थ—(आचार्यः) वेदशास्त्रज्ञाता आचार्य (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी होवे (प्रजापतिः) प्रजापालक मनुष्य राजा आदि (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी होवें। (प्रजापतिः) प्रजापालक हो कर (विराजति) विविध प्रकार राज्य करता है। (विराट्) बड़ा राजा (वशी) वश में करने वाला (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला (अभवत्) हो जाता है!

भावार्थ—परम दयालु परमेश्वर हम को उपदेश करते हैं कि, पाठशालाओं के अध्यापक ब्रह्मचारी होने चाहियें और प्रजाशासक राजा और राजपुरुष भी ब्रह्मचारी होने चाहियें। यदि यह दोनों व्यभिचारी होवें तो न ही सुचारुतया विद्या का अध्ययन करा सकते हैं और न ही राज्य-व्यवस्था ठीक-ठीक चला सकते हैं। प्रजापालक राजा अपनी प्रजा पर शासन करता हुआ बड़ा राजा और इन्द्र हो जाता है।

: ८६ :

ब्रह्मचर्येण [illegible] राष्ट्रं विरक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण [illegible] ॥ ११।५।१७॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेद विचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा राष्ट्रं विरक्षति) राजा अपने राज्य की रक्षा करता है। (आचार्यो) वेद और उपनिषद् के रहस्य के जानने वाला अध्यापक आचार्य (ब्रह्मचर्येण) वेदविद्या और इन्द्रिय दमन से (ब्रह्मचारिणम्) वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को (इच्छते) चाहता है।

भावार्थ—जो राजा इन्द्रियदमन और वेदविचार रूपी ब्रह्मचर्य वाला है, वह प्रजा पालन में बड़ा निपुण होता है, और ब्रह्मचर्य के कारण आचार्य विद्या वृद्धि के लिये ब्रह्मचारी से प्रेम करता है।

: ८७ :

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥ ११।५।१८॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन से (कन्या) योग्य पुत्री (युवानम् पतिम्) ब्रह्मचर्य से बलवान्, पालन पोषण करने वाले, ऐश्वर्यवान् भर्ता को (विन्दते) प्राप्त होती है। (अनड्वान्) रथ में चलने वाला बैल और (अश्वः) घोड़ा (ब्रह्मचर्येण) नियम से ऊर्ध्वरेता हो कर (घासम्) तृणादिक को (जिगीर्षति) जीतना चाहता है।

भावार्थ—कन्या ब्रह्मचर्य से पूर्ण विदुषी और युवती हो कर पूर्ण विद्वान् युवा पुरुष से विवाह करे और जैसे बैल, घोड़े आदि बलवान् और शीघ्रगामी पशु घास, तृण खाकर ब्रह्मचर्य नियम से बलवान् सन्तान उत्पन्न करते हैं, वैसे ही मनुष्य पूर्ण युवा हो कर अपने सदृश कन्या से विवाह करके निय[illegible] हुआ उसको [illegible]न् सुशील सन्तान उत्पन्न करे।

: ८८ :

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ ११।५।१६॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेदाध्ययन और इन्द्रिय दमन रूपी (तपसा) तप से (देवाः) विद्वान् पुरुष (मृत्युम्, मत्यु को अर्थात् मृत्यु के कारण निरुत्साह दरिद्रता, आदि मृत्यु को (अप) हटाकर, दूर कर (अघ्नत) नष्ट करते हैं। (इन्द्रः) मनुष्य जो इन्द्रियों को वश में करता है (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के नियम पालन से (ह) ही (देवेभ्यः) दिव्य शक्ति वाली इन्द्रियों के लिये (स्वः आभरत) तेज व सुख धारण करता है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य रूपी तप से विद्वान् पुरुष मृत्यु को दूर भगा देते हैं और इस ब्रह्मचर्य रूपी तप से ही अपने नेत्र श्रोत्रादि इन्द्रियों में तेज और बल भर देते हैं।

: ८९ :

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये। अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ ११।५।२१॥

शब्दार्थ—(पार्थिवाः) पृथिवी में होने वाले (दिव्याः) आकाश में विचरने वाले पक्षी (पशवः आरण्याः) वन में रहने वाले पशु (च) और (ग्राम्याः) ग्राम में रहने वाले पशु (अपक्षाः) बिना पक्ष के (पक्षिणः) (च) और पंखों वाले (ये ते) जो ये सब (जाताः) उत्पन्न हुए (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी ही हैं।

भावार्थ—प्रभु के सृष्टि क्रम में देख रहे हैं कि ईश्वर रचित पशु, पक्षी ईश्वर के नियम के अनुसार चलते हुए ब्रह्मचारी ही हैं। ब्रह्मचारी होने के कारण मनुष्य की अपेक्षा अधिक उद्यगी और रोग रहित हैं। इ[illegible] मनुष्यों को चाहिये कि इस वेद वाणी को पढ़ कर [illegible] षों से बच कर गृहस्थी होते हुए भी

अधिक विषयासक्त न होवें जिससे आयु, ज्ञान, तेज, उद्यम, धर्म और आरोग्यता आदि बढ़ जावें।

: ९० :

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने। सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥
१८।४।४५॥

शब्दार्थ—(सरस्वतीम्) वेद विद्या को (देवयन्तः) दिव्य गुणों को चाहने वाले विद्वान् पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुए (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञादि कर्मों में (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वतीम्) सरस्वती को (सुकृतः) सुकृती अर्थात् पुण्यात्मा धार्मिक लोग (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वती) विद्या (दाशुषे) विद्यादान करने वाले को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थों को (दात्) देती है।

भावार्थ—विद्या महारानी उस में भी विशेष करके ब्रह्मविद्या को बड़े-बड़े विद्वान् पुरुष चाहते हैं और यज्ञादिक उत्तम व्यवहारों में भी उसी वेद विद्या महारानी की आवश्यकता है। संसार के सब धर्मात्मा पुरुष इस वेदविद्या रूपी सरस्वती की इच्छा करते हैं। और सरस्वती महारानी भी मोक्ष पर्यन्त सब सुखों को देती है।

: ९१ :

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमानं च वर्धय॥ १९।६३।१॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे वेद रक्षक विद्वान्! (उत्तिष्ठ) उठो। और (देवान्) विद्वानों को (यज्ञेन) श्रेष्ठ कर्म से (बोधय) जगा। (यजमानम्) श्रेष्ठ कर्म करने वाले को (आयुः) जीवन (प्राणम्) आत्मबल (प्रजाम्) सन्तान हुआ उसको ... घोड़े आदि पशु (कीर्तिम्) यश को (वर्धय) ब...

भावार्थ—विद्वा पुरुषों का कर्तव्य है कि दूसरे विद्वानों से मिल कर वेदों का और यज्ञादिक उत्तम कर्मों का प्रचार करें जिस-से यज्ञादिक कर्म करने वाले यजमान चिरंजीवी बन कर आत्मिक बल, पुत्रादि संतान और गौ-घोड़े आदि सुख-दायक पशु और यश को प्राप्त हो कर अपनी और अपने देश की उन्नति करें।

: ९२ :

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ ३।३०।२॥

शब्दार्थ— (पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता का (अनुव्रतः) अनुकूल-व्रती हो कर (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) एक मन वाला (भवतु) होवे। (जाया) स्त्री (पत्ये) पति से (मधुमतीम्) मीठी (शन्तिवाम्) शान्ति देने वाली (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले।

भावार्थ—परमात्मा का जीवों को उपदेश है कि पुत्र माता पिता के अनुकुल हो। स्त्री अपने पति को मधु जैसे मीठे और शान्तिदायक वचन बोला करे। घर में पिता पुत्र का और पुत्र माता का आपस में झगड़ा न हो और भार्या पति के लिये मीठे और शान्तिदायक वचन बोले, कभी कठोर शब्द का प्रयोग न करे। ऐसे बर्ताव करने से गृहस्थाश्रम स्वर्गाश्रम बन जाता है। इस गृह-स्थाश्रम को स्वर्गाश्रम बनाना चाहिये।

: ९३ :

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३।३०।३॥

शब्दार्थ—(मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत्) भाई-भाई के साथ द्वेष न करे (मा स्वसा[illegible] स्वसा) बहिन-बहिन के साथ द्वेष न करे। (सम्यञ्चः) [illegible]ले और (सव्रताः) एकव्रत (भूत्वा) हो कर (भ[illegible]से (वाचं) वाणी को (वदत) बोलें।

भावार्थ—भाई-भाई और बहिन-बहिन आपस में कभी द्वेष न करें। यह आपस में मिल कर एक मत वाले, एक व्रत वाले हो कर एक दूसरे को शुभवाणी से बोलते हुए सुख के भागी बनें।

: ६४ :

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः। तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ ३।३०।४॥

शब्दार्थ—(येन) जिस वैदिक मार्ग से (देवाः) विद्वान् पुरुष (न वियन्ति) विरुद्ध नहीं चलते (च) और (नो) न कभी (मिथः) आपस में (विद्विषते) द्वेष करते हैं। (तत्) उस (ब्रह्म) वेदमार्ग को (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (पुरुषेभ्यः) सब पुरुषों के लिये (संज्ञा-नम्) ठीक-ठीक ज्ञान का कारण (कृण्मः) हम करते हैं।

भावार्थ—परमदयालु परमात्मा हमें सुखी बनाने के लिये वेदमन्त्रों द्वारा अति उत्तम उपदेश कर रहे हैं। सब विद्वानों को चाहिये कि वैदिक धर्म से विरुद्ध कभी न चलें, न आपस में कभी विद्वेष करें। इस वेद पथ का ही हमारे कल्याण के लिये यथार्थ रूप से उपदेश किया है।

: ६५ :

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥ ३।३०।६॥

शब्दार्थ— (वः) तुम्हारी (प्रपा) जलशाला (समानी) एक हो और (अन्नभागः) अन्न का भाग (सह) साथ-साथ हो। (समाने) एक ही (योक्त्रे) जोते में (वः) तुमको (सह) साथ-साथ (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ। (सम्यञ्चः) मिल कर गति वाले तुम (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमात्मा को (सपर्यत) पूजो (इव) जैसे (आराः) पहिये के दण्डे (नाभिम्) नाभि में (अभितः) हुआ उसको [illegible] होते हैं।

भावार्थ—सबकी पानी पीने की ग्रौर भोजन करने की जगह एक हो। जब हमारा सब का एकत्र भोजन होगा तब आपस में झगड़ा नहीं होगा। जैसे कि जोते में अर्थात् एक उद्देश्य के लिये परमात्मा ने हमें मनुष्य देह दिया है तो हम को चाहिये कि परस्पर मिल कर व्यवहार, परमार्थ को सिद्ध करें। जैसे ग्रारा रूप काष्ठों का नाभि ग्राधार है, ऐसे ही सब जगत् का ग्राधार परमात्मा है उसकी पूजा करें ग्रौर भौतिक ग्रग्नि में हवन करें ग्रौर शिल्प विद्या से काम लें।

: ६६ :

जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्। इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्। सर्वमायुर्जीव्यासम्॥

१६।६६।४॥ १६।७०।१॥

शब्दार्थ—हे विद्वानो! तुम (जीवला: स्थ) जीवनदाता हो। (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ (सर्वमायुर्जीव्यासम्) मैं सम्पूर्ण ग्रायु जीता रहूँ।

(इन्द्र जीव) हे परमैश्वर्य वाले मनुष्य! तू जीता रह। (सूर्य जीव) हे सूर्य समान तेजस्वी! तू जीता रहे।

(देवा: जीवा:) हे विद्वान् लोगो! ग्राप जीते रहो (जीव्यासमहम्) मैं जीता रहूँ। (सर्वम् ग्रायु: जीव्यासम्) सम्पूर्ण ग्रायु जीता रहूँ।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि जीवन विद्या का उपदेश देने वाले [illegible]ों के सत्संग से ग्रौर परस्पर उपकार करते हुए अपना [illegible] परमैश्वर्यवान् तेजस्वी हो कर विद्वानों के साथ [illegible]

[illegible]

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजा-नाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १९।११।१॥

शब्दार्थ—(वरदा) इष्ट फल देने वाली (वेदमाता) ज्ञान की माता वेदवाणी (मया) मेरे द्वारा (स्तुता) स्तुति की गई है । आप विद्वान् लोग (पावमानी) पवित्र करने वाले परमात्मा के बताने वाली वेद वाणी को (द्विजानाम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में (प्रचोदयन्ताम्) आगे बढ़ावें । (आयुः) जीवन (प्राणम्) आत्मिक बल (प्रजाम्) सन्तानादि (पशुम्) गो, घोड़ा आदि पशु (कीर्त्तिम्) यश (द्रविणम्) धन (ब्रह्मवर्चसम्) वेदाभ्यास का तेज (मह्यं दत्वा) मुझे दे कर, हे विद्वान् लोगो ! (ब्रह्मलोकम्) वेदज्ञानियों की समाज में (व्रजत) प्राप्त कराओ ।

भावार्थ—इस मन्त्र में सारे सुखों की प्राप्ति का उपदेश है । वेदमाता जो ज्ञान के देने वाली परमात्मा की पवित्र वाणी वेद-वाणी सारे इष्ट फलों के देने वाली है—इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । सब विद्वानों को योग्य है कि इस ईश्वरीय पवित्र वेदवाणी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि मनुष्य मात्र में प्रचार करते हुए सारे संसार में फैला देवें । उस वाणी की कृपा से पुरुष को दीर्घ जीवन, आत्मबल, पुत्रादि सन्तान, गौ, घोड़े आदि पशु, यश और धन प्राप्त होते हैं । यही वेदवाणी पुरुष को ब्रह्मवर्चस दे कर वेदज्ञानियों के मध्य में सत्कार और प्रतिष्ठा प्राप्त कराती हुई ब्रह्मलोक को अर्थात् 'ब्रह्म लोकः ब्रह्म [illegible] सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जो परमात्मा उसका ज्ञान देकर [illegible] हुआ उसको [illegible] कराती है ।

: ६८ :

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः । प्रणीतीरभ्या-
वर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥ ७।१०५।१॥

शब्दार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (पौरुषेयात्) पुरुष वध से (अप-
क्रामन्) हटता हुआ (दैव्यम् वचः) परमेश्वर के वचन को (वृणानः)
मानता हुआ तू (विश्वेभिः सखिभिः सह) सब साथी मित्रों के
सहित (प्रणीतीः) उत्तम नीतियों का (अभ्यावर्तस्व) सब ओर से
बर्ताव कर।

भावार्थ—मोक्षार्थी पुरुष को चाहिये कि ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय,
सत्सङ्ग, ईश्वरभक्ति पूर्वक प्रणवादिकों का जप करता हुआ और
अपने सब इष्ट मित्रों को इस मार्ग में चलाता हुआ आनन्द का
भागी बने । कभी किसी पुरुष के मारने का संकल्प ही न करे,
प्रत्युत उनको प्रभु का भक्त और वेदानुयायी बना कर उन से प्यार
करने वाला हो ।

: ६९ :

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रती-
कम् । भद्रं गृहं कृणुथ भद्रं वाचो बृहद् वो वय उच्यते
सभासु ॥ ४।२१।६॥

शब्दार्थ— (गावः) हे गौओ या विद्याओ ! (यूयम्) तुम
(कृशम्) दुर्बल से (चित्) भी (अश्रीरम् चित्) धन रहित से (मेद-
यथा) स्नेह करती और पुष्ट करती हो । (सुप्रतीकम् कृणुथ) बड़ी
प्रतीति वाला वा बड़े रूप वाला बना देती हो । (भद्रं वाचः) शुभ
बोलने वाली [illegible] और कल्याण करने वाली विद्याओ ! (गृहम्)
घर को [illegible] [illegible]दम् कृणुथ) सुखी और मंगलमय कर

देती हो (सभासु) सभाओं में (वः) तुम्हारा ही (वयः) बल (बृहद्) बड़ा (उच्यते) बखाना जाता है।

भावार्थ—गौ का दूध घृतादि सेवन कर के पुरुष सबल और विद्या से भी दुर्बल पुरुष सबल हो जाता है और निर्धन पुरुष भी गौ, विद्या की कृपा से धनवान् और रूपवान् हो जाता है। विद्वानों के घर में सदा आनन्द रहता है और गौ वालों के घर में भी सदा आनन्द रहता है। विद्वानों की और गौ वालों की सभा-समाजों में बड़ाई होती है।

: १०० :

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा। यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत्॥ ११।८।३॥

शब्दार्थ—(दश देवाः) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ यह दस दिव्य पदार्थ (पुरा) पूर्वकाल में (देवेभ्यः) कर्म फलों से (साकम्) परस्पर मिले हुए (अजायन्त) पैदा हुए (यो वै) जो पुरुष निश्चय करके (तान् प्रत्यक्षम् विद्यात्) उनको निस्सन्देह जान लेवे (स वै) वही (अद्य) आज (महद्) बड़े परमात्मा का (वदेत्) उपदेश करे।

भावार्थ—प्राणियों के पूर्व सञ्चित कर्मों से परमेश्वर उनको पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां प्रदान करता है। इनमें श्रोत्र, नेत्र, जिह्वा, नासिका, और त्वचा ये ज्ञान के साधन होने से ज्ञानेन्द्रिय कहलाते हैं। और वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ ये पांच कर्मों के साधन होने से कर्मेन्द्रिय कहलाते हैं। ये दस इन्द्रिय और इनके कर्मों से परे परमात्मा देव हैं। उनको जान कर विद्वान् पुरुष ही उस परमात्मा का उपदेश कर सकता है। अज्ञानी मूर्ख नहीं।
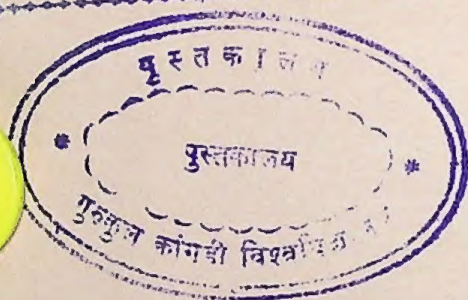
वेद "सब
सत्य विद्याओं
का पुस्तक है।
— महर्षि दयानन्द